॥ श्रीहरिः ॥

2066

श्रीनाभादासजीकृत

श्रीभक्तमाल

[श्रीप्रियादासजीकृत भक्तिरसबोधिनी टीका
एवं विस्तृत हिन्दी व्याख्यासहित]

गीताप्रेस गोरखपुर
GITA PRESS, GORAKHPUR [SINCE 1923]

गीताप्रेस, गोरखपुर

2066

॥ श्रीहरि: ॥

श्रीनाभादासजीकृत

श्रीभक्तमाल

[श्रीप्रियादासजीकृत भक्तिरसबोधिनी टीका
एवं विस्तृत हिन्दी व्याख्यासहित]

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

गीताप्रेस, गोरखपुर

बैठे हुते एकांत आय असुरनि दुख दीयो।
सुमिरे सारँगपानि रूप नरहरि को कीयो॥
सुरसुरानंद की घरनि को सत राख्यो नरसिंह जह्यो।
महासती सत ऊपमा (त्यों) सत्त सुरसुरी को रह्यो॥ ६६॥

महासतियों [जैसे श्रीअरुन्धतीजी, श्रीअनसूयाजी, श्रीलोपामुद्राजी, श्रीपार्वतीजी, श्रीसीताजी, श्रीसावित्रीजी आदि]-के सतीत्वके सदृश ही श्रीसुरसुरीजीका पातिव्रत्य भी प्रभुकृपासे अक्षुण्ण रहा। अत्यन्त उदार दम्पती श्रीसुरसुरानन्दजी एवं श्रीसुरसुरीजी वैराग्यपूर्वक गृहत्याग करके भगवद्भजनके लिये वनको प्रस्थान किये। वहाँ वनमें एक दिन ये दोनों एकान्तमें बैठे हुए भगवान्का भजन कर रहे थे, उसी समय दुष्ट म्लेच्छोंने श्रीसुरसुरीजीका अपहरण करनेके लिये अनेक प्रकारका उपद्रव किया। उस समय दम्पतीने श्रीशार्ङ्गपाणि भगवान् श्रीरामजीका स्मरण किया। भक्तके स्मरण करते ही श्रीरामजीने श्रीनृसिंहरूप धारणकर असुरोंको मार डाला और श्रीसुरसुरानन्दजीकी पत्नी श्रीसुरसुरीजीका पातिव्रत्य बचा लिया॥ ६६॥

श्रीसुरसुरीजीसे सम्बन्धित विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीसुरसुरीजी स्वामी श्रीरामानन्दाचार्यजीकी शिष्या और श्रीसुरसुरानन्दजीकी धर्मपत्नी थीं। ये परम भक्तिमती एवं सती नारी थीं। पतिके चरणोंमें इनका दृढ़ प्रेम था। पतिके बिना एक क्षण भी जीवन धारण करना इनके लिये असम्भव था।

एक बारकी बात है। अपने पतिके साथ ये वनमें तप कर रही थीं कि एक म्लेच्छकी दृष्टि इनपर पड़ गयी। वह इनके अनुपम सौन्दर्यको देखकर कामोन्मत्त हो उठा तथा रात-दिन इस अवसरकी ताकमें रहने लगा कि इनके पति कहीं चले जायँ।

एक दिन सुरसुरीके पति समिधा और पुष्प लेनेके लिये वनमें थोड़ी दूर निकल गये। म्लेच्छने अपने लिये सुअवसर देखा। वह दुष्ट प्रलाप करता हुआ सुरसुरीके पास चला आया।

म्लेच्छको दूरसे ही देखकर सुरसुरीजी घबरा गयीं। उस समय उनकी बड़ी विचित्र दशा थी। उनका हृदय काँप रहा था और आँखोंसे आँसू बह रहे थे। अपने सतीत्वकी रक्षाके लिये वह दयानिधान भगवान्से मन-ही-मन कातर प्रार्थना करने लगीं।

म्लेच्छ निर्भीक होकर सुरसुरीके पास चला आया; पर सुरसुरीको देखते ही वह उलटकर सिरपर पाँव रखकर जोरसे भागा, पीछे मुड़कर भी नहीं देखा उसने। सुरसुरीके स्थानपर उसकी आँखोंने बैठी हुई सिंहिनीको देखा था! उसे अपने ही प्राणोंके लाले पड़े थे।

जिन्हें अपने धर्ममें पूरी निष्ठा तथा दृढ़ विश्वास है, समयपर भगवान् उनकी रक्षा करते ही हैं और भगवान्ने उनकी रक्षा की। ऐसी पतिव्रता और भगवद्भक्ता थीं सुरसुरीजी!

श्रीनरहरियानन्दजी

झर घर लकरी नाहिं सक्ति को सदन उदारैं।
सक्ति भक्त सों बोलि दिनहिं प्रति बरही डारैं॥
लगी परोसी हौंस भवानी भ्वै सो मारै।
बदले की बेगारि मूड़ वाके सिर डारै॥

भरत प्रसंग ज्यों कालिका लड्डू देखि तन में तई।
निपट नरहर्‌यानंदको करदाता दुरगा भई॥ ६७॥

एक बार वर्षाकी झड़ी लग जानेसे घरमें ईंधनके लिये सूखी लकड़ी न होनेसे श्रीठाकुरजीके लिये भोग बनने एवं सन्त-सेवामें बाधा देखकर श्रीनरहरियानन्दजीने समीपके श्रीदुर्गाजीके मन्दिरको ही उजाड़ना शुरू किया। तब श्रीदुर्गाजीने प्रकट होकर भक्तसे कहा कि मेरे मन्दिरको न उजाड़ें, मैं प्रतिदिन आपके यहाँ सूखी लकड़ीका एक बड़ा बोझ रख आया करूँगी। उसी दिनसे श्रीदुर्गाजी श्रीनरहरियानन्दजीके यहाँ लकड़ी पहुँचाने लगीं। यह देखकर आश्रमके पड़ोसमें रहनेवाले एक व्यक्तिको भी इच्छा हुई कि मैं भी इसी प्रकारसे दुर्गाजीसे लकड़ियाँ लूँ। वह भी श्रीनरहरियानन्दजीकी तरह भवानीजीका मन्दिर उजाड़ने लगा। तब भवानीने उसे पृथ्वीपर पटककर बहुत मार लगायी और अपने सिरकी बेगार [लकड़ी पहुँचाना] उसके सिरपर सौंपकर तब उसको छोड़ा। जैसे श्रीजड़भरतजी तथा श्रीलड्डूभक्तजीके प्रसंगमें भक्तकी भक्तिके तेजसे श्रीकालिकाजी तप्त हो गयी थीं, उसी प्रकार श्रीनरहरियानन्दजीके भक्तितेजसे तप्त होकर देवीने कर दिया॥ ६७॥

श्रीनरहरियानन्दजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

स्वामी श्रीनरहरियानन्दजी महाराज श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराजके शिष्य और गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीके गुरु थे। आपका जन्म वैशाख कृष्ण तृतीया संवत् १४९१ वि० को वृन्दावनके समीप एक ग्राममें हुआ था। आपकी माता अम्बिका देवी पतिपरायणा सद्‌गृहिणी और पिता श्रीमहेश्वरमिश्र भगवती विन्ध्यवासिनीके परम भक्त थे। भगवतीके ही कृपाप्रसादसे आपको श्रीनरहरियानन्द-जैसे पुत्रकी प्राप्ति हुई। बालक नरहरि जब तीन वर्षके हुए तब इनकी माताकी मृत्यु हो गयी। श्रीमहेश्वरजीने बड़े धैर्यसे उनका अन्त्येष्टि संस्कार किया। यथा समय आपका यज्ञोपवीत संस्कार हुआ और भगवती विन्ध्यवासिनीके आदेशसे ही महेश्वरजीने बालक नरहरिको अन्य विद्यार्थियोंके साथ श्रीरामानन्दाचार्यजीके पास काशी भेज दिया और स्वयं तप करने बदरिकाश्रम चले गये। काशी पहुँचकर नरहरिने पहले स्वामीजीके प्रधान शिष्य श्रीअनन्तानन्दजीका दर्शन किया और दीक्षाके लिये प्रार्थना की। उसी समय श्रीस्वामीजीने अपना दिव्य शंख बजाया, जिसे सुनते ही नरहरिकी समाधि लग गयी। जब पुनः चैतन्य हुए तो स्वामीजीके चरणोंमें प्रणिपात किया। श्रीस्वामीजीने अनन्तानन्दजीसे कहा कि बालकको दिव्य दीक्षा हो चुकी है, अब इसे पंच संस्कारोंसे संस्कृतकर वैष्णवी दीक्षा प्रदान करो और उपासना-रहस्यका बोध कराओ। श्रीअनन्तानन्दजीने नरहरिको सविधि श्रीराम-मन्त्रका उपदेश दिया और उनका नरहर्यानन्द नाम रख दिया। उन्होंने आपको अपने पास रखकर समस्त वेद-शास्त्र, पुराणादिकोंका निगूढ़ तत्त्व समझाया और भगवद्भजनमें आपकी रुचि देखकर पंचगंगाघाटपर श्रीगंगाजीके किनारे एकान्तमें एक कोठरी दे दी। श्रीगुरुदेव भगवान्‌से आपको कृपाप्रसादरूपमें एक शालग्रामशिला प्राप्त हुई थी, जिसे आप 'विजयराघव भगवान्' कहते थे और उसकी सेवा-पूजा करते थे।

श्रीनरहरियानन्दजी महाराज भगवद्भक्तिका प्रचार-प्रसार करनेके लिये तीर्थाटन करते रहते थे। आपने चित्रकूट, श्रीजगन्नाथपुरी (उड़ीसा), गढ़खला (राजस्थान), प्रयाग आदि अनेक स्थानोंपर चातुर्मास्य व्रत किये और भगवद्भक्तिका प्रचार किया। एक बार आप तीर्थराज प्रयागमें अलोपीबागस्थित श्रीअलोपीदेवी मन्दिरमें चातुर्मास्य व्रत कर रहे थे। वहाँ आप भक्तोंके अनुरोधपर श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण और श्रीमद्भागवतकी कथा कहते और भगवान् श्रीराम एवं श्रीकृष्णका गुणगान करते। उनकी सात्त्विक भक्तिसे प्रभावित होकर स्वयं भगवती अलोपी देवी भी सात्त्विकभावापन्न हो गयीं और उन्होंने गाँवके मुखियाको स्वप्नमें आदेश दिया कि अब मैं वैष्णवी हो गयी हूँ, अतः अब मेरे स्थानपर पशुबलि नहीं दी जायगी। यदि कोई मेरे कथनके विरुद्ध मद्य-मांससे मुझे सन्तुष्ट करना चाहेगा, तो उसका सर्वनाश हो जायगा। तबसे वहाँ सात्त्विक पूजा होती है।

श्रीनरहरियानन्दजीकी मुख्य साधना-स्थली चित्रकूट रही, वहाँ आप नित्य श्रीकामतानाथजीकी परिक्रमा करते थे। कहते हैं कि वहाँ आपको भगवान् श्रीसीतारामजी, अत्रि-अनुसूयाजी, श्रीदत्तात्रेयजी और श्रीकामतानाथजीके दिव्य दर्शन भी हुए थे। यहींपर भगवान् शिवने आपको श्रीरामचरितमानसका रहस्य-बोध कराया और बालक 'रामबोला' को इसका उपदेश देनेका आदेश दिया। वही रामबोला आगे चलकर गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीके नामसे विश्वविख्यात हुए। आपकी 'श्रीअनन्ततत्त्वामृत' एवं 'श्रीनामप्रताप' नामक दो रचनाएँ प्रसिद्ध हैं।

श्रीपद्मनाभजी

नाम महानिधि मंत्र नाम ही सेवा पूजा।
जप तप तीरथ नाम नाम बिन और न दूजा॥
नाम प्रीति नाम बैर नाम कहि नामी बोलैं।
नाम अजामिल साखि नाम बंधन ते खोलैं॥
नाम अधिक रघुनाथ तें राम निकट हनुमत कह्यो।
कबिर कृपा ते परम तत्व पद्मनाभ परचो लह्यो॥ ६८॥

श्रीकबीरदासजीकी कृपासे श्रीपद्मनाभजीने परमतत्त्व श्रीनाम महाराजके माहात्म्यको भली प्रकारसे जाना। श्रीभगवन्नाम ही आपका परम धन था, श्रीनामको ही आप महामन्त्र मानते थे। श्रीनामकी ही आप सेवा-पूजा करते थे और नाम-जपको ही भगवान्‌की सेवा-पूजा समझते थे तथा नाम-जपको ही समस्त जप, तप, तीर्थादि साधन समझते थे। श्रीनामके अतिरिक्त अन्य साधन-साध्य कुछ भी नहीं जानते थे। वे नामानुरागियोंसे प्रीति करते थे तथा नामसे विमुखजनों एवं विरोधियोंसे वैर करते थे। इनका विश्वास था कि भगवान्‌का नाम चाहे प्रेमपूर्वक लिया जाय चाहे वैरपूर्वक—दोनों प्रकारसे ही नाम लेनेपर श्रीनाम महाराज उसका कल्याण ही करते हैं। ये श्रीनामको ही नामी अर्थात् परब्रह्म परमात्मा कहते थे। इनका दृढ़ विश्वास था कि श्रीभगवन्नाम ही जीवको भव-बन्धनसे छुड़ानेवाला है। श्रीनाम महाराजके इस परत्वके साक्षी श्रीअजामिलजी हैं। श्रीरामनाम तो श्रीरामजीसे भी बड़ा है, यह बात श्रीहनुमान्‌जीने श्रीरामके सम्मुख ही कही है॥ ६८॥

श्रीपद्मनाभजीका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

श्रीपद्मनाभजी श्रीकबीरदासजीके शिष्य थे। गृहस्थाश्रममें आपको शास्त्रार्थ करने तथा दूसरे पण्डितोंको पराजित करनेका व्यसन था। बड़े-बड़े विद्वान् पण्डित भी आपसे शास्त्रार्थ करनेमें घबड़ाते थे। आप जब कहीं शास्त्रार्थ करने जाते तो आपके साथ बैलगाड़ियोंमें भरकर आपकी पोथियाँ चलतीं और साथमें अनेक विद्वान् पण्डित चलते। ये जहाँ भी पहुँच जाते विजयश्री इनके चरण चूमती; अधिकांश पण्डित इनकी कीर्ति सुनकर ही बिना शास्त्रार्थ किये विजय-पत्र लिख देते थे तथा जो शास्त्रार्थ करते भी थे, उन्हें अविलम्ब ही हारकर विजय-पत्र लिखना पड़ता।

इस प्रकार देशके कोने-कोनेसे पण्डितोंद्वारा विजय-पत्र लिखवाते हुए श्रीपद्मनाभजी काशी आये। यहाँ भी इन्होंने पण्डितोंको शास्त्रार्थके लिये ललकारा कि या तो यहाँके विद्वान् मुझसे शास्त्रार्थ करें या विजय-पत्र लिखकर दें। काशीके पण्डित इनकी ख्याति सुन चुके थे, वे जानते थे कि इस समय इनका नक्षत्र बलवान् है; अतः केवल पाण्डित्यबलसे इन्हें पराजित करना असम्भव है। यदि ये कदाचित् हार सकते हैं तो सिद्धिबलसे ही हार सकते हैं। अतः सब पण्डितोंने जाकर भगवान् विश्वनाथसे प्रार्थना की। श्रीशिवजीने परामर्श दिया कि दिग्विजयी पण्डितको कबीरदासजीके पास भेजो। काशीके पण्डित भी कबीरदासजीके

सिद्धिबलसे परिचित थे ही, अतः सब लोगोंके मनपर श्रीशिवजीकी बात बैठ गयी। तत्पश्चात् सभी पण्डित मिलकर श्रीपद्मनाभजीके पास गये और बोले कि यदि आप हम लोगोंके गुरु श्रीकबीरदासजीको शास्त्रार्थमें पराजित कर दें तो हम सभी अपनी हार मान लें। श्रीपद्मनाभजीने कहा—यदि ऐसी बात है तो आप लोग उन्हें मेरे पास ले आइये। पण्डितोंने कहा—उनको शास्त्रार्थकी गर्ज नहीं है, आपको यदि शास्त्रार्थ करना हो तो उनके पास चलें। श्रीपद्मनाभजी तैयार हो गये। पण्डितोंने सारी बात जानकर श्रीकबीरदासजीसे बतायी। कबीरदासजीने कहा कि जब शिवजीकी आज्ञा है, तो वे ही मुझे सँभालेंगे और वे ही मेरे मुखसे बोलेंगे। इस प्रकार उन्होंने भी स्वीकृति दे दी।

समयपर शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ। दिग्विजयी पण्डित पद्मनाभने कबीरदासजीसे ही प्रश्न करनेका आग्रह किया। कबीरदासजीने कहा—पण्डितजी! मैंने तो ***'मसि कागद छूयो नहीं कलम गही नहिं हाथ'***, फिर भला मैं क्या जानूँ शास्त्र और क्या करूँ शास्त्रार्थ! फिर भी आप कह रहे हैं तो जिज्ञासावश पूछ रहा हूँ—

समुझि पढ़े कि पढ़ि समुझि, अहो कहो कविराय।
सुनि यह बात कबीर की, पण्डित गयो हेराय॥

श्रीकबीरदासजी सिद्ध सन्त थे, उनकी वाणी प्रासादिक थी, उसके कानमें पड़ते ही दिग्विजयी पण्डितके अन्तश्चक्षु खुल गये। उन्होंने बड़ी विनम्रतापूर्वक कहा—महाराज! मैंने न तो समझकर पढ़ा, न पढ़कर ही समझा, अब आपकी कृपासे समझा कि हमारा सब पढ़ना-लिखना व्यर्थ रहा। पढ़नेका जो वास्तविक तात्पर्य है, उसे तो मैंने समझा ही नहीं, केवल वाद-विवादमें उलझकर स्वयं संतप्त हुआ और दूसरेको संतप्त किया। अब तो दिग्विजयी पण्डित पद्मनाभजी पश्चात्ताप करने लगे। उन्होंने उसी क्षण निश्चय किया कि अब मैं कभी शास्त्रार्थ नहीं करूँगा। साथ आये पण्डितोंको बैलगाड़ीपर लदी पुस्तकोंके साथ उन्होंने वापस कर दिया और स्वयं कबीरदासजीकी शरण ली। पद्मनाभजीमें पाण्डित्य और पात्रता तो थी ही; अहंकारकी भी निवृत्ति हो ही गयी थी; अतः कबीरदासजीने उन्हें श्रीराम-मन्त्रकी दीक्षा दे दी।

श्रीपद्मनाभजी का अब तो जीवन ही बदल गया था, निरन्तर नाम-जप करते और भगवान्‌की मानसी सेवा करते। कहते हैं कि एक दिन आप प्रभुकी मानसी सेवा कर रहे थे। भावावेशमें सभी व्यंजनोंके नाम ले-लेकर प्रभुको नैवेद्य लगा रहे थे। उसी समय एक सज्जन वहाँ आकर खड़े हो गये और उनके क्रिया-कलापोंको देखने लगे। उनके मनमें इस बातका बड़ा कौतूहल हो रहा था कि बाबाजी नाम तो छप्पन प्रकारके व्यंजनोंका ले रहे हैं और है कुछ भी नहीं! थोड़ी देर बाद उन्होंने आपको प्रणाम किया तो आपने उसी भावावेशमें उन्हें प्रसाद दे दिया। उन सज्जनको यह देखकर बड़ा ही आश्चर्य हुआ कि प्रसादमें वे सारी वस्तुएँ हैं, जिनका श्रीपद्मनाभजीद्वारा नाम लिया जा रहा था।

एक बारकी बात है, काशीपुरीमें निवास करनेवाले एक सेठको असाध्य गलित कुष्ठ हो गया था। ऐसी स्थितिमें वह श्रीगंगाजीमें डूबकर मर जानेका संकल्प करके डूबनेको चला। उस समय उसके साथ लोगोंकी बहुत बड़ी भीड़ गंगातटपर एकत्रित हो गयी थी। संयोगवश श्रीपद्मनाभजी उधरसे ही जा निकले। भीड़ देखकर समीप जाकर पूछा। लोगोंने बताया। तब इन्होंने कहा कि उसे पकड़ो, डूबने मत दो और उसके शरीरसे बन्धन खोल दो तथा उससे कहो कि वह श्रीगंगाजलमें स्नान करे। स्नान करते समय तीन बार श्रीरामनाम कहनेमात्रसे ही उसका शरीर नवीन हो जायगा। उसने वैसा ही किया तो सचमुच उसका शरीर नवीन हो गया। फिर तो उसने जीवनपर्यन्त बुद्धिको स्थिर करके भगवान्‌की भक्ति की। इसके बाद श्रीपद्मनाभजीने श्रीगुरुदेव कबीरके पास जाकर सब वृत्तान्त कहा तो उन्होंने कहा कि अहो! तुमने श्रीनाम महाराजकी यथार्थ महिमा नहीं जानी। तब तो तुच्छ रोगके लिये तीन बार भगवन्नाम उच्चारण कराया। अरे, यह कार्य तो नामके आभासमात्रसे हो सकता है।

श्रीप्रियादासजी इस घटनाका वर्णन अपने एक कवित्तमें इस प्रकार करते हैं—

काशीबासी साहु भयो कोढ़ी सो निबाह कैसे परि गये कृमि चल्यौ बूड़िबेको भीर है।
निकसे पदम आय पूछी ढिग जाय, कही गही देह खोलौ गुन न्हाय गंगा नीर है॥
रामनाम कहै बेर तीन मैं नवीन होत भयौई नवीन कियौ भक्ति मति धीर है।
गयौ गुरु पास तुम महिमा न जानी अहो नाम भास काम करै कही यौं कबीर है॥ ३११॥

श्रीतत्त्वाजी, श्रीजीवाजी

भक्ति सुधा जल समुद भए बेलावलि गाढ़ी।
पूरबजा ज्यों रीति प्रीति उतरोतर बाढ़ी॥
रघुकुल सदृस सुभाव सिष्ट गुन सदा धर्म रत।
सूर धीर ऊदार दयापर दच्छ अननि ब्रत॥
पदमखंड पदमा पधति प्रफुलित कर सबिता उदित।
तत्वाजीवा दछिन देस बंसोद्धर राजत बिदित॥ ६९॥

परम भक्त श्रीतत्त्वाजी एवं श्रीजीवाजी दक्षिण देशके निवासी थे। ये अपने वंशका उद्धार करनेवाले तथा जगत्-प्रसिद्ध सन्त हुए। इनका सुयश आज भी सन्त-समाजमें सुशोभित है। ये दोनों भक्तिरूपी अमृतमय जलके समुद्रके दो दृढ़ किनारे थे। पूर्वाचार्योंकी भाँति श्रीसन्त-भगवन्तके प्रति इनकी प्रीति-रीति भी दोपहरके बाद पूर्व दिशाकी ओर जानेवाली छायाकी तरह उत्तरोत्तर बढ़नेवाली थी। इनका स्वभाव रघुवंशियोंके समान था। ये सज्जनोंके गुणोंको धारण करते थे। सदैव धर्ममें लगे रहनेवाले तथा बड़े ही शूर, धीर, उदार, दयालु, प्रवीण तथा इष्टमें अनन्य निष्ठा रखनेवाले थे। ये श्रीसम्प्रदायरूपी कमलवनको प्रफुल्लित करनेके लिये वैष्णव जगत्‌में सूर्यरूप उदित हुए॥ ६९॥

श्रीतत्त्वाजी और श्रीजीवाजीका विशेष परिचय इस प्रकार है—

श्रीतत्त्वाजी और श्रीजीवाजी दोनों भाई-भाई थे, जातिके ब्राह्मण थे। इन दोनोंने साधु-सेवाका प्रण लिया था। परंतु मनमें एक बात सोच रखे थे कि जिस सन्तके चरणामृतसे सिंचन करनेसे सूखा वृक्ष हरा-भरा हो जायगा, उसीसे मन्त्रदीक्षा लेंगे। संयोगसे एक बार इनके यहाँ श्रीकबीरदासजी आये। इन लोगोंकी आशा पूर्ण हो गयी। दोनोंने श्रीकबीरदासजीके चरणोंमें पड़कर प्रणाम किया और दीक्षाके लिये प्रार्थना की। श्रीकबीरदासजीने बड़ी कठिनाईसे इन्हें भगवन्नामका उपदेश दिया, साथ ही अपने निवासस्थान काशीका पता बताया और कहा कि यदि कोई आवश्यक काम पड़े तो आकर हमें सूचित करना।

श्रीतत्त्वाजी-जीवाजीके श्रीकबीरदासजीसे दीक्षा लेनेके अनन्तर गाँवके ब्राह्मणोंने यही समझा कि इनकी तो जाति ही नष्ट हो गयी। फिर तो सबने सलाह करके इनको अपने खान-पानकी पंक्तिसे बहिष्कृत कर दिया और इनकी कन्याका अपने पुत्रसे विवाह करनेको कोई तैयार नहीं हुआ। तब इन्होंने सब बात कबीरदासजीसे कही। श्रीकबीरदासजीने सोच-विचारकर कहा कि तुम दोनों भाई आपसमें ही सगाईकी चर्चा कर लो। फिर तो घर आकर उन्होंने वैसा ही विचार व्यक्त किया। यह देख-सुनकर जाति-बिरादरीवालोंमें खलबली मच गयी।

श्रीतत्त्वा-जीवाजीने कहा कि हम तो ऐसा ही करेंगे। इन लोगोंको अपने निश्चयमें दृढ़ देखकर जाति-बिरादरीके सभी लोग कहने लगे कि आपलोग अपना हठ छोड़ दीजिये। हम आपको अपनी पंक्तिमें लेने तथा

पुत्र और पुत्रियोंका अपने कुल-गोत्रमें विवाह करने-करानेका वचन देते हैं। तब एक भाई पुनः श्रीकबीरदासजीसे पूछनेको काशी गया। श्रीकबीरदासजीने कहा कि यदि वे लोग झुक रहे हैं तो उन्हें भक्तिपथमें दृढ़ कीजिये फिर वे जैसे कहें, वैसा ही विवाह कीजिये। श्रीगुरुदेवके आज्ञानुसार सभी कुल-कुटुम्बियोंको भक्तिमें आरूढ़ करके इन्होंने अपनी कन्याएँ उन्हें दीं और उनकी कन्याओंसे अपने पुत्रोंका विवाह किया। उन लोगोंने भी प्रसन्न होकर इन्हें अपनी पंक्तिमें मिला लिया। ऐसी थी श्रीतत्त्वा-जीवाजीकी दृढ़ गुरुनिष्ठा एवं सन्तोंके प्रति सद्भाव!

श्रीप्रियादासजी श्रीजीवाजी और श्रीतत्त्वाजीकी इस गुरुनिष्ठाका इस प्रकार वर्णन करते हैं—

तत्वा जीवा भाई उभै विप्र साधु सेवा पन मन धरी बात ताते शिष्य नहीं भए हैं।
गाड़्यो एक ठूँठ द्वार होय अहो हरी डार संत चरणामृत को लैकै डारि दए हैं॥
जब ही हरित देखैं ताको गुरु करि लेखैं आये श्रीकबीर पूजी आस पाँव लए हैं।
नीठ नीठ नाम दियौ दियौ परिचाय धाम काम कोऊ होय जोपै आवौ कहि गए हैं॥ ३१२॥

काना कानी भई द्विज जानी जाति गई पाँति न्यारी करि दई कोऊ बेटी नहीं लेत है।
चल्यो एक काशी जहाँ बसत कबीर धीर जाय कही पीर जब पूछ्यो कौन हेत है॥
दोऊ तुम भाई करौ आपु में सगाई होय भक्ति सरसाई न घटाई चित चेत है।
आय वहै करी परी ज्ञाति खरभरी कहैं कहा उर धरी कछू मति हूँ अचेत है॥ ३१३॥

करैं यही बात हमैं और न सुहात आये सबै हा हा खात यह छाँड़ि हठ दीजियै।
पूछिबेकों फेरि गये करौ ब्याह जौ पै नये दण्डकरि नाना भाँति भक्ति दृढ़ कीजियै॥
तब दई सुता लई पांतिमें प्रसन्न ह्वै कै पांति हरि भक्तनिसों सदा मति भीजियै।
विमुख समूह देखि संमुख बड़ाई करैं धरैं हिय माँझ कहैं पन पर रीझियै॥ ३१४॥

श्रीमाधवदासजी

पहिले बेद बिभाग कथित पूरान अष्टदस।
भारत आदि भागवत मथित उद्धार्‌यो हरि जस॥
अब सोधे सब ग्रंथ अर्थ भाषा बिस्तार्‌यो।
लीला जै जै जैति गाय भव पार उतार्‌यो॥
जगनाथ इष्ट बैराग्य सिंव करुना रस भीज्यो हियो।
बिनै ब्यास मनो प्रगट ह्वै जग को हित माधो कियो॥ ७०॥

विनयकी मूर्ति भगवान् वेदव्यासजीने ही मानो श्रीमाधवदासजीके रूपमें प्रकट होकर जगत्‌का कल्याण किया। श्रीवेदव्यासजीने पहले [द्वापरमें] वेदका विभाजन किया तथा अठारह पुराणोंका गान किया। फिर महाभारतकी रचना की। चारों वेद, सत्रह पुराण एवं महाभारतका मन्थन करके नवनीतरूपमें श्रीहरिसुयश-प्रधान श्रीमद्भागवत नामक अठारहवें पुराणकी रचना की। अब श्रीमाधवदासजीके रूपमें प्रकट होकर पुनः आपने सब ग्रन्थोंके तात्पर्यको खोज-खोजकर उनका अर्थ बोलचालकी भाषामें विस्तारसे वर्णन किया। 'जै-जै' शब्दसंयुक्त भगवान्‌की लीलाका गानकर जगत्‌में प्रचुर-प्रचार करके असंख्य जीवोंको संसार-सागरसे पार किया। इनके इष्ट श्रीजगन्नाथभगवान् थे, ये वैराग्यकी सीमा थे, इनका हृदय करुणारससे सदा सराबोर रहता था॥ ७०॥

श्रीमाधवदासजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीमाधवदासजी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। गृहस्थ-आश्रममें आपने अच्छी धन-सम्पत्ति कमायी। आप बड़े ही विद्वान् तथा धार्मिक भक्त थे। जब आपकी धर्मपत्नी स्वर्गलोकको सिधारीं, तब आपके हृदयमें संसारसे सहसा वैराग्य हो गया। संसारको निस्सार समझकर आपने घर छोड़ जगन्नाथपुरीका रास्ता पकड़ा। वहाँ पहुँचकर आप समुद्रके किनारे एकान्त स्थानमें पड़े रहे और अपनेको भगवद्ध्यानमें तल्लीन कर दिया। आप ऐसे ध्यानमग्न हुए कि आपको अन्न-जलकी भी सुध न रही। प्रेमकी यही दशा है। इस प्रकार जब बिना अन्न-जल आपको कई दिन बीत गये, तब दयालु जगन्नाथजीको आपका इस प्रकार भूखे रहना न सहा गया। तुरंत सुभद्राजीको आज्ञा दी कि आप स्वयं उत्तम-से-उत्तम भोग सुवर्ण-थालमें रखकर मेरे भक्त माधवके पास पहुँचा आओ। सुभद्राजी प्रभुकी आज्ञा पाकर सुवर्ण-थाल सजाकर माधवदासजीके पास पहुँचीं। आपने देखा कि माधव तो ध्यानमें ऐसा मग्न है कि उनके आनेका भी कुछ ध्यान नहीं करता। अपनी आँखें मूँदे प्रभुकी परम मनोहर मूर्तिका ध्यान कर रहा है, अतएव आप भी ध्यानमें विक्षेप करना उचित न समझ थाल रखकर चली आयीं। जब माधवदासजीका ध्यान समाप्त हुआ, तब वे सुवर्णका थाल देखकर भगवत्कृपाका अनुभव करते हुए आनन्दाश्रु बहाने लगे। भोग लगाया, प्रसाद पा थालको एक ओर रख दिया; फिर ध्यान-मग्न हो गये!

उधर जब भगवान्के पट खुले, तब पुजारियोंने सोनेका एक थाल न देख बड़ा शोर-गुल मचाया। पुरीभरमें तलाशी होने लगी। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते थाल माधवदासजीके पास पड़ा पाया गया। बस, फिर क्या था, माधवदासजीको चोर समझकर उनपर चाबुक पड़ने लगे। माधवदासजीने मुसकराते हुए सब चोटें सह लीं! रात्रिमें पुजारियोंको भयंकर स्वप्न दिखलायी दिया! भगवान्ने स्वप्नमें कहा—'मैंने माधवकी चोट अपने ऊपर ले ली, अब तुम्हारा सत्यानाश कर दूँगा; नहीं तो चरणोंपर पड़कर अपने अपराध क्षमा करवा लो।' बेचारे पण्डा दौड़ते हुए माधवदासजीके पास पहुँचे और उनके चरणोंपर जा गिरे। माधवदासजीने तुरंत क्षमा प्रदानकर उन्हें निर्भय किया। भक्तोंकी दयालुता स्वाभाविक है!

भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

माधौदास द्विज निज तिया तन त्याग कियौ लियौ इन जानि जग ऐसोई व्यौहार है।
सुत की बढ़नि जोग लिये चित चाहत हो भई यह औरै लै दिखाई करतार है॥
ताते तजि दियौ गेह वेई सब पालै देह करै अभिमान सोई जानिये गँवार है।
आए नीलगिरिधाम रहे गिरि सिन्धुतीर अति मतिधीर भूख प्यास न बिचार है॥ ३१५॥

भए दिन तीन ए तो भूख के अधीन नाहिं रहैं हरिलीन प्रभु शोच पर्‍यौ भारियै।
दियो सैन भोग आप लक्ष्मीजू लै पधारीं हाटक की थारी झन झन पाँव धारियै॥
बैठे हैं कुटी में पीठ दिये हिये रूप रँगे बीजुरी सी कौंधि गई नीके न निहारियै।
देखि सो प्रसाद बड़ौ मन अहलाद भयौ लयौ भाग मानि पात्र धर्‍योई विचारियै॥ ३१६॥

खोलैं जो किवार थार देखियै न सोच पर्‍यौ कर्‍यौ लै जतन ढूंढ़ि वाही ठौर पायौ है।
ल्याये बाँधि मारी बेंत धारी जगन्नाथ देव भेव जब जान्यौ पीठ चिह्न दरसायौ है॥
कही पुनि आप मैं ही दियौ जब लियौ याने माने अपराध पाँव गहि कै छिमायौ है।
भई यों प्रसिद्ध बात कीरति न मात कहूँ सुनि कै लजात साधु सील यह गायौ है॥ ३१७॥

अब माधवदासजीके प्रेमकी दशा ऐसी हो गयी कि जब कभी आप भगवद्दर्शनके लिये मन्दिरमें जाते, तब प्रभुकी मूर्तिको ही एकटक देखते रह जाते। दर्शन समाप्त होनेपर आप तल्लीन-अवस्थामें वहीं खड़े-खड़े पुजारियोंके देखते-देखते अदृश्य हो जाते। एक बार आप रात्रिमें मन्दिरमें ही रुके रहे। वहाँ जब रात्रिमें आपको जाड़ा लगने लगा तो स्वयं जगन्नाथजीने अपनी रजाई ओढ़ा दी।

एक बार माधवदासजीको अतिसारका रोग हो गया। आप समुद्रके किनारे दूर जा पड़े। वहाँ इतने दुर्बल हो गये कि उठ-बैठ नहीं सकते थे। ऐसी दशामें जगन्नाथजी स्वयं सेवक बनकर आपकी शुश्रूषा करने लगे। जब माधवदासजीको कुछ होश आया, तब उन्होंने तुरंत पहचान लिया कि हो-न-हो ये प्रभु ही हैं। यह समझ झट उनके चरण पकड़ लिये और विनीत भावसे कहने लगे—'नाथ! मुझ-जैसे अधमके लिये क्यों आपने इतना कष्ट उठाया? फिर प्रभो! आप तो सर्वशक्तिमान् हैं। अपनी शक्तिसे ही मेरे दुःख क्यों न हर लिये, वृथा इतना परिश्रम क्यों किया?' भगवान् कहने लगे—'माधव! मुझसे भक्तोंका कष्ट नहीं सहा जाता, उनकी सेवाके योग्य मैं अपने सिवा किसीको नहीं समझता। इसी कारण तुम्हारी सेवा मैंने स्वयं की। तुम जानते हो कि प्रारब्ध भोगनेसे ही नष्ट होता है—यह मेरा ही नियम है, इसे मैं क्यों तोड़ूँ? इसलिये केवल सेवा करके प्रारब्ध-भोग भक्तोंसे करवाता हूँ और इसकी सत्यता संसारको दिखलाता हूँ।' भगवान् यह कहकर अन्तर्धान हो गये। इधर माधवदासजीके भी सब दुःख दूर हो गये।

श्रीमाधवदासजीके प्रति भगवान् जगन्नाथस्वामीकी इन वात्सल्यभरी घटनाओंका श्रीप्रियादासजी महाराजने अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

देखत सरूप सुधि तन की बिसरि जात रहि जात मन्दिर में जानै नहीं कोई है।
लग्यो सीत गात सुनो बात प्रभु काँपि उठे दई सकलात आनि प्रीति हिये भोई है॥
लागे जब बेग-बेग जाय परे सिन्धु तीर चाहैं जब नीर लिये ठाढ़े देह धोई है।
करिकै विचारि औ निहारि कही 'जानौं मैं तो देत हौ अपार दुख ईशता लै खोई है'॥ ३१८॥
कहा करौं अहो! मोपै रहो नहीं जात नेकु 'मेटौ विथा गात' मोकौं विथा वह भारी है।
रहै भोग शेष और तन में प्रवेश करै ताते नहीं दूर करौं ईशता लैं टारी है॥
वहू बात साँच याकी गाँस एक और सुनौ साधु को न हँसै कोऊ यह मैं विचारी है।
देखत ही देखत में पीड़ा सो बिलाय गई नई नई कथा कहि भक्ति विसतारी है॥ ३१९॥

श्रीमाधवदासजी भिक्षा माँगकर भोजन करते थे, एक दिन भिक्षाटन करते हुए ये एक गृहस्थके घरपर गये और भिक्षाके लिये आवाज लगायी तो घरकी मालकिनने खीझकर चूल्हा पोतनेका कपड़ा इनकी ओर फेंक दिया। इन्होंने उस कपड़ेको धोकर साफ किया, उसकी बत्तियाँ बनायीं और घीमें डुबोकर भगवान्के समक्ष दीपक जलाया। इससे उस महिलाका अज्ञानान्धकार नष्ट हो गया।

श्रीप्रियादासजी महाराजने इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

कीरति अभंग देखि भिक्षाकौ अरम्भ कियौ दियौ काहू बाई पोता खीझत चलायकै।
देबौ गुण लियौ नीके जल सों प्रछाल करि करी दिव्य बाती दई दिये में बरायकै॥
मन्दिर उँजारौ भयौ हियेको अन्ध्यारौ गयौ गये फेरि देखन कौं परी पाँय आयकै।
ऐसे हैं दयाल दुःख देत मैं निहाल करैं करैं लै जे सेवा ताकौ सकै कौन गायकै॥ ३२०॥

एक बार एक बड़े शास्त्री पण्डित शास्त्रार्थद्वारा दिग्विजय करते हुए माधवजीके पाण्डित्यकी चर्चा सुनकर शास्त्रार्थ करने जगन्नाथपुरी आये और माधवदासजीसे शास्त्रार्थ करनेका हठ करने लगे। भक्तोंको शास्त्रार्थ निरर्थक प्रतीत होता है। माधवदासजीने बहुत मना किया, पर पण्डित भला कैसे मानते? अन्तमें माधवदासजीने एक पत्रपर यह लिखकर हस्ताक्षर कर दिया, 'माधव हारा, पण्डितजी जीते।' पण्डितजी इस विजयपर फूले न समाये। तुरंत काशीको चल दिये। वहाँ पण्डितोंकी सभा करके वे अपनी विजयका वर्णन करने लगे और वह प्रमाणपत्र लोगोंको दिखाने लगे। पण्डितोंने देखा तो उसपर यह लिखा पाया, 'पण्डितजी हारे, माधव जीता।' अब तो पण्डितजी क्रोधके मारे आगबबूला हो गये। उलटे पैर जगन्नाथपुरी पहुँचे।

वहाँ माधवदासजीको जी खोलकर गालियाँ सुनायीं और कहा कि 'शास्त्रार्थमें जो हारे, वही काला मुँह करके गदहेपर चढ़ नगरभरमें घूमे।' माधवदासजीने बहुत समझाया, पर वे क्यों मानने लगे। अवकाश पाकर भगवान् माधवदासजीका रूप बना पण्डितजीसे शास्त्रार्थ करने पहुँचे और भरी सभामें उन्हें खूब छकाया। अन्तमें उनकी शर्तके अनुसार उनका मुँह काला करके गदहेपर चढ़ा, सौ-दो-सौ बालकोंको ले धूल उड़ाते नगरमें सैर की। माधवदासजीने जब यह हाल सुना, तब भागे और भगवान्के चरण पकड़कर उनसे पण्डितजीके अपराधोंकी क्षमा चाही। भगवान् तुरंत अन्तर्धान हो गये। माधवदासजीने पण्डितजीको गदहेसे उतारकर क्षमा माँगी, उनका रोष दूर किया। धन्य है, भक्तोंकी सहिष्णुता और दयालुता!

श्रीप्रियादासजी महाराज इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

पण्डित प्रबल दिग बिजै करि आयौ आय वचन सुनायौ जू! विचार मोसों कीजियै।
दई लिखि हारि काशी जायकै निहारि पत्र भयो अति ख्वार लिखी जीति वाकी खीजियै॥
फेरि मिलि माधै जू कौं वैसे ही हरायौ एक खर कौ मँगायौ कही चढ़ौ तब धीजियै।
बोल्यौ जूती बाँधौ कान गयौ सुनि न्हान आन जगन्नाथ जीते लै चढ़ायौ वाको रीझियै॥ ३२१॥

एक बार माधवदासजी व्रजयात्राको जा रहे थे। मार्गमें एक बाई आपको भोजन कराने ले गयी। बाईने बड़े प्रेमसे आपको भोजन करवाया। इधर आपके साथ श्यामसुन्दरजी बगलमें बैठ भोजन करने लगे। बाई भगवान्का सुकुमार रूप देखकर रोने लगी और माधवजीसे पूछा, यह साँवला-सलोना किसका बालक आप बहका लाये हैं? इसके बिना इसकी माँ कैसे जीवित रहेगी? माधवदासजीने गर्दन फिराकर देखा तो श्यामसुन्दरजी भोजन कर रहे हैं। बस, आप सुध-बुध भूल गये और बाईजीकी प्रशंसा करके उनकी परिक्रमा करने लगे। उसके भक्तिभाव और सौभाग्यकी सराहना करके वहाँसे विदा हुए।

श्रीप्रियादासजीने भगवान् श्यामसुन्दरकी इस कौतुकी लीलाका एक पदमें इस प्रकार वर्णन किया है—

ब्रज ही की लीला सब गावैं नीलाचल माँझ मन भई चाह जाइ नैननि निहारियै।
चले वृन्दावन मग लग एक गाँव जहाँ बाई भक्त भोजन को ल्याई चाव भारियै॥
बैठे ये प्रसाद लेत, लेत दृग भरि अहौ! कहौ कहा बात दुख हिये को उघारियै।
साँवरो कुँवर यह कौनको भुराय ल्याये? माय कैसे जीवै? सुनि मति लै बिसारियै॥ ३२२॥

श्रीमाधवदासजी वहाँसे आगे चले और एक दूसरे गाँवमें पहुँचे; जहाँपर एक वैश्य भक्त रहता था। परंतु संयोगकी बात, वह भक्त किसी औरके घर गया था। घरमें उसकी परम भागवती पत्नी थी। उसने आकर श्रीमाधवदासजीके चरणोंमें प्रणाम किया और प्रसाद पानेका अनुरोध किया। उस दिन उसके यहाँ एक महन्तजी आये हुए थे, उनका आसन मकानकी ऊपरी मंजिलपर था। भक्तपत्नीने ऊपर महन्तजीसे जाकर कहा कि एक सन्त और आ गये हैं। महन्तजीने कहा कि यहाँ तो किसीकी गुंजाइश नहीं है, तब तो वह घबड़ायी हुई नीचे आयी और श्रीमाधवदासजीसे बोली कि मैं सीधा-सामान दिये देती हूँ, आप कृपा करके रसोई बना लीजिये। इन्होंने कहा कि यदि तुम्हें कुछ खिलानेका ही आग्रह है तो जो भी बना-बनाया सामान हो, वही लाओ। तब उस भक्ताने इन्हें खूब अच्छी तरहसे औटाया हुआ दूध पिलाया। इस प्रकार उसकी अभिलाषा पूर्ण हुई। चलते समय इन्होंने कहा कि भक्तजी आयें तो कह देना कि 'जगन्नाथी माधवदासजी' आये थे।

भक्तपत्नीको अपना परिचय देकर श्रीमाधवदासजी वहाँसे उठकर चल दिये। इनके जानेके थोड़ी ही देर बाद वह महाजन भक्त घरपर आया, तब उसकी पत्नीने श्रीमाधवदासजीका नाम सुनाया। यह सुन्दर एवं शुभ समाचार सुनते ही महाजन भक्त दौड़ पड़े। उनके साथ ही वे महन्तजी भी दौड़े। दोनों ही जाकर श्रीमाधवदासजीके चरणोंमें लिपट गये। श्रीमाधवदासजी भी उनसे बड़े सुखपूर्वक मिले। श्रीमाधवदासजीने

भक्त-दम्पतीकी सन्तनिष्ठाकी बड़ी बड़ाई की। महन्तजीने अत्यन्त दीन होकर कहा कि मैंने आपका अनन्त अपराध किया है, वह कैसे दूर होगा? श्रीमाधवदासजीने कहा कि जबतक जीओ, तबतक सन्तोंकी सीथ-प्रसादी सेवन करो। अपराध छूटनेका यही अमोघ उपाय समझो। घर चलनेका आग्रह करनेपर श्रीमाधवदासजीने महाजन भक्तसे कहा कि लौटते समय पुनः मिलूँगा और श्रीवृन्दावन चले आये।

श्रीप्रियादासजी महाराज इस घटनाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

चले और गाँव जहाँ महाजन भक्त रहै गहे मन माँझ आगे विनती हू करी है।
गये वाके घर वह गयौ काहू और घर भाय भरी तिया आनि पांयन में परी है॥
ऊपर महंत कही 'अजू एक संत आये' 'इहाँ तौ समाई नाहिं' आई अरबरी है।
कीजिये रसोई 'जोई सिद्ध सोई ल्यावो' दूध नीके कैं पिवायो नाम माधौ आस भरी है॥ ३२३॥
गये उठि पाछे भक्त आयौ सो सुनायौ नाम सुनि अभिराम दौरे संग ही महन्त है।
लिये जाय पाँय लपटाय सुख पाय मिले झिले घर माँझ तिया धन्य तोसों कन्त है॥
सन्त पति बोले मैं अनन्त अपराध किये जिये अब कही सेवो सीत मानि जन्त है।
आवत मिलाप होय यही राखौ बात गोय आये वृन्दावन जहाँ सदाई बसन्त है॥ ३२४॥

श्रीमाधवदासजी श्रीवृन्दावनकी शोभा देख-देखकर मनमें परमानन्दमें डूब गये। पुनः जब आप श्रीबाँकेबिहारीजीके दर्शनार्थ गये तो वहाँ आपको चने मिले। इन्होंने चनोंको ही ले जाकर श्रीयमुनाजीके पुलिनपर श्रीठाकुरजीको भोग लगाया और स्वयं भी चना-प्रसाद पाया। इधर जब स्वामी श्रीहरिदासजी श्रीबाँकेबिहारीजीके भोग आरोगनेकी भावना करने लगे तो ध्यानमें देखा कि श्रीठाकुरजी भोग नहीं आरोग रहे हैं। तब श्रीस्वामीजीने पूछा कि 'जै, जै' आज आप भोग क्यों नहीं आरोग रहे हैं? तब श्रीबिहारीजीने कहा कि आज मुझे पानेकी रुचि नहीं है, श्रीमाधवदासजीने चने खिला दिये हैं। श्रीस्वामीजीने पूछा—वे कहाँ हैं? तब श्रीबिहारीजीने उन्हें बताया कि वे इस समय श्रीयमुनाजीके किनारे हैं। तब श्रीस्वामीजीकी आज्ञासे शिष्य-सेवकगण श्रीमाधवदासजीको खोज लाये। पूछनेपर श्रीमाधवदासजीने कहा कि आपके ठाकुर ग्वारिया होंगे तो पचा लेंगे और यदि महली ठाकुर होंगे तो नहीं पचा पायेंगे।

इस घटनाका श्रीप्रियादासजी महाराजने अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

देखि देखि वृन्दावन मन में मगन भए गए श्रीबिहारीजू के चना तहाँ पाये हैं।
कहि रह्यो द्वारपाल नेकु में प्रसाद लाल यमुना रसाल तट भोग सो लगाये हैं॥
नाना विधि पाक धरैं स्वामी आप ध्यान करैं बोले हरि भावैं नाहिं वेई लै खवाये हैं।
पूछ्यो सो जनायौ ढूंढ़ि ल्यायौ आगे गायौ सब तुम तौ उदास हाँ सरस समझाये हैं॥ ३२५॥

श्रीमाधवदासजी व्रजके तीर्थोंका दर्शन करने गये। भाण्डीरवट नामक तीर्थमें पहुँचे। वहाँ 'खेमदास' नामके एक वैरागी रहते थे। वे रात्रिमें श्रीमाधवदासजीसे छिपाकर खीर खाने लगे तो इन्होंने उन्हें शिक्षा देनेके लिये चमत्कारपूर्वक खीरमें कीड़े दिखाये फिर उपदेश भी दिया। भगवान्‌की लीला-कथा सुननेके लिये हरियानेके एक गाँवमें जाकर कुछ दिन रहे। वहाँ एक सन्तके आश्रममें गोबर पाथनेकी सेवा करते थे। (परिचय हो जानेपर) पुनः ये श्रीजगन्नाथपुरीको लौट चले। मार्गमें इनकी जन्मभूमिका गाँव पड़ा। लोगोंके मुखसे अपनी माता एवं पुत्रका कुशल समाचार सुनकर घर आये। फिर माताकी उपदेशपरक वाणी (मेरा मधुवा भगवान्‌को छोड़कर घर नहीं आ सकता है) सुनकर वहाँसे तत्काल भूखे ही चल दिये। मार्गमें भगवान्‌ने एक महाजन भक्तको स्वप्न देकर (प्रसाद पवानेके लिये) श्रीमाधवदासजीसे मिलाया। आपने उसके यहाँ भोजन किया और फिर जगन्नाथपुरीको चल दिये। इस प्रकार माधवदासजीके अनेक चरित्र हैं।

श्रीमाधवदासजीसे सम्बन्धित इन घटनाओंका श्रीप्रियादासजीने इस प्रकार वर्णन किया है—

गये ब्रज देखिबे को भाण्डीर में खेम रहै निसिकौ दुराय खाय क्रिमि लै दिखाये हैं।
लीला सुनिबे को हरियाने गाँव रहे जाय गोबरहू पाथि पुनि नीलाचल आये हैं॥
घरहूँ को आये सुत सुखी सुनि माता बानी मारग में स्वप्न दैके बनिक मिलाये हैं।
याही विधि नाना भांति चरित अपार जानौ जिते कछु जाने तिते गानके सुनाये हैं॥ ३२६॥

श्रीमाधवदासजीका भगवान् श्रीकृष्णसे सख्यभाव था, अतः भगवान् उनसे विविध प्रकारके विनोदपूर्ण कौतुक किया करते थे। एक दिन जब आप भगवान्का दर्शन करने लगे तो देखा कि भगवान् कुछ उदास हैं! आपने पूछा—प्रभो! आज आप कुछ उदाससे प्रतीत हो रहे हैं, क्या बात है? श्रीठाकुरजीने कहा—माधवदासजी! क्या बतायें, साल बीता जा रहा है और पका कटहल खानेको नहीं मिला। राजाजीके बागमें कटहल खूब फले हैं और पके भी हैं, अगर आप सहयोग दें तो आज रातमें बागमें चलकर कटहल खाया जाय। आपने कहा—प्रभो! बचपनमें तो मुझे पेड़पर चढ़नेका अभ्यास था, पर अब तो मैं बूढ़ा हो गया हूँ, मेरे हाथ-पाँव हिलते हैं, अतः पेड़पर चढ़नेमें तो मुश्किल होगी।

श्रीबलरामजी भी इस विनोदमें रस ले रहे थे, उन्होंने कहा—माधवदासजी! हम चढ़नेमें सहायता कर देंगे, आपको कोई कठिनाई नहीं होगी। बात तय हो गयी। श्रीकृष्ण, बलराम और माधवदासजी आधी रातमें चुपचाप राजाजीके बागमें घुस गये। श्रीबलरामजीने सहारा देकर माधवदासजीको पेड़पर चढ़ा दिया। माधवदासजीने बड़े और खूब पके देखकर कई कटहल नीचे गिराये। दोनों भाइयोंने खूब जी भरकर कटहल खाये। उधर फलोंके गिरनेकी आवाज सुनकर बागके माली जग गये और आवाजकी दिशामें लाठी लेकर दौड़े। उन्हें आता देखकर श्रीकृष्ण-बलराम तो बागकी चहारदीवारी लाँघकर भाग गये, पर बेचारे माधवदासजी रँगे हाथों पकड़ लिये गये। मालियोंने रात्रिके अँधेरेमें इन्हें पहचाना नहीं, अतः खूब मार लगायी और रातभर बाँधकर भी रखा। प्रातःकाल इन्हें बन्दी-अवस्थामें ही राजाके सम्मुख दरबारमें पेश किया गया। राजा इन्हें देखते ही पृथ्वीपर गिर पड़े और साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया और मालियोंद्वारा किये अपराधके लिये क्षमा माँगी और मालियोंको दण्ड देना चाहा। इसपर श्रीमाधवदासजीने कहा—राजन्! मालियोंने अपने कर्तव्यका अच्छी प्रकारसे पालन किया है। इन्होंने कोई अपराध नहीं किया, अतः इन्हें दण्ड नहीं पुरस्कार देना चाहिये। राजाने आपके कथनानुसार मालियोंको बारह बीघे जमीनका पट्टा पुरस्कारस्वरूप दे दिया। तत्पश्चात् उनसे आधी रातमें बागमें आनेका कारण जानना चाहा। श्रीमाधवदासजीने उन्हें जब सारी बात बतायी तो राजा प्रेमविभोर हो गये। उन्होंने कहा—प्रभो! मेरे धन्य भाग्य हैं कि आप मेरे बागमें आये, अब यह बाग आपकी ही सेवामें प्रस्तुत है—यह कहकर राजाने ताम्रपत्रपर लिखकर बागको श्रीठाकुरजीके ही चरणोंमें समर्पित कर दिया।

माधवदासजीके ऐसे अनेक चरित्र हैं, जो विस्तार-भयसे यहाँ वर्णन नहीं किये जाते।

श्रीरघुनाथदास गोस्वामीजी

सीत लगत सकलात बिदित पुरुषोत्तम दीनी।
सौच गए हरि संग कृत्य सेवक की कीनी॥
जगन्नाथ पद प्रीति निरंतर करत खवासी।
भगवत धर्म प्रधान प्रसन नीलाचल बासी॥
उत्कल देस उड़िसा नगर बैनतेय सब कोउ कहैं।
(श्री) रघुनाथ गोसाईं गरुड़ ज्यों सिंह पौरि ठाढ़े रहैं॥ ७१॥

श्रीरघुनाथदास गोस्वामीजी श्रीगरुड़जीकी तरह श्रीजगन्नाथभगवान्‌के सम्मुख सिंहपौरिपर खड़े रहते थे। यह बात सर्वप्रसिद्ध है कि इन्हें ठण्डक लगनेपर श्रीजगन्नाथभगवान्‌ने अपनी रजाई ओढ़ायी थी। अतिसारके कारण बारम्बार दस्तका वेग लगनेपर स्वयं भगवान्‌ने सेवकका-सा कृत्य किया अर्थात् अपने श्रीकरकमलसे इनके शरीर एवं वस्त्रादिको धोया, सेवा-शुश्रूषा की। इनका श्रीजगन्नाथभगवान्‌के श्रीचरणकमलोंमें परम अनुराग था। ये निरन्तर भगवान्‌की सेवामें लगे रहते थे। ये वैष्णवधर्मको सर्वश्रेष्ठ धर्म मानते थे अथवा भगवद्धर्म करने-करानेवालोंमें प्रधान थे। सर्वदा सुप्रसन्न मन रहते थे। श्रीनीलाचलधाममें निवास करते थे। उत्कल प्रान्तमें उड़ीसा नगरके रहनेवाले सब लोग इन्हें 'श्रीगरुड़जी' कहा करते थे॥ ७१॥

श्रीरघुनाथ गोस्वामीजीसे सम्बन्धित विशेष विवरण इस प्रकार है—

बंगालमें तीसबीघाके पास पहले एक सप्तग्राम नामक महासमृद्धिशाली प्रसिद्ध नगर था। इस नगरमें हिरण्यदास और गोवर्द्धनदास—ये दो प्रसिद्ध धनी महाजन रहते थे। दोनों भाई-भाई ही थे। ये लोग गौड़के तत्कालीन अधिपति सैयद हुसैनशाहका ठेकेपर लगान वसूल किया करते थे और ऐसा करनेमें बारह लाख रुपया सरकारी लगान भर देनेके बाद आठ लाख रुपया इनके पास बच जाता था। आठ लाख वार्षिक आय कम नहीं होती और वह भी उन दिनों! खैर, कहनेका मतलब यह कि ऐसे सम्पन्न घरमें रघुनाथदासका जन्म हुआ था। हिरण्यदास सन्तानहीन थे और गोवर्द्धनदासके भी रघुनाथदासको छोड़कर और कोई सन्तान न थी। इस तरह दोनों भाइयोंकी आशाके स्थल एकमात्र यही थे।

बड़े लाड़-दुलारके साथ बालक रघुनाथदासका लालन-पालन हुआ। अच्छे-से-अच्छे विद्वान् पढ़ानेको रखे गये। बालक रघुनाथने बड़े चावसे संस्कृत पढ़ना आरम्भ कर दिया और थोड़े ही समयमें उसने संस्कृतमें पूर्ण अभिज्ञता प्राप्त कर ली। यही नहीं, भाषाकी शिक्षाके साथ-साथ रघुनाथको उस संजीवनी बूटीका भी स्वाद मिल गया, जिसके संयोगसे विद्या वास्तविक विद्या बनती है। वह संजीवनी बूटी है—भगवान्‌की भक्ति। बात यह हुई कि अपने जिन कुलपुरोहित श्रीबलराम आचार्यके यहाँ बालक रघुनाथ विद्याभ्यासके लिये जाता था, उनके यहाँ उन दिनों श्रीचैतन्य महाप्रभुके परमप्रिय शिष्य श्रीहरिदासजी रहा करते थे। उनके सत्संगसे हरिभक्तिकी एक पतली-सी धार उसके हृदयमें भी बह निकली।

उन्हीं दिनों खबर मिली कि श्रीचैतन्यदेव शान्तिपुर श्रीअद्वैताचार्यके घर पधारे हुए हैं। ज्यों ही यह समाचार मिला, त्यों ही आसपासके भक्तोंके दिल खिल उठे। रघुनाथ तो खबर पाते ही दर्शनके लिये छटपटा उठा। उसने शान्तिपुर जानेके लिये पितासे आज्ञा माँगी। पिताके लिये यह एक अनावश्यक-सा प्रस्ताव था; पर जब उन्होंने देखा कि रघुनाथके चेहरेपर बेचैनी दौड़ रही है, तब उन्होंने उसे रोकना ठीक नहीं समझा और उसे एक राजकुमारकी भाँति बढ़िया पालकीमें बैठाकर, नौकर-चाकरोंके दलके साथ शान्तिपुर भेज दिया। शान्तिपुरमें रघुनाथदास सीधा श्रीअद्वैताचार्यके घर पहुँचा। जाकर भेंटकी वस्तुओंके सहित गौरके चरणोंमें लोट-पोट हो गया। गौर इसे देखते ही ताड़ गये कि इसका भविष्य क्या है। फिर भी उन्होंने 'अनासक्तभावसे घर-गृहस्थीमें रहते हुए भी भगवत्प्राप्ति की जा सकती है, आदि उपदेश देकर आशीर्वादसहित घरके लिये वापस किया। रघुनाथ घर वापस आ रहा था; पर उसे यह ऐसा कठिन मालूम पड़ रहा था, जैसा नदीमें प्रवाहके विपरीत तैरना।'

अस्तु, किसी तरह हृदयकी उथल-पुथलके साथ वह घर आया और माता, पिता तथा ताऊके चरणोंमें प्रणाम किया; पर उन्होंने देखा कि उसके चेहरेका रंग ही बदला हुआ है। घरवालोंको पछतावा हुआ कि इसे गौरांगके पास क्यों जाने दिया। खैर, जो हुआ सो हुआ; अब ऐसी गलती नहीं करनी चाहिये—ऐसा निश्चय करके उन्होंने अपने लड़केपर चौकी-पहरा बैठा दिया। शायद विवाह हो जानेसे मेरे बेटेका चित्त

स्थिर हो जाय—इस खयालसे श्रीगोवर्द्धनदास मजूमदारने झटपट व्यवस्था करके एक अत्यन्त रूपवती बालिकाके साथ अपने पुत्रका विवाह कर दिया। परंतु पीछे उनका खयाल गलत साबित हुआ। वह बार-बार घरसे निकल भागनेका प्रयत्न करता और पहरेदार पकड़कर लौटा लाते।

उन दिनों उस देशमें गौरांगके बाद यदि किसी महापुरुषके नामकी धूम थी तो वह थी श्रीनित्यानन्दके नामकी। संन्यासी होकर अनेक देश-देशान्तरोंमें परिभ्रमण करनेके बाद श्रीनित्यानन्दमहाराज श्रीगौरांगके शरणापन्न हुए थे और उन्हींकी आज्ञासे वे गौड़-प्रदेशमें हरिनामका प्रचार कर रहे थे। उन्होंने पानीहाटी ग्रामको हरिनामप्रचारका प्रधान केन्द्र बना रखा था। रघुनाथदासकी भी इच्छा यह आनन्द लूटनेकी हुई। पिताने भी रोक नहीं लगायी, पर रघुनाथदासपर निगाह रखनेवालोंको और अधिक सावधानीके साथ काम करनेका आदेश कर दिया। रघुनाथदास पानीहाटी गये, श्रीनित्यानन्दके दर्शनसे अपने नेत्रोंको सुख पहुँचाया और हरिनामसंकीर्तनकी ध्वनिसे अपने कर्णविवरोंको पावन किया। यही नहीं, श्रीनित्यानन्दकी दयासे इन्हें समवेत असंख्य वैष्णवजनोंको दही-चिउरेका महाप्रसाद चढ़ानेका भी सुअवसर प्राप्त हो गया। दूसरे दिन बहुत-सा दान-पुण्य करके श्रीनित्यानन्दजीसे आज्ञा लेकर घरको आ गये।

घर आ गये—पर शरीरसे, मनसे नहीं। इस कीर्तन-समारोहमें सम्मिलित होकर तो अब वे बिलकुल ही बेकाबू हो गये। इधर इन्होंने यह भी सुन रखा था कि गौड़ देशके सैकड़ों भक्त चातुर्मास्यभर श्रीचैतन्यचरणोंमें निवास करनेको नीलाचल जा रहे हैं; इस स्वर्णसंयोगको वे किसी तरह हाथसे जाने देना नहीं चाहते थे। एक दिन भगवत्प्रेरित महामायाने एक साथ सारे-के-सारे ड्योढ़ीदारोंको निद्रामें डाल दिया और सबेरा होते-न-होते रघुनाथ महलकी चहारदीवारीसे निकलकर नौ-दो-ग्यारह हो गये। इधर ज्यों ही मालूम हुआ कि रघुनाथ नहीं हैं तो सारे महलमें सनसनी फैल गयी। पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण—सभी दिशाओंको आदमी दौड़ पड़े; पर वहाँ मिलनेको अब रघुनाथकी छाँह भी नहीं थी। अनुमान किया गया कि कहीं पुरी न गया हो। उन्होंने पाँच घुड़सवारोंको पुरीके रास्तेपर दौड़ा दिया; पर वहाँ रघुनाथदास कहाँ थे? भगवान्ने उन्हें यह बुद्धि दी कि आम सड़क होकर जाना ठीक नहीं। इसलिये वे पगडण्डीके रास्तेसे गये और रात होते-होते प्रायः तीस मीलपर जा पहुँचे। इधर यात्रियोंका संग लेनेके बाद गोवर्द्धनदासके आदमियोंको जब शिवानन्दसे मालूम हुआ कि रघुनाथ उनके साथ नहीं आये, तब हताश होकर वे लौट आये। सारे महलमें कुहराम मच गया। हितू-मित्र—सभी आँसू बहाकर समवेदना प्रकट करते और समझाते कि सबका रक्षक एकमात्र ईश्वर है, इसलिये चिन्ता नहीं करनी चाहिये; पर उन्हें ढाँढ़स नहीं बँधता।

एक राजकुमार, जो कभी एक पग भी बिना सवारीके न चलता था, वह आज बड़े-बड़े विकट बटोहियोंके भी कान काट गया। उत्कट वैरागी रघुनाथको प्रथम दिनकी यात्रा समाप्त करनेके बाद एक ग्वालेके घरमें बसेरा मिला और उसके दिये हुए थोड़े-से दूधपर बसर करके उन्होंने दूसरे दिन बिलकुल तड़के फिर कूच कर दिया और इस तरह लम्बी पैदल यात्रा करके करीब एक महीनेका रास्ता रघुनाथने कुल बारह दिनोंमें तै कर डाला और इन बारह दिनोंमें उन्होंने कुल तीन बार रसोई बनाकर अपने उदरकुण्डमें आहुति दी।

इस प्रकार प्रभुसेवित नीलाचलपुरीके दर्शन होते ही इन्होंने उसे नमस्कार किया और श्रीचरणोंकी ओर अग्रसर हुए। इनके हृदयमें न जाने क्या-क्या तरंगें उठ रही थीं। इसी प्रकार भावुकताके प्रवाहमें अलौकिक आनन्द-लाभ करते हुए ये निश्चित स्थानके निकट जा पहुँचे। दूरसे ही इन्होंने देखा कि भक्तजनोंसे घिरे हुए श्रीचैतन्य प्रमुख आसनपर विराजमान हैं। उस अलौकिक शोभायुक्त मूर्तिका दर्शन करते ही रघुनाथका रोम-रोम खिल उठा। हर्षातिरेकसे उन्हें तन-वदनकी भी सुधि न रही। रघुनाथदास श्रीचरणोंके निकट पहुँच गये। सबसे पहले मुकुन्ददत्तकी निगाह उनपर पड़ी। देखते ही उन्होंने कहा—'अच्छा, रघुनाथदास, आ गये?'

तुरंत ही गौरका भी ध्यान गया। वे प्रसन्नतासे खिल उठे। 'अच्छा, वत्स रघुनाथ! आ गये?' कहकर उनका स्वागत किया और उनके प्रणाम करने बाद झटसे अत्यन्त प्रेमपूर्वक उन्हें उठाकर गले लगाया। पास बैठाकर उनके सिरपर हाथ फेरना शुरू किया। रघुनाथको ऐसा मालूम पड़ा, मानो उनकी रास्तेकी सारी थकावट हवा हो गयी। महाप्रभुकी करुणाशीलता देखकर उनकी आँखोंसे श्रद्धा और प्रेमके आँसू बरस पड़े। उन्हें भी गौरने निज करकमलोंसे ही पोंछा।

इसके अनन्तर चैतन्यदेवने स्वरूपदामोदरको अपने पास बुलाकर कहा कि 'देखो, मैं इस रघुनाथको तुम्हें सौंपता हूँ।' खान-पानसे लेकर साधन-भजनतक सारी व्यवस्थाका भार तुम्हारे ऊपर है, भला! बहुत अच्छा! कहकर स्वरूपने प्रभुकी आज्ञा शिरोधार्य की और रघुनाथको अपनी कुटीमें ले गये। उनके समुद्र-स्नान करके वापस आनेपर उन्हें जगन्नाथजीका प्रसाद और महाप्रसाद लाकर दिया। रघुनाथने उसे बड़े प्रेमसे पाया। परंतु जब उन्होंने देखा कि यह तो रोजका सिलसिला है, तब उनके मनमें यह विचार हुआ कि रोज-रोज यह बढ़िया-बढ़िया माल खानेसे वैराग्य कैसे सधेगा? आखिर चार-पाँच दिनके बाद ही उन्होंने यह व्यवस्था बदल दी। 'मैं एक राजकुमारकी हैसियतका आदमी हूँ' इस प्रकारका रहा-सहा भाव भी भुलाकर वह साधारण भिक्षुककी भाँति जगन्नाथजीके सिंहद्वारपर खड़े होकर भिक्षावृत्ति करने लगे और बड़े आनन्दके साथ दिन व्यतीत करने लगे। जब लोगोंको मालूम हुआ कि ये बहुत बड़े घरके लड़के होकर भी इस अवस्थामें आ गये हैं, तब उन्हें अधिकाधिक परिमाणमें विविध प्रकारके पदार्थ देना आरम्भ कर दिया। आखिर घबराकर रघुनाथदासको यह क्रम भी त्याग देना पड़ा। अब वह चुपचाप एक अन्नक्षेत्रमें जाते और वहाँसे रूखी-सूखी भीख ले आते। रघुनाथकी गतिविधि क्या-से-क्या हो रही है, श्रीगौरांगदेवको पूरा पता लगता रहता। उनके दिन-दिन बढ़ते हुए वैराग्यको देखकर उन्हें बड़ा सुख मिलता। रघुनाथकी उत्कट जिज्ञासा देखकर श्रीमहाप्रभुने एक दिन उन्हें साधनसम्बन्धी कुछ उपदेश दिया। कहा कि मैं तुम्हें सब शास्त्रोंका सार यह बतलाता हूँ कि 'श्रीकृष्णके नामका स्मरण और कीर्तन ही संसारमें कल्याण-प्राप्तिके सर्वश्रेष्ठ साधन हैं। पर इस साधनकी भी पात्रता प्राप्त करनेके साधन ये हैं कि निरन्तर साधुसंग करे, सांसारिक चर्चासे बचे, परनिन्दासे कोसों दूर रहे, स्वयं अमानी होकर दूसरोंका मान करे, किसीका दिल न दुखाये और दूसरेके दुखानेपर दुखी न हो, आत्मप्रतिष्ठाको विष्ठावत् समझे, सरल और सच्चरित्र होकर जीवन व्यतीत करे, आदि।'

रघुनाथदास इच्छा और अनिच्छासे जबतक राजकुमार थे। तबतक थे; अब वह वैरागी बन गये हैं, इसलिये उनका वैराग्य भी दिन-दिन बड़े वेगसे बढ़ता जाता है। पहले वे अन्नक्षेत्रमें जाकर भिक्षा ले आते थे; पर अब उन्होंने यह भी बन्द कर दिया। कारण, भण्डारीको जैसे ही इनके वंश आदिका परिचय मिला, उसने भिक्षामें विशेषता कर दी। इसलिये इन्हें इस व्यवस्थाको भी त्यागकर नयी व्यवस्था करनी पड़ी। इसमें पूर्ण स्वाधीनता थी। जगन्नाथजीमें दूकानोंपर भगवान्का प्रसाद भात-दाल आदि बिकता है। यह प्रसाद बिकनेसे बचते-बचते कई-कई दिनका हो जानेसे सड़ भी जाता है। सड़ जानेसे जब यह बिक्रीके कामका भी नहीं रहता, तब सड़कपर फेंक दिया जाता है, जिसे गौएँ आकर खा जाती हैं। रघुनाथदासको इस जीविकामें निर्द्वन्द्वता मालूम हुई। वे उसी फेंके हुए प्रसादमेंसे थोड़ा-सा बटोरकर ले आते और उसमें बहुत-सा जल डालकर उसे धोते और उसमेंसे कुछ साफ-से खानेलायक चावल निकाल लेते और नमक मिलाकर उसीसे अपने पेटकी ज्वाला शान्त करते। गौरांगदेवको इनकी इस प्रसादीका पता लगा तो वे एक दिन सायंकालको दबे पाँव रघुनाथके पास पहुँचे। ज्यों ही उन्होंने देखा कि रघुनाथ प्रसाद पा रहे हैं तो जरा और भी दुबक गये और इसी तरह खड़े रहे; एकाएक बन्दरकी तरह झपटकर छापा मारा। झटसे एक मुट्ठी भरके 'वाह बच्चू! मेरा निमन्त्रण बन्द करके अब अकेले-ही-अकेले यह सब माल उड़ाया करते हो?' कहते हुए मुखमें पहुँचाया। ध्यान जाते ही 'वाह प्रभो! यह क्या? इस पापसे

मेरा निस्तार कैसे होगा!' कहकर झटसे रघुनाथने दोनों हाथोंसे पतली उठा ली, जिससे महाप्रभु पुनः ऐसा न कर सकें। लज्जा और संकोचसे उनका चेहरा मुर्झा गया और नेत्रोंमें जल-बिन्दु झलक आये। महाप्रभु मुँहमें दिये हुए कौरको मुराते-मुराते रघुनाथकी ओर करुणाभरी दृष्टिसे निहारते पुनः हाथ मारनेको लपके और रघुनाथ 'हे प्रभो! अब तो क्षमा कीजिये' कहते हुए पतली लेकर भागे। तबतक यह सब हल्ला-गुल्ला सुनकर स्वरूप गोस्वामी भी आ पहुँचे और यह देखकर कि श्रीगौर जबरदस्ती रघुनाथका उच्छिष्ट खानेका प्रयत्न कर रहे हैं, उनसे हाथ जोड़कर प्रार्थना की—'प्रभो! दया करके यह सब मत कीजिये, इसमें दूसरेका जन्म-कर्म बिगड़ता है।'

चैतन्यदेवने मुखमें दिये हुए ग्रासको चबाते-चबाते ही कहा—'स्वरूप! तुमसे सच कहता हूँ, ऐसा सुस्वादु अन्न मैंने आजतक नहीं पाया।'

इसी प्रकार श्रीगौरांगदेवकी कृपादृष्टिसे प्रोत्साहित होते रहकर रघुनाथने वहीं पुरीमें रहकर सोलह वर्ष व्यतीत कर दिये। श्रीचैतन्य जब अहर्निश प्रेमोन्मादमें रहने लगे, तब उनकी देहरक्षाके लिये वे सदा उनके साथ ही रहने लगे। वे उनकी बड़ी श्रद्धाके साथ सेवा करते और उनके मुखसे निकले हुए वचनामृतका पान करते। आगे चलकर श्रीगौरका तिरोभाव हो गया, जिससे रघुनाथके शोकका पार न रहा; और प्रभुके बाद जब श्रीस्वरूप भी विदा हो गये, तब तो उनका पुरीवास ही छूट गया। वे वृन्दावन चले गये; इसके बाद वे वृन्दावनमें श्रीराधाकुण्डके किनारे डेरा डालकर कठोर साधनमें लग गये। वे केवल छाछ पीकर जीवन-यापन करते। रातको सिर्फ घण्टे-डेढ़ घण्टे सोते, शेष सारा समय भजनमें व्यतीत करते। प्रतिदिन एक लाख नाम-जपका उनका नियम था। श्रीचैतन्यचरितामृतकारका कहना है कि रघुनाथदासके गुण अनन्त थे, जिनका हिसाब कोई नहीं लगा सकता। उनके नियम क्या थे, पत्थरकी लीक थे। चार ही घड़ीमें उनका खाना, पीना, सोना आदि सब कुछ हो जाता था—शेष सारा समय साधनामें व्यतीत होता था। वैराग्यकी तो वे मूर्ति ही थे। जीभसे स्वाद लेना तो वे जानते ही नहीं थे। वस्त्र भी फटे-पुराने केवल लज्जा और शीतसे रक्षा करनेके लिये रखते थे। प्रभुकी आज्ञाको ही भगवदाज्ञा समझकर चलते थे।

एक बार ठण्डके दिनोंमें इन्हें बड़े जोरकी सर्दी लगी तो जगन्नाथ-भगवान्ने इन्हें अपनी रजाई ओढ़ायी थी। शौचके समय साथ जाकर सेवा करनेकी रीतिका प्रमाण तो वैसा ही समझना चाहिये जैसा कि सुखराशि श्रीप्रभुने श्रीमाधवदासजीके साथ किया था।

महाप्रभु श्रीकृष्णचैतन्यजीकी पूर्वनिर्दिष्ट आज्ञाके अनुसार श्रीरघुनाथदासजी श्रीजगन्नाथपुरीसे श्रीवृन्दावन चले आये और राधाकुण्डपर निवास किया। इन्होंने श्रीप्रिया-प्रियतमके प्रबल चिन्तनद्वारा अपने शरीरको भावरूप कर लिया था। एक दिन भगवान्‌की मानसीपूजा करते समय दूध-भातका भोग लगाया और स्वयं भी इन्होंने प्रभुके अनुरोधसे भावपूरित हृदयसे प्रसादी दूध-भात पा लिया। इससे हृदयमें प्रेम तो खूब उमड़ा, परंतु साथ ही उस दूध-भातका रस शरीरकी नाड़ियोंमें व्याप्त हो गया, जिससे ज्वर हो आया। नाड़ी देखकर वैद्यने स्पष्ट कह दिया कि इन्होंने दूध-भात पाया है।

श्रीरघुनाथदासजीपर भगवान् श्रीजगन्नाथस्वामीकी कृपाका वर्णन श्रीप्रियादासजीने इस प्रकार किया है—

अति अनुराग घर सम्पति सों भर्‌यो पागि ताहू करि त्याग कियौ नीलाचल वास है।
धनको पठावै पिता ऐ पै नहीं भावै कछु देखिबो सुहावै महाप्रभुजी कौ पास है॥
मन्दिरके द्वार रूप सुन्दर निहार्‌यौ करैं लाग्यौ सीत गात सकलात दई दास है।
सौच संग जायबे की रीति को प्रमान वहै वैसे सब जानौ माधौदास सुखरास है॥ ३२७॥
महाप्रभु कृष्णचैतन्यजूकी आज्ञा पाइ आये वृन्दावन राधाकुण्ड बास कियो है।
रहनि कहनि रूप चहनि न कहि सकै थकै सुनि तन भाव रूप करि लियो है॥

मानसीमें पायो दूध भात सरसात हिये लिये रस नारी देखि वैद कहि दियो है।
कहाँ लौं प्रताप कहौं आप ही समझि लेहु देहु वही रीझि जासों आगे पाय जियो है॥ ३२८॥

इनका संस्कृत-भाषाका ज्ञान भी बहुत अच्छा था। वृन्दावनमें रहते समय इन्होंने संस्कृतमें कई ग्रन्थ भी बनाये थे। चैतन्यचरितामृतके लेखक श्रीकृष्णदास कविराजके ये दीक्षागुरु थे। अपने ग्रन्थके लिये बहुत कुछ मसाला उन्हें इन्हीं महापुरुषसे प्राप्त हुआ था। पचासी वर्षतक पूर्ण वैराग्यमय जीवन बिताकर भगवद्भजन करते हुए अन्तमें आप भगवच्चरणोंमें जा विराजे।

श्रीनित्यानन्दजी, श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुजी

गौड़ देस पाखंड मेटि कियो भजन परायन।
करुना सिंधु कृतग्य भए अगनित गति दायन॥
दसधा रस आक्रांति महत जन चरन उपासे।
नाम लेत निहपाप दुरित तिहि नर के नासे॥
अवतार बिदित पूरब मही उभै महँत देही धरी।
नित्यानंद कृष्न चैतन्य की भक्ति दसो दिसि बिस्तरी॥ ७२॥

श्रीनित्यानन्दजी तथा श्रीकृष्णचैतन्यमहाप्रभुजीकी भक्तिका प्रकाश दसों दिशाओंमें फैला। आप दोनों महानुभावोंने गौड़देशमें फैले हुए पाखण्ड (कुप्रथाओं एवं मुसलमानोंके आतंक)-को मिटाकर वहाँके लोगोंको भगवद्भजनमें प्रवृत्त किया। आप दोनों करुणाके समुद्र, कृतज्ञ तथा अगणित अगतिक जीवोंको गति देनेवाले हुए। (अर्थात् दुष्टोंको न मारकर उनकी दुष्टताका नाशकर उन्हें भक्त बनाया।) आप दोनों सदा ही प्रेमरस-विवश बने रहते थे। बड़े-बड़े महापुरुषोंने आपके श्रीचरणकमलोंकी उपासना की। आपका नाम लेते ही प्राणी निष्पाप हो जाते हैं, तत्काल उनके समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। पूर्व देशकी भूमिमें श्रीबलराम और श्रीकृष्ण ही श्रीनित्यानन्दजी एवं श्रीकृष्णचैतन्य—इन दोनों महापुरुषोंके रूपमें प्रादुर्भूत हुए थे। इनके अवतारकी बात सर्वप्रसिद्ध है॥ ७२॥

श्रीनित्यानन्दजी एवं श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीनित्यानन्दजी

भारतीय इतिहासके मध्यकालीन भक्ति-विकासमें निताई और निमाईका नाम बड़ी श्रद्धासे लिया जाता है। भगवद्भक्तिके प्रचारसे निताई और निमाईने केवल वंगदेशको ही नहीं, समस्त भारतको प्रभावित किया। नित्यानन्द मधुरातिमधुर भक्ति-सुधाका पान करके रात-दिन उन्मत्तकी तरह हरिनाम-ध्वनिसे असंख्य जीवोंका उद्धार करते रहते थे।

शस्यश्यामला वंगभूमिके वीरभूमि जनपदके एकचाका गाँवमें शाके १३९५ के माघमासमें श्रीनित्यानन्दका जन्म हुआ था। उनके पिता-माता हाँड़ाई पण्डित और पद्मावती बड़े धर्मनिष्ठ थे। दोनों विष्णुभक्त थे। एक बार पद्मावतीने स्वप्नमें एक महापुरुषको देखा। उन्होंने कहा कि 'तुम्हारे गर्भसे एक ऐसा पुत्र उत्पन्न होगा, जो पापियोंका उद्धार करेगा और नर-नारियोंको भक्तिका मार्ग दिखायेगा।' नित्यानन्दने महापुरुषके कथनकी सत्यता प्रमाणित कर दी। बचपनसे ही नित्यानन्दमें अलौकिक पुरुषके लक्षण प्रकट होने लगे। वे श्रीकृष्णकी बाल-लीलाका अनुकरण करते-करते उन्मत्त हो जाया करते थे। वे बाल्यावस्थासे ही संसारके प्रपंचोंके प्रति उदासीन रहने लगे।

कहते हैं कि एक बार आप श्रीरामलीलामें लक्ष्मणजीका अभिनय कर रहे थे, अभिनय करते-करते

आपको भावावेश हो आया। मेघनादके साथ युद्धका प्रसंग था। जैसे ही आपको शक्तिबाण लगा, आप बेहोश होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। जो बालक हनुमान् बना था, वह अबोध था। वह लाने गया था संजीवनी बूटी, पर भूलकर अपने घर चला गया। जब बहुत देर होने लगी तो लोग इन्हें जगाने लगे, परंतु ये तो सचमुच मूर्च्छित थे, फिर जगें कैसे! लीला देखनेवालोंमें वैद्य-डॉक्टर आदि भी थे, उन्होंने नाड़ी-परीक्षण किया और लक्षण देखे तो चकित हो गये। नाड़ीकी गति मन्द हो गयी थी, जीवन बचनेके लक्षण भी कम होने लगे थे। लोगोंको जब चिकित्सकोंकी राय पता चली तो पूरे दर्शक-समाजमें खलबली मच गयी। किसीने इनके घर जाकर इनके माता-पिताको खबर दी। वे बेचारे भी रोते-बिलखते दौड़े आये और इनकी दशा देखकर माथा पीट-पीटकर विलाप करने लगे। इतनेमें जो बालक श्रीरामजीका अभिनय करते हुए अपनी गोदमें इनका सिर लेकर रुदन कर रहा था, उसे याद आया कि अभीतक हनुमान्जी संजीवनी लेकर क्यों नहीं आये? फिर तो तत्काल श्रीहनुमान्जीका अभिनय करनेवाले बालकको बुलवाया गया, वह संजीवनी लेकर आया और जैसे ही सुषेण बने बालकने इन्हें संजीवनी सुँघायी, ये तत्काल ही 'जय श्रीराम' कहते हुए चैतन्य हो गये। इस प्रकार लीलाभिनयमें भी इनको भावावेश हो जाता था, तो भगवन्नाम-संकीर्तनके समयके भावावेशकी बात ही क्या!

एक बार उनके घरपर एक संन्यासी आये। निताईके स्वभाव और उनकी प्रतिभापर आकृष्ट होकर उन्होंने उनको अपने साथ ले लिया, निताई इस घटनाके बाद फिर कभी घर नहीं लौटे। निताईने तीर्थाटन आरम्भ किया। अयोध्या, हस्तिनापुर होते हुए वे व्रज पहुँचे। इस तीर्थयात्रामें उनकी श्रीमाधवेन्द्रपुरीसे भेंट हुई। दोनों प्रेमविह्वल होकर एक-दूसरेसे मिले। तदनन्तर निताई वृन्दावनमें एक पागलकी तरह भगवान् श्रीकृष्णके अन्वेषणमें घूमने लगे। बिना माँगे कोई कुछ दे देता तो खा लेते, नहीं तो भूखे ही रह जाते। महात्मा ईश्वरपुरीने उनसे एक बार कहा—'ठाकुर! यहाँ क्या देखते हो, तुम्हारे श्रीकृष्ण तो नवद्वीपमें शचीके घर पैदा हो गये हैं।' निताई नवद्वीपके लिये चल पड़े। नित्यानन्द नवद्वीप पहुँचकर नन्दन आचार्यके घर ठहर गये। निमाई पण्डित (श्रीचैतन्य)-ने अपने शिष्योंसहित निताईके दर्शन किये। उनके कानोंमें कुण्डल थे, शरीरपर पीताम्बर लहरा रहा था। उनकी भुजाएँ घुटनोंतक लम्बी थीं, उनकी कान्ति अत्यन्त दिव्य थी। निमाई अपने-आपको अधिक समयतक सँभाल न सके। श्रीगौरचन्द्रने उनकी चरण-वन्दना की। नित्यानन्दने उनको अपने प्रेमालिंगनमें आबद्ध कर लिया। दोनोंने अद्भुत कम्प, अश्रुपात, गर्जन और हुंकारसे सारे वातावरणको प्रभावित कर दिया। चैतन्यने कहा—'बंगालमें भक्ति-भागीरथीके प्रवाहित होनेका समय आ गया है।' निताई और निमाईकी अलौकिक छविने नवद्वीपको मनोमुग्ध कर लिया।

माता शची निताईको अपने बड़े लड़केके समान मानती थीं। उनके जीवनकी अनेक अलौकिक घटनाएँ हैं। एक बार वे गौरके घर अवधूतवेषमें पहुँच गये। निताईके नयनोंसे अश्रु बह रहे थे, मधुर हरिनामका रसनासे उच्चारण हो रहा था। वे बाह्यज्ञानशून्य थे। गौरने माला पहनाकर उनका चरणामृत लिया। निताई चैतन्यके आदेशसे नवद्वीप और उसके आस-पासके स्थानोंमें हरिनामका प्रचार करने लगे। जगाई-मधाई सरीखे पातकियोंके उद्धारमें उन्होंने महान् योग दिया।

जगाई-मधाई महान् क्रूरकर्मा, पापाचारकी पराकाष्ठा और साक्षात् पापरूप ही थे। कोई भी पातक, उपपातक या महापातक ऐसा नहीं था, जो इनके द्वारा किया न जाता रहा हो। यद्यपि इन्होंने ब्राह्मणवंशमें जन्म लिया था, पर कर्म इनके ऐसे थे कि राक्षस भी लज्जित हो जायँ। नाम तो इनके जगन्नाथ और माधव (भगवान्के पावन नाम) थे, परंतु कर्मसे ये हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु ही थे। लूट, हत्या, मद्यपान और मांसाहार तथा परदाराभिगमन इनके नित्यकर्म थे। गौड़देशके शासककी ओरसे ये नदियाके कोतवाल बनाये गये थे। सदा डेरा-तम्बू लिये ये एक मुहल्लेसे दूसरे मुहल्लेमें दौरा किया करते थे। जिस मुहल्लेमें इनका डेरा पड़ जाता, उस

मुहल्लेके लोगोंके प्राण सूख जाते। ऐसे नर-पिशाचोंपर एक दिन श्रीनित्यानन्दजीकी दृष्टि पड़ी, वे श्रीहरिदासजीके साथ नवद्वीपमें श्रीहरिनाम-संकीर्तनका प्रचार-प्रसार करने आये थे। उनके लिये महाप्रभुकी आज्ञा थी कि पात्र-अपात्रका ध्यान दिये बिना सभीको भगवन्नामका समान भावसे उपदेश देना है।

नित्यानन्दजीने जिस समय जगाई-मधाईको देखा, उस समय वे दोनों मदिराके मदमें उन्मत्त होकर प्रलाप कर रहे थे। लोगोंके द्वारा इन्हें ज्ञात हुआ कि ये हैं तो ब्राह्मणकुमार ही, परंतु राजमदसे उन्मत्त हो ये चाण्डालोंसे भी पतित हो गये हैं। उनकी इस शोचनीय दशापर नित्यानन्दजीको बड़ी दया आयी। वे सोचने लगे कि जिन लोगोंने भगवन्नामका आश्रय ले रखा है, उनको उपदेश देनेसे अधिक आवश्यक ऐसे लोगोंको उपदेश देना है, जो भगवद्विमुख हैं, किसी प्रकार इन लोगोंका उद्धार होना चाहिये। हरिदासजीसे और महाप्रभुके पास पहुँचनेपर उनसे भी आपने अपनी इच्छा बतायी।

प्रभुने हँसते हुए कहा—जिन्हें आपके दर्शन हो चुके हैं और जिनके उद्धारकी बात आपके मनमें आ चुकी है, भला वे पापी कैसे रह सकते हैं? अर्थात् उनका तो उद्धार होना ही है।

महाप्रभुकी ओरसे नित्यानन्दजीको जगाई-मधाईके उद्धारका संकेत मिल गया था। एक रात वे जान-बूझकर उस रास्तेसे गये, जिधर वे दोनों मदिरा पीकर बैठे थे। निताई मधुर स्वरमें संकीर्तन करते जा रहे थे। मधाईने कई बार पूछा—कौन है? परंतु इन्होंने जानबूझकर उत्तर नहीं दिया। जब डाँटकर पूछा कि बोलता क्यों नहीं? तो इन्होंने विनोदपूर्ण लहजेमें कहा—'प्रभुके यहाँ संकीर्तनमें जा रहा हूँ,' हमारा नाम है 'अवधूत।'

अवधूत नाम सुनते ही मधाई चिढ़कर बोला—'क्यों बे बदमाश! मुझसे दिल्लगी करता है!' यह कहकर उस दुष्टने पासमें पड़े हुए एक घड़ेके टुकड़ेको उठाकर श्रीनित्यानन्दजीके सिरमें मारा। सिरसे रक्तकी धार बह चली, पर नित्यानन्दजीको इसपर भी क्रोध नहीं आया, वे तो अपने नामके अनुरूप आनन्दमग्न हुए भगवन्नामका गान और नृत्य कर रहे थे। उन्हें शाप देनेके स्थानपर वे करुणामूर्ति भगवान्से कातर स्वरमें प्रार्थना करने लगे—'प्रभो! इन ब्राह्मणकुमारोंका उद्धार करो, मुझसे इनकी दुर्दशा देखी नहीं जाती।'

मधाई नित्यानन्दजीको इस प्रकार प्रेममग्न नृत्य करते देखकर और चिढ़ गया तथा पुनः प्रहार करनेको उद्यत हो गया, परंतु जगाईके समझाने-बुझानेपर शान्त हो गया। उधर महाप्रभुके घरपर कीर्तन प्रारम्भ होनेवाला था, भक्तोंकी मण्डली इकट्ठी हो गयी थी कि किसीने इस बातकी सूचना महाप्रभुको दे दी। तत्काल सम्पूर्ण भक्त-मण्डलीके साथ महाप्रभु वहाँ पहुँच गये। महाप्रभुने जब नित्यानन्दजीके सिरसे रक्त-प्रवाह होते देखा तो उनके क्रोधका पारावार न रहा। उस समय उनका करुणावरुणालयरूप प्रलयकारी रौद्र स्वरूपमें परिणत हो गया और वे 'चक्र-चक्र' कहकर सुदर्शन चक्रका आवाहन करने लगे। महाप्रभुको अत्यन्त क्रोधाभिभूत और सुदर्शन चक्रको आकाशसे उतरते देखकर श्रीनित्यानन्दजीने सुदर्शन चक्रसे आकाशमें ही स्थिर रहनेकी प्रार्थना की और महाप्रभुके चरणकमलोंमें सिर रखकर कहने लगे—प्रभो! आपका यह अवतार दुष्टोंके संहारके लिये नहीं अपितु उनके उद्धारके लिये हुआ है, आपकी दयाके मुख्य पात्र तो ये ही हैं, फिर प्रभो! जगाईने तो मेरी रक्षा की है, इसने मधाईको मुझपर दूसरी बार प्रहार करनेसे रोका है, अतः यह आपकी परम कृपाका अधिकारी है। 'जगाईने मेरे निताईकी रक्षा की है'—यह सुनते ही महाप्रभुका सारा क्रोध विलुप्त हो गया और उन्होंने तुरंत जगाईको हृदयसे लगा लिया। प्रभुका स्पर्श पाते ही जगाईके जन्म-जन्मान्तरके पाप क्षणमात्रमें नष्ट हो गये, उसका अन्तःकरण निर्मल हो गया और वह महाप्रभुके चरणोंमें पड़कर फूट-फूटकर रोने लगा।

जगाईको इस प्रकार प्रेममें अधीर होकर रुदन करते देखकर मधाईके भी हृदयमें पश्चात्तापकी ज्वाला जलने लगी, उसे भी अपने कुकृत्यपर लज्जा आने लगी। वह आँखोंमें आँसू भरकर गद्गद कण्ठ और आर्त वाणीसे

कहने लगा—'प्रभो! हम दोनों भाइयोंने मिलकर समानरूपसे पाप किये हैं, आपने एक भाईको ही अपनी चरण-शरण दी है; नाथ! हम दोनोंको अपनाइये, हम दोनोंकी रक्षा कीजिये।' यह कहते-कहते मधाई भी प्रभुके चरणोंमें अश्रुपात करते हुए लोटने लगा। परंतु मधाईके ऊपरसे महाप्रभुका रोष अभी गया नहीं था। वे गम्भीर स्वरमें बोले—'मधाई! तूने मेरा अपराध किया होता तो मैं तुझे क्षमा कर देता, पर तूने श्रीपादनित्यानन्दजीका अपराध किया है, अतः उन्हींसे क्षमा माँग। जब वे तुझे क्षमा कर देंगे, तभी तू मेरा अनुग्रहभाजन हो सकेगा, अन्यथा तेरा कल्याण सम्भव नहीं।' यह सुनकर मधाई श्रीपादनित्यानन्दजीके चरणोंमें जा पड़ा और आँसुओंसे उनके चरणोंका प्रक्षालन करने लगा। उसका यह पश्चात्ताप देखकर श्रीपाद करुणाविगलित हो उठे। उन्होंने महाप्रभुसे कहा—'प्रभो! मेरे हृदयमें इस मधाईके प्रति अणुमात्र भी रोष नहीं है, यदि मैंने जन्म-जन्मान्तरोंमें कोई भी सुकृत किया हो तो उसका पुण्य मैं इन दोनों भाइयोंको देता हूँ।'

इतना सुनते ही प्रभुने दौड़कर मधाईको अंकमें उठा लिया और कहने लगे—'मधाई! अब तुम मेरे अत्यन्त प्रिय हो गये हो, श्रीपादकी कृपासे तुम पापरहित हो गये हो। उन्होंने अपने सभी पुण्य प्रदानकर तुम्हें परम भागवत वैष्णव बना दिया है।'

ऐसे करुणाविग्रह और पतितोद्धारक थे श्रीपादनित्यानन्दजी, जिन्होंने अपने ऊपर प्रहार करनेवालेको भी न केवल क्षमा कर दिया; बल्कि अपने जन्म-जन्मान्तरका पुण्य भी दे दिया। तभी तो महाप्रभु चैतन्य भी उन्हें अपना बड़ा भाई मानते थे।

श्रीपादनित्यानन्दजी चैतन्य महाप्रभुके साथ नवद्वीपसे पुरी आये। फिर उनके आदेशसे गौड़देशमें हरिनामका प्रचार करनेके लिये चल पड़े। गौरांगके कहनेपर उन्होंने पुनः विवाहित जीवनमें प्रवेश किया। अम्बिकानगरके सूर्यदासकी कन्या वसुधा और जाह्नवीका उन्होंने पाणिग्रहण किया। वे खड़दहमें भगवती भागीरथीके तटपर निवास करने लगे। उनके वीरचन्द्र नामका एक पुत्र भी हुआ। एक दिन भगवान् श्यामसुन्दरके मन्दिरमें हरिका नाम लेते-लेते वे सदाके लिये अचेत हो गये। भगवान्ने अपने भक्तको अपना लिया।

श्रीनित्यानन्दजी श्रीबलरामजीके अवतार हैं। एक बार उनके मनमें यह चाह उत्पन्न हुई कि अब प्रेमोन्मत्तताका रसास्वादन करना चाहिये। अतः वे ही श्रीबलरामजी श्रीनित्यानन्द महाप्रभुजीके रूपमें प्रकट हुए। आपके अगाध हृदयमें सम्पूर्ण प्रेमराशि आकर परिपूर्ण रूपसे भर गयी, परंतु फिर भी आपको प्रेमतृष्णा बनी रहती थी। आपका प्रेम ऐसा बढ़ा कि उसका भार आपसे सँभलते नहीं बनता था। तब आपने उसे पार्षदों (शिष्यों)-में यथायोग्य स्थापित कर दिया। आपके प्रेमकी कथा कहते-कहते और सुनते-सुनते अनेकों जन प्रेम-मतवाले हो गये। अनेकों ग्रन्थ इसके साक्षी हैं।

श्रीनित्यानन्दजीकी इस प्रेमोन्मत्तताका श्रीप्रियादासजीने इस प्रकार वर्णन किया है—

आप बलदेव सदा वारुणी सों मत्त रहैं चहैं मन मानौ प्रेम मत्तताई चाखियै।
सोई नित्यानन्द प्रभु महंत की देह धरी भरी सब आनि तऊ पुनि अभिलाखियै॥
भयो बोझ भारी किहूँ जात न सँभारी तब ठौर ठौर पारषद माँझ धरि राखियै।
कहत-कहत और सुनत-सुनत जाके भये मतवारे बहु ग्रन्थ ताकी साखियै॥ ३२९॥

श्रीकृष्णचैतन्यमहाप्रभु

श्रीचैतन्यमहाप्रभुका प्राकट्य शक-संवत् १४०७ की फाल्गुन शुक्ला १५ को दिनके समय सिंहलग्नमें पश्चिमी बंगालके नवद्वीप नामक ग्राममें हुआ था। इनके पिताका नाम जगन्नाथमिश्र और माताका नाम शचीदेवी था। ये भगवान् श्रीकृष्णके अनन्य भक्त थे। इन्हें लोग श्रीराधाका अवतार मानते हैं। बंगालके वैष्णव तो इन्हें साक्षात् पूर्णब्रह्म ही मानते हैं। इनके जीवनके अन्तिम छः वर्ष राधाभावमें ही बीते। उन दिनों इनके अन्दर महाभावके सारे लक्षण प्रकट हुए थे। जिस समय ये श्रीकृष्णके विरहमें उन्मत्त होकर

रोने और चीखने लगते थे, उस समय पत्थरका हृदय भी पिघल जाता था। इनके व्यक्तित्वका लोगोंपर ऐसा विलक्षण प्रभाव पड़ा कि श्रीवासुदेव सार्वभौम और प्रकाशानन्द सरस्वती-जैसे अद्वैतवेदान्ती भी इनके थोड़े देरके संगसे श्रीकृष्णप्रेमी बन गये। यही नहीं, इनके विरोधी भी इनके भक्त बन गये और जगाई-मधाई-जैसे महान् दुराचारी भी सन्त बन गये। नौरोजी नामका डाकू इनके संकीर्तनकी ध्वनि सुनकर और इनका उपदेश सुनकर अपने दल-बलसहित भगवद्भक्त बन गया। नवद्वीपके काजीने कुछ लोगोंके भड़कानेमें आकर एक संकीर्तनकर्ताका ढोल फोड़ दिया, स्वप्नमें उसे नृसिंहभगवान्के क्रोधित स्वरूपके दर्शन हुए, जिससे घबराकर उसने चैतन्यमहाप्रभुसे क्षमा माँगी और संकीर्तनका विरोध करना छोड़ दिया। कई बड़े-बड़े संन्यासी भी इनके अनुयायी हो गये। यद्यपि इनका प्रधान उद्देश्य भगवद्भक्ति और भगवन्नामका प्रचार करना और जगत्में प्रेम और शान्तिका साम्राज्य स्थापित करना था, तथापि इन्होंने दूसरे धर्मों और दूसरे साधनोंकी कभी निन्दा नहीं की। इनके भक्ति-सिद्धान्तमें द्वैत और अद्वैतका बड़ा सुन्दर समन्वय हुआ है। इन्होंने कलिमलग्रसित जीवोंके उद्धारके लिये भगवन्नामके जप और कीर्तनको ही मुख्य और सरल उपाय माना है। इनकी दक्षिण-यात्रामें गोदावरीके तटपर इनका इनके शिष्य राय रामानन्दके साथ बड़ा विलक्षण संवाद हुआ, जिसमें इन्होंने राधाभावको सबसे ऊँचा भाव बतलाया।

श्रीचैतन्य भगवन्नामके बड़े ही रसिक, अनुभवी और प्रेमी थे। इन्होंने बतलाया है—

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

—'यह महामन्त्र सबसे अधिक लाभकारी और भगवत्प्रेमको बढ़ानेवाला है। भगवन्नामका बिना श्रद्धाके उच्चारण करनेसे भी मनुष्य संसारके दुःखोंसे छूटकर भगवान्के परम धामका अधिकारी बन जाता है।'

श्रीचैतन्यमहाप्रभुने हमें यह बताया है कि भक्तोंको भगवन्नामके उच्चारणके साथ दैवीसम्पत्तिका भी अर्जन करना चाहिये। दैवीसम्पत्तिके प्रधान लक्षण उन्होंने बताये हैं—दया, अहिंसा, मत्सरशून्यता, सत्य, समता, उदारता, मृदुता, शौच, अनासक्ति, परोपकार, समता, निष्कामता, चित्तकी स्थिरता, इन्द्रियदमन, युक्ताहारविहार, गम्भीरता, परदुःखकातरता, मैत्री, तेज, धैर्य इत्यादि। श्रीचैतन्यमहाप्रभु आचरणकी पवित्रतापर बहुत जोर देते थे। उन्होंने अपने संन्यासी शिष्योंके लिये यह नियम बना दिया था कि कोई स्त्रीसे बाततक न करे। एक बार इनके शिष्य छोटे हरिदासने माधवी नामकी एक वृद्धा स्त्रीसे बात कर ली थी, जो स्वयं महाप्रभुकी भक्त थी। केवल इस अपराधके लिये उन्होंने हरिदासका सदाके लिये परित्याग कर दिया, यद्यपि उनका चरित्र सर्वथा निर्दोष था।

श्रीचैतन्यमहाप्रभु चौबीस वर्षकी अवस्थातक गृहस्थाश्रममें रहे। इनका नाम 'निमाई' पण्डित था, ये न्यायके बड़े पण्डित थे। इन्होंने न्यायशास्त्रपर एक अपूर्व ग्रन्थ लिखा था, जिसे देखकर इनके एक मित्रकी आँखोंमें आँसू आ गये; क्योंकि उन्हें यह भय हुआ कि इनके ग्रन्थके प्रकाशमें आनेपर उनके ग्रन्थका आदर कम हो जायगा। इसपर श्रीचैतन्यने अपने ग्रन्थको गंगाजीमें बहा दिया। कैसा अपूर्व त्याग है! पहली पत्नी लक्ष्मीदेवीका देहान्त हो जानेके बाद इन्होंने दूसरा विवाह श्रीविष्णुप्रियाजीके साथ किया था। परंतु कहते हैं, इनका अपनी पत्नीके प्रति सदा पवित्र भाव रहा। चौबीस वर्षकी अवस्थामें इन्होंने केशव भारती नामक संन्यासी महात्मासे संन्यासकी दीक्षा ग्रहण की। इन्होंने संन्यास इसलिये नहीं लिया कि भगवत्प्राप्तिके लिये संन्यास लेना अनिवार्य है; इनका उद्देश्य काशी आदि तीर्थोंके संन्यासियोंको भक्तिमार्गमें लगाना था। बिना पूर्ण वैराग्य हुए ये किसीको संन्यासकी दीक्षा नहीं देते थे। इसीलिये इन्होंने पहली बार अपने शिष्य रघुनाथदासको संन्यास लेनेसे मना किया था।

इनके जीवनमें अनेक अलौकिक घटनाएँ हुईं, जो किसी मनुष्यके लिये सम्भव नहीं और जिनसे इनका

ईश्वरत्व प्रकट होता है। इन्होंने एक बार श्रीअद्वैतप्रभुको विश्वरूपका दर्शन कराया था तथा नित्यानन्दप्रभुको एक बार शंख, चक्र, गदा, पद्म, शार्ङ्गधनुष तथा मुरली लिये हुए षड्भुज नारायणके रूपमें, दूसरी बार दो हाथोंमें मुरली और दो हाथोंमें शंख-चक्र लिये हुए चतुर्भुजरूपमें और तीसरी बार द्विभुज श्रीकृष्णके रूपमें दर्शन दिया था। इनकी माता शचीदेवीने इनके अभिन्नहृदय श्रीनित्यानन्द प्रभु और इनको बलराम और श्रीकृष्णके रूपमें देखा था। गोदावरीके तटपर राय रामानन्दके सामने ये रसराज (श्रीकृष्ण) और महाभाव (श्रीराधा)-के युगलरूपमें प्रकट हुए, जिसे देखकर राय रामानन्द अपने शरीरको नहीं सम्हाल सके और मूर्छित होकर गिर पड़े। अपने जीवनके शेष भागमें, जब ये नीलाचलमें रहते थे, एक बार ये बन्द कमरेमेंसे बाहर निकल आये थे। उस समय इनके शरीरके जोड़ खुल गये, जिससे इनके अवयव बहुत लम्बे हो गये। एक दिन इनके अवयव कछुएके अवयवोंकी भाँति सिकुड़ गये और ये मिट्टीके लोंदेके समान पृथ्वीपर पड़े रहे। इनके जीवनमें कई चमत्कार सामान्य रूपसे भी दृष्टिगोचर होते थे। उदाहरणतः श्रीचैतन्यचरितामृतमें लिखा है कि इन्होंने कई कोढ़ियों और अन्य असाध्य रोगोंसे पीड़ित रोगियोंको रोगमुक्त कर दिया। दक्षिणमें जब ये अपने भक्त नरहरि सरकार ठाकुरके गाँव श्रीखण्डमें पहुँचे, तब नित्यानन्दप्रभुको मधुकी आवश्यकता हुई। इन्होंने उस समय एक सरोवरके जलको शहदके रूपमें पलट दिया, जिससे आजतक वह तालाब मधुपुष्करिणीके नामसे विख्यात है।

इन घटनाओंका भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजीने अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

गोपिन के अनुराग आगै आप हारे श्याम जान्यो यह लाल रंग कैसे आवै तन में।
ये तौ सब गौर तनी नख सिख बनी ठनी खुल्यौ यों सुरंग अंग अंग रँगे बन में॥
श्यामताई माँझ सों ललाई हूँ समाई जोही ताते मेरे जान फिरि आई यहै मन में।
'जसुमति सुत' सोई 'शची सुत' गौर भये नये नये नेह चोज नाचैं निज गन में॥ ३३०॥
आवै कभूँ प्रेम हेमपिण्डवत तन होत कभू संधि संधि छूटि अंग बढ़ि जात है।
और एक न्यारी रीति आँसू पिचकारी मानों उभै लालप्यारी भावसागर समात है॥
ईशता बखान करौ सो प्रमान याकों काह? जगन्नाथ क्षेत्र नेत्र निरखि साक्षात है।
चतुर्भुज षटभुज रूप लै दिखाय दियो, दियो जो अनूप हित बात पात पात है॥ ३३१॥

इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ही अत्यन्त सुन्दर, परम महान् श्रीगौरचन्द्रके रूपमें अवतरित हुए तथा संन्यास लेनेके उपरान्त 'श्रीकृष्णचैतन्य' इस नामसे जगत्में विख्यात हुए। श्रीमहाप्रभुजीके अवतारके पूर्व सम्पूर्ण गौड़देशके लोग भक्तिका लेशमात्र भी नहीं जानते थे, परंतु श्रीमहाप्रभुजीने 'हरिबोल, हरिबोल' की मंगलमय नामध्वनि सुनाकर सबको प्रेमसागरमें डुबा दिया। आपके एक-एक पार्षद वैष्णवशिरोमणि एवं जगत्के समस्त प्राणियोंका उद्धार करनेमें समर्थ हुए। करोड़ों-करोड़ों अजामिल भी जिनकी दुष्टतापर न्यौछावर हैं, ऐसे जगाई-मधाई सरीखे पापियोंको भी आपने प्रेममें मग्न कर दिया।

इस घटनाका श्रीप्रियादासजीने अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

कृष्णचैतन्यनाम जगत प्रगट भयौ अति अभिराम लै महन्त देह करी है।
जितौ गौड़ देश भक्ति लेसहूँ न जानै कोई सोऊ प्रेमसागर में बोर्‍यो कहि 'हरी' है॥
भए सिरमौर एक एक जग तारिबे कों धारिबे कों कौन साखि पोथिन में धरी है।
कोटि कोटि अजामिल वारि डारै दुष्टता पै ऐसेहूँ मगन किये भक्ति भूमि भरी है॥ ३३२॥

श्रीचैतन्य महाप्रभुके अन्तिम बारह वर्ष कृष्णविरहमें दिव्योन्मादकी स्थितिमें बीते। आप पुरीके गम्भीरा मन्दिरमें प्रायः भावावेशमें रोते-बिलखते रहते। अन्तमें शक संवत् १४५५ में आषाढ़मासमें एक दिन दिनके तीसरे पहरमें आप दौड़ते हुए सीधे श्रीजगन्नाथजीके मन्दिरमें प्रवेश कर गये और महाप्रभु महाप्रभुमें ही लीन हो गये।

श्रीसूरदासजी

उक्ति चोज अनुप्रास बरन अस्थिति अति भारी।
बचन प्रीति निर्बाह अर्थ अद्‌भुत तुकधारी॥
प्रतिबिंबित दिबि दिष्टि हृदय हरि लीला भासी।
जनम करम गुन रूप सबै रसना परकासी॥
बिमल बुद्धि गुन और की जो यह गुन श्रवननि धरै।
सूर कबित सुनि कौन कबि जो नहिं सिर चालन करै॥ ७३॥

श्रीसूरदासजीकी कविताको सुनकर ऐसा कौन कवि है, जो आनन्दमें भरकर सिर नहीं हिलाने लगता हो। इनकी कवितामें सुन्दर सरस उक्तियाँ, मधुर व्यंग्यपूर्ण उपहास (सुभाषित, अनोखा भाव, रहस्य), अनूठे अनुप्रास और ललितवर्ण-मैत्री अत्यन्त प्रचुरताके साथ वर्तमान हैं। इनकी वाणीमें प्रेमका ओर-छोर निर्वाह देखा जाता है तथा कवितामें प्रयुक्त शब्दोंके सम्बन्धका पूर्णरूपेण निर्वाह पाया जाता है अर्थात् परस्पर मैत्रीयुक्त शब्दोंका प्रयोग किया गया है। पदोंमें अन्त्यानुप्रास बड़ा ही मनोरम है तथा प्रत्येक पदमें विलक्षण भावार्थ निहित है। दिव्यदृष्टि होनेसे इनके हृदयमें भगवान्‌की सम्पूर्ण लीलाएँ प्रतिबिम्बित होकर प्रकाशित होती थीं, अतः इन्होंने भगवान्‌के जन्म, कर्म, गुण—इन सबका अपनी रसना (जिह्वा)-से बड़ा ही सरस वर्णन किया है। श्रीसूरदासजीद्वारा वर्णित भगवान्‌के जन्म, कर्म, रूप, गुणादिको प्रेमपूर्वक श्रवण करनेसे लोगोंकी बुद्धि निर्मल हो जाती है तथा निर्मल गुणोंसे युक्त हो जाती है अर्थात् उन्हें भी भगवान्‌की लीलाएँ भासने लगती हैं॥ ७३॥

श्रीसूरदासजीके विषयमें कुछ विवरण इस प्रकार है—

सूरदासको किसी विशेषण या उपाधिसे समलंकृत करनेमें उनकी परमोत्कृष्ट भगवद्भक्ति, अत्यन्त विशिष्ट कवित्व-शक्ति और मौलिक अलौकिकताकी उपेक्षाकी आशंका उठ खड़ी होती है; सूरदास पूर्ण भगवद्‌भक्त थे, अलौकिक कवि थे, महामानव थे। महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यके शब्दोंमें वे 'भक्तिके सागर' और श्रीगोसाईं विट्ठलनाथकी सम्मतिमें वे 'पुष्टिमार्गके जहाज' थे। उनका सूरसागर काव्यामृतका असीम सागर है। वे महात्यागी, अनुपम विरागी और परम प्रेमी भक्त थे। भगवान्‌की लीला ही उनकी अपार, अचल और अक्षुण्ण सम्पत्ति थी।

दिल्लीसे थोड़ी दूरपर सीही गाँवमें एक निर्धन ब्राह्मण* के घर संवत् १५३५ वि० में वैशाख शुक्ल पंचमीको धरतीपर एक दिव्य ज्योति बालक सूरदासके रूपमें उतरी, चारों ओर शुभ्र प्रकाश फैल गया; ऐसा लगता था कि कलिकालके प्रभावको कम करनेके लिये भगवती भागीरथीने अपना कायाकल्प किया है। समस्त गाँववाले और शिशुके माता-पिता आश्चर्यचकित हो गये। शिशुके नेत्र बन्द थे, घरमें 'सूर' ने जन्म लिया। अन्धे बालकके प्रति उनके पिता उदासीन रहने लगे, घरके और लोग भी उनकी उपेक्षा ही करते थे। धीरे-धीरे उनके अलौकिक और पवित्र संस्कार जाग उठे, घरके प्रति उनके मनमें वैराग्यका भाव उदय हो गया, उन्होंने गाँवके बाहर एकान्त स्थानमें रहना निश्चय किया। सूर घरसे निकल पड़े, गाँवसे थोड़ी दूरपर एक रमणीय सरोवरके किनारे पीपलवृक्षके तले उन्होंने अपना निवास स्थिर किया। वे लोगोंको शकुन बताते थे और विचित्रता तो यह थी कि उनकी बतायी बातें सही उतरती थीं।

* इन्हें कोई 'ब्रह्मभट्ट' बतलाते हैं, कोई 'सारस्वत'। इस सम्बन्धमें हमारा कोई आग्रह नहीं है। जनताके मनमें आदर तो श्रीसूरदासजीकी परम श्रेष्ठ भक्तिका है।

एक दिन एक जमींदारकी गाय खो गयी। सूरने उसका ठीक-ठीक पता बता दिया। जमींदार उनके चमत्कारसे बहुत प्रभावित हुआ, उसने उनके लिये एक झोपड़ी बनवा दी। सूरका यश दिन-दूना रात-चौगुना बढ़ने लगा। सुदूर गाँवोंसे लोग उनके पास शकुन पूछनेके लिये अधिकाधिक संख्यामें आने लगे। उनकी मान-प्रतिष्ठा और वैभवमें नित्यप्रति वृद्धि होने लगी। सूरदासकी अवस्था इस समय अठारह सालकी थी। उन्होंने विचार किया कि जिस माया-मोहसे उपराम होनेके लिये मैंने घर छोड़ा, वह तो पीछा ही करता आ रहा है। भगवान्के भजनमें विघ्न होते देखकर सूरने उस स्थानको छोड़ दिया। उनको अपना यश तो बढ़ाना नहीं था, वे तो भगवान्के भजन और ध्यानमें रस लेते थे। वे मथुरा आये, उनका मन वहाँ नहीं लगा। उन्होंने गऊघाटपर रहनेका विचार किया। गऊघाट जानेके कुछ दिन पूर्व वे रेणुकाक्षेत्रमें भी रहे, रेणुका (रुनकता)-में उन्हें सन्तों और महात्माओंका सत्संग मिला; पर उस पवित्र स्थानमें उन्हें एकान्तका अभाव बहुत खटकता था। रुनकतासे तीन मील दूर पश्चिमकी ओर यमुनातटपर गऊघाटमें आकर वे काव्य और संगीतशास्त्रका अभ्यास करने लगे। सूरदासकी एक महात्माके रूपमें ख्याति चारों ओर फैलने लगी।

पुष्टिसम्प्रदायके आदि आचार्य महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य अपने निवास-स्थान अड़ैलसे व्रजयात्राके लिये संवत् १५६० वि०में निकल पड़े। उनकी गम्भीर विद्वत्ता, शास्त्रज्ञान और दिग्विजयकी कहानी उत्तर भारतके धार्मिक पुरुषोंके कानोंमें पड़ चुकी थी। महाप्रभुने विश्रामके लिये गऊघाटपर ही अस्थायी निवास घोषित किया। सूरदासने वल्लभाचार्यके दर्शनकी उत्कट इच्छा प्रकट की, आचार्य भी उनसे मिलना चाहते थे। पूर्वजन्मके शुद्ध तथा परम पवित्र संस्कारोंसे अनुप्राणित होकर सूरने आचार्यके दर्शनके लिये पैर आगे बढ़ा दिये, वे चल पड़े। उन्होंने दूरसे ही चरण-वन्दना की, हृदय चरण-धूलि-स्पर्शके लिये आकुल हो उठा। आचार्यने उन्हें आदरपूर्वक अपने पास बैठा लिया, उनके पवित्र संस्पर्शसे सूरके अंग-अंग भगवद्भक्तिकी रसामृतलहरीमें निमग्न हो गये। सूरने विनयके पद सुनाये, भक्तने भगवान्के सामने अपने-आपको पतितोंका नायक घोषितकर उनकी कृपा प्राप्त करना चाहा था—यही उस पदका अभिप्राय था। आचार्यने कहा, 'तुम सूर होकर इस तरह क्यों घिघियाते हो? भगवान्का यश सुनाओ, उनकी लीलाका वर्णन करो।' सूर आचार्यचरणके इस आदेशसे बहुत प्रोत्साहित हुए। उन्होंने विनम्रतापूर्वक कहा कि 'मैं भगवान्की लीलाका रहस्य नहीं जानता।' आचार्यने श्रीमद्भागवतकी स्वरचित सुबोधिनी टीका सुनायी, उन्हें भगवान्की लीलाका रस मिला, वे लीला-सम्बन्धी पद गाने लगे। आचार्यने उन्हें दीक्षा दी। वे तीन दिनोंतक गऊघाटपर रहकर गोकुल चले आये, सूरदास उनके साथ थे। गोकुलमें सूरदास नवनीतप्रियका नित्य दर्शन करके लीलाके सरस पद रचकर उन्हें सुनाने लगे। आचार्य वल्लभके भागवत-पारायणके अनुरूप ही सूरदास लीलाविषयक पद गाते थे। आचार्यके साथ सूरदासजी गोकुलसे गोवर्धन चले आये, उन्होंने श्रीनाथजीका पूजन किया और सदाके लिये उन्हींकी चरण-शरणमें जीवन बितानेका शुभ संकल्प कर लिया। श्रीनाथजीके प्रति उनकी अपूर्व भक्ति थी, आचार्यकी कृपासे वे प्रधान कीर्तनकार नियुक्त हुए।

गोवर्धन आनेपर सूरने अपना स्थायी निवास चन्द्रसरोवरके सन्निकट परासोलीमें स्थिर किया। वे वहाँसे प्रतिदिन श्रीनाथजीके मन्दिर जाते थे और नये-नये पद रचकर उन्हें बड़ी श्रद्धा और भक्तिसे समर्पित करते थे। धीरे-धीरे व्रजके अन्य सिद्ध महात्मा और पुष्टिमार्गके भक्त कवि नन्ददास, कुम्भनदास, गोविन्ददास आदिसे उनका सम्पर्क बढ़ने लगा। भगवद्भक्तिकी कल्पलताकी शीतल छायामें बैठकर उन्होंने सूरसागर-जैसे विशाल ग्रन्थकी रचना कर डाली। आचार्य वल्लभके लीलाप्रवेशके बाद गोसाईं विट्ठलने अष्टछापकी स्थापना की। जिसमें वे प्रमुख कवि घोषित हुए। कभी-कभी परासोलीसे वे नवनीतप्रियके दर्शनके लिये गोकुल भी जाया करते थे।

एक बार संगीत-सम्राट् तानसेन अकबरके सामने सूरदासका एक अत्यन्त सरस और भक्तिपूर्ण पद गा

रहे थे। बादशाह पदकी सरसतापर मुग्ध हो गये। उन्होंने सूरदाससे स्वयं मिलनेकी इच्छा प्रकट की। उस समय आवश्यक राजकार्यसे मथुरा भी जाना था। वे तानसेनके साथ सूरदाससे संवत् १६२३ वि० में मिले। उनकी सहृदयता और अनुनय-विनयसे प्रसन्न होकर सूरदासने पद गाया, जिसका अभिप्राय यह था कि 'हे मन! तुम माधवसे प्रीति करो।' अकबरने परीक्षा ली, उन्होंने अपना यश गानेको कहा। सूर तो राधा-चरण-चारण-चक्रवर्ती श्रीकृष्णके गायक थे, वे गाने लगे—

नाहिन रह्यौ हिय महँ ठौर। नंदनंदन अछत कैसें आनिए उर और॥

अकबर उनकी निःस्पृहतापर मौन हो गये। भक्त सूरके मनमें सिवा श्रीकृष्णके दूसरा रह ही किस तरह पाता। उनका जीवन तो रासेश्वर, लीलाधाम श्रीनिकुंजनायकके प्रेममार्गपर नीलाम हो चुका था।

सूरदास एक बार नवनीतप्रियके मन्दिर गोकुल गये, वे उनके श्रृंगारका ज्यों-का-त्यों वर्णन कर दिया करते थे। गोसाईं विट्ठलनाथके पुत्र गिरधरजीने गोकुलनाथके कहनेसे उस दिन सूरदासकी परीक्षा ली। उन्होंने भगवान्‌का अद्भुत श्रृंगार किया, वस्त्रके स्थानपर मोतियोंकी मालाएँ पहनायीं। सूरने श्रृंगारका अपने दिव्य चक्षुसे देखकर वर्णन किया। वे गाने लगे—

देखे री हरि नंगम नंगा।
जलसुत भूषन अंग बिराजत, बसन हीन छबि उठत तरंगा॥
अंग अंग प्रति अमित माधुरी, निरखि लजित रति कोटि अनंगा।
किलकत दधिसुत मुख ले मन भरि, सूर हँसत ब्रज जुवतिन संगा॥

भक्तकी परीक्षा पूरी हो गयी, भगवान्‌ने अन्धे महाकविकी प्रतिष्ठा अक्षुण्ण रखी, वे भक्तके हृदय-कमलपर नाचने लगे, महागायककी संगीत-माधुरीसे रासरसोन्मत्त नन्दनन्दन प्रमत्त हो उठे, कितना मधुर वर्णन था उनके स्वरूपका!

सूरदासजी त्यागी, विरक्त और प्रेमी भक्त थे। श्रीवल्लभाचार्यके सिद्धान्तोंके पूर्ण ज्ञाता थे। उनकी मानसिक भगवत्सेवा सिद्ध थी। वे महाभागवत थे। उन्होंने अपने उपास्य श्रीराधारानी और श्रीकृष्णके यश-वर्णनको ही श्रेय-मार्ग समझा। गोपी-प्रेमकी ध्वजा हिन्दी काव्य-साहित्यमें फहरानेमें वे अग्रगण्य स्वीकार किये जाते हैं।

उन्होंने पचासी सालकी अवस्थामें गोलोक प्राप्त किया। एक दिन अन्तिम समय निकट जानकर सूरदास श्रीनाथजीकी केवल मंगला-आरतीमें गये। वे नित्य श्रीनाथजीकी प्रत्येक झाँकीमें जाते थे। गोसाईं विट्ठलनाथ श्रृंगार-झाँकीमें उन्हें अनुपस्थित देखकर आश्चर्यचकित हो गये। उन्होंने श्यामसुन्दरकी ओर देखा, प्रभुने अपने परम भक्तका पद नहीं सुना था, सूरदासजी उन्हें नित्य पद सुनाया करते थे। कुम्भनदास, गोविन्ददास आदि चिन्तित हो उठे। गोसाईंजीने करुण स्वरसे कहा—'आज पुष्टिमार्गका जहाज जानेवाला है। जिसको जो कुछ लेना हो, वह ले ले।' उन्होंने भक्तमण्डलीको परासोली भेज दिया और राजभोग समर्पितकर वे कुम्भनदास, गोविन्ददास और चतुर्भुजदास आदिके साथ स्वयं गये। इधर सूरकी दशा विचित्र थी, परासोली आकर उन्होंने श्रीनाथजीकी ध्वजाको नमस्कार किया। उसीकी ओर मुख करके चबूतरेपर लेटकर सोचने लगे कि यह काया पूर्णरूपसे हरिकी सेवामें नहीं प्रयुक्त हो सकी। वे अपने दैन्य और विवशताका स्मरण करने लगे। समस्त लौकिक चिन्ताओंसे मन हटाकर उन्होंने श्रीनाथजी और गोसाईंजीका ध्यान किया। गोसाईंजी आ पहुँचे, आते ही उन्होंने सूरदासका कर अपने हाथमें ले लिया। महाकविने उनकी चरण-वन्दना की। सूरने कहा कि 'मैं तो आपकी ही प्रतीक्षा कर रहा था।' वे पद गाने लगे—

खंजन नैन रूप रस माते।
अतिसय चारु चपल अनियारे, पल पिंजरा न समाते॥

चलि चलि जात निकट स्त्रवननि के, उलटि पलटि ताटंक फँदाते।
सूरदास अंजन गुन अटके, नतरु अबहिं उड़ि जाते॥

अन्त समयमें उनका ध्यान युगलस्वरूप श्रीराधामनमोहनमें लगा हुआ था। श्रीविट्ठलनाथके यह पूछनेपर कि 'चित्तवृत्ति कहाँ है?' उन्होंने कहा कि 'मैं राधारानीकी वन्दना करता हूँ, जिनसे नन्दनन्दन प्रेम करते हैं।'

चतुर्भुजदासने कहा कि 'आपने असंख्य पदोंकी रचना की, पर श्रीमहाप्रभुका यश आपने नहीं वर्णन किया?' सूरकी गुरु-निष्ठा बोल उठी कि 'मैं तो उन्हें साक्षात् भगवान्‌का रूप समझता हूँ, गुरु और भगवान्‌में तनिक भी अन्तर नहीं है। मैंने तो आदिसे अन्ततक उन्हींका यश गाया है।' उनकी रसनाने गुरु-स्तवन किया।

भरोसो दृढ़ इन चरननि केरो।
श्रीबल्लभ नख चन्द्र छटा बिनु सब जग माझ अँधेरो॥
साधन नाहिं और या कलि में जासों होय निबेरो।
'सूर' कहा कहै द्विबिधि आँधरो बिना मोल को चेरो॥

चतुर्भुजदासकी विशेष प्रार्थनापर उन्होंने उपस्थित भगवदीयोंको पुष्टिमार्गके मुख्य सिद्धान्त संक्षेपमें सुनाये! उन्होंने कहा कि 'गोपीजनोंके भावसे भावित भगवान्‌के भजनसे पुष्टिमार्गके रसका अनुभव होता है। इस मार्गमें केवल प्रेमकी ही मर्यादा है।' सूरदासने श्रीराधाकृष्णकी रसमयी छविका ध्यान किया और वे सदाके लिये ध्यानस्थ हो गये।

श्रीपरमानन्ददासजी

पौगँड बाल कैसोर गोपलीला सब गाई।
अचरज कहा यह बात हुतौ पहिलौ जु सखाई॥
नैननि नीर प्रबाह रहत रोमांच रैन दिन।
गदगद गिरा उदार स्याम सोभा भीज्यो तन॥
सारंग छाप ताकी भई श्रवन सुनत आबेस देत।
ब्रजबधू रीति कलिजुग बिषे परमानँद भयो प्रेम केत॥ ७४॥

द्वापरयुगकी श्रीकृष्णानुरागिणी व्रजगोपियोंकी तरह इस कलियुगमें भी श्रीपरमानन्ददासजी प्रेमकी ध्वजा हुए। इन्होंने श्रीकृष्णकी पौगण्डावस्था, बाल्यावस्था एवं कैशोरावस्था आदिकी समस्त लीलाओंका पदोंमें गान किया। इस बातका आश्चर्य ही क्या है? ये पहले (द्वापरयुग)-के श्रीकृष्णके तोक (सखा) ही तो हैं। इनके नेत्रोंसे रात-दिन प्रेमाश्रुओंका प्रवाह चलता रहता था और इनके शरीरमें सदा रोमांच बना रहता था। इनकी उदार वाणी सदैव प्रेमके कारण गद्‌गद बनी रहती थी, ये बड़े उदार थे तथा इनका भाव-तन उदार श्रीश्यामसुन्दरकी शोभासे सराबोर रहता था। सारंग रागमें विशेष पद रचना करनेके कारण इनकी 'सारंग' छाप पड़ गयी थी। इनके द्वारा रचे हुए पदोंको कानोंसे सुनते ही प्रेमावेश आ जाता है॥ ७४॥

श्रीपरमानन्ददासजीका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

श्रीपरमानन्ददासजी भगवान्‌की लीलाके मर्मज्ञ, अनुभवी कवि और कीर्तनकार थे। वे अष्टछापके प्रमुख कवियोंमेंसे एक थे। उन्होंने आजीवन भगवान्‌की लीला गायी। श्रीमद्वल्लभाचार्यजीकी उनपर बड़ी कृपा रहती थी। वे उनका बड़ा सम्मान करते थे। उनका पद-संग्रह 'परमानन्दसागर' के नामसे विख्यात है, उनकी रचनाएँ अत्यन्त सरस और भावपूर्ण हैं। लीलागायक कवियोंमें उन्हें गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है।

परमानन्ददासजीका जन्म सं० १५५० वि० में मार्गशीर्ष शुक्ल ७ को हुआ था। वे कान्यकुब्ज ब्राह्मण

थे, कन्नौजके रहनेवाले थे। जिस दिन वे पैदा हुए, उसी दिन एक धनी व्यक्तिने उनके पिताको बहुत-सा धन दिया। दानके फलस्वरूप घरमें परमानन्द छा गया, पिताने बालकका नाम परमानन्द रखा। उनकी बाल्यावस्था सुखपूर्वक व्यतीत हुई, बचपनसे ही उनके स्वभावमें त्याग और उदारताका बाहुल्य था। उनके पिता साधारण श्रेणीके व्यक्ति थे, दान आदिसे ही जीविका चलाते थे। एक समय कन्नौजमें अकाल पड़ा। हाकिमने दण्डरूपमें उनके पिताका सारा धन छीन लिया। वे कंगाल हो गये। परमानन्द पूर्णरूपसे युवा हो चुके थे। अभीतक उनका विवाह नहीं हुआ था। पिताको सदा उनके विवाहकी चिन्ता बनी रहती थी और परमानन्द उनसे कहा करते थे कि 'आप मेरे विवाहकी चिन्ता न करें, मुझे विवाह ही नहीं करना है। जो कुछ आय हो, उससे परिवारवालोंका पालन करें, साधु-सेवा और अतिथि-सत्कार करें।' पर पिताको तो द्रव्योपार्जनकी धुन सवार थी, वे घरसे निकल पड़े। देश-विदेशमें घूमने लगे। इधर परमानन्द भगवान्‌के गुण-कीर्तन, लीला-गान और साधु-समागममें अपने दिन बिताने लगे। वे युवावस्थामें ही अच्छे कवि और कीर्तनकारके रूपमें प्रसिद्ध हो गये। लोग उन्हें परमानन्द स्वामी कहने लगे। छब्बीस सालकी अवस्थातक वे कन्नौजमें रहे, उसके बाद वे प्रयाग चले आये। स्वामी परमानन्दकी कुटीमें अनेकानेक साधु-सन्त सत्संगके लिये आने लगे। उनकी विरक्ति बढ़ती गयी और काव्य तथा संगीतमें वे पूर्णरूपसे निपुण हो गये।

स्वामी परमानन्द एकादशीकी रात्रिको जागरण करते थे, भगवान्‌की लीलाओंका कीर्तन करते थे। प्रयागमें भगवती कालिन्दीके दूसरे तटपर दिग्विजयी महाप्रभु वल्लभाचार्यका अड़ैलमें निवास-स्थान था। महाप्रभुका जलघरिया कपूर परमानन्द स्वामीके जागरण-उत्सवमें सम्मिलित हुआ करता था। एक दिन एकादशीकी रातको स्वामी परमानन्द कीर्तन कर रहे थे। कपूर चल पड़ा; यमुनामें नाव नहीं थी, वह तैरकर इस पार आ गया। परमानन्द स्वामीने देखा कि उसकी गोदमें एक श्यामवर्णका शिशु बैठा है; उसके सिरपर मयूरपिच्छका मुकुट है, नयन कमलके समान प्रफुल्लित हैं, अधरोंपर अमृतकी ज्योत्स्ना लहरा रही है, गलेमें वनमाला है, पीताम्बरमें उसका शरीर अत्यन्त मनमोहक-सा लग रहा है। परमानन्दके दिव्य संस्कार जाग उठे; उन्हें पूर्ण विश्वास हो गया कि भक्तकी माधुर्यमयी गोदमें भगवान् श्यामसुन्दर ही उनका कीर्तन सुन रहे हैं। उत्सव समाप्त हो गया। स्वप्नमें उन्हें श्रीवल्लभाचार्यके दर्शनकी प्रेरणा मिली। वे दूसरे दिन उनसे मिलनेके लिये चल पड़े। मिलनेपर आचार्यप्रवरने उनसे भगवान्‌का यश वर्णन करनेको कहा। परमानन्दजीने विरहका पद गाया—

जिय की साध जु जियहिं रही री।
बहुरि गुपाल देखि नहिं पाए बिलपत कुंज अहीरी॥
इक दिन सो जु सखी यहि मारग बेचन जात दही री।
प्रीति के लिएँ दान मिस मोहन मेरी बाँह गही री॥
बिनु देखैं छिनु जात कलप सम बिरहा अनल दही री।
परमानँद स्वामी बिनु दरसन नैनन नदी बही री॥

उन्होंने आचार्यको बाललीलाके अनेक पद सुनाये। आचार्यने उन्हें ब्रह्म-सम्बन्ध दिया। परमानन्द स्वामीसे दास बन गये।

सं० १५८२ वि०में वे महाप्रभुजीके साथ व्रज गये। उन्होंने इस यात्रामें आचार्यको अपने पूर्व निवासस्थान कन्नौजमें ठहराया था। आचार्य उनके मुखसे ***'हरि तेरी लीला की सुधि आवै।'*** पद सुनकर तीन दिनोंतक मूर्च्छित रहे।

वे आचार्यप्रवरके साथ सर्वप्रथम गोकुल आये। कुछ दिन रहकर वे उन्हींके साथ वहाँसे गोवर्धन चले आये। वे सदाके लिये गोवर्धनमें ही रह गये। सुरभी-कुण्डपर श्यामतमाल वृक्षके नीचे उन्होंने अपना स्थायी

निवास स्थिर किया। वे नित्य श्रीनाथजीका दर्शन करने जाते थे। कभी-कभी नवनीतप्रियके दर्शनके लिये गोकुल भी जाया करते थे।

सं० १६०२ वि० में गोसाईं विट्ठलनाथजीने उनको 'अष्टछाप'में सम्मिलित कर लिया। वे उच्चकोटिके कवि और भक्त थे। भगवान्के लीला-गानमें उन्हें बड़ा रस मिलता था। एक बार विट्ठलनाथजीके साथ जन्माष्टमीको वे गोकुल आये। नवनीतप्रियके सामने उन्होंने पद-गान किया; वे पद गाते-गाते सुध-बुध भूल गये। ताल-स्वरका उन्हें कुछ भी पता नहीं रहा। उसी अवस्थामें वे गोवर्धन लाये गये। मूर्च्छा समाप्त होनेपर अपनी कुटीमें आये, उन्होंने बोलना छोड़ दिया। गोसाईंजीने उनके शरीरपर हाथ फेरा। परमानन्ददासने नयनोंमें प्रेमाश्रु भरकर कहा कि 'प्रेमपात्र तो केवल नन्द-नन्दन हैं। भक्त तो सुख और दुःख दोनोंमें उन्हींकी कृपाके सहारे जीते रहते हैं।'

सं० १६४१ वि० में भाद्रपद कृष्ण नवमीको उन्होंने गोलोक प्राप्त किया। वे उस समय सुरभी-कुण्डपर ही थे। मध्याह्नका समय था। गोसाईं विट्ठलनाथ उनके अन्तसमयमें उपस्थित थे। परमानन्दका मन युगलस्वरूपकी माधुरीमें संलग्न था। उन्होंने गोसाईंजीके सामने निवेदन किया—

राधे बैठी तिलक सँवारति।
मृगनैनी कुसुमायुध कर धरि नंद सुवनको रूप बिचारति॥
दर्पन हाथ सिंगार बनावति, बासर जुग सम टारति।
अंतर प्रीति स्यामसुंदर सों हरि सँग केलि सँभारति॥
बासर गत रजनी ब्रज आवत मिलत गोबर्धन प्यारी।
'परमानँद' स्वामी के संग मुदित भई ब्रजनारी॥

इस प्रकार श्रीराधाकृष्णकी रूप-सुधाका चिन्तन करते हुए उन्होंने अपनी गोलोक-यात्रा सम्पन्न की।

श्रीकेशवभट्टजी

कस्मीरी की छाप पाप तापनि जग मंडन।
दृढ़ हरि भक्ति कुठार आन धर्म बिटप बिहंडन॥
मथुरा मध्य मलेछ बाद करि बरबट जीते।
काजी अजित अनेक देखि परचै भयभीते॥
बिदित बात संसार सब संत साखि नाहिन दुरी।
केसौभट नर मुकुट मनि जिन की प्रभुता बिस्तरी॥ ७५॥

श्रीकेशवभट्टजी मनुष्योंमें मुकुटमणि हुए, जिनकी महामहिमा सारे संसारमें फैल गयी। आपके नामके साथ 'काश्मीरी' यह विशेषण अतिप्रसिद्ध हो गया था। आप पापों एवं पापरूप लोगोंको ताप देनेवाले तथा जगत्के आभूषणस्वरूप थे। आप परम सुदृढ़ श्रीहरिभक्तिरूपी कुठारसे पाखण्डधर्मरूपी वृक्षोंका समूलोच्छेद करनेवाले हुए। आपने मथुरापुरीमें यवनोंके बढ़ते हुए आतंकको देखकर उनसे वाद-विवादकर उन परम उद्दण्ड यवनोंको बलपूर्वक हराया। अनेकों अजेय काजी आपकी सिद्धिका चमत्कार देखकर एकदम भयभीत हो गये। आपका उपर्युक्त सुयश सारे संसारमें प्रसिद्ध है, सब सन्त इसके साक्षी हैं॥ ७५॥

श्रीकेशवभट्टजीके विषयमें संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

आपका जन्म काश्मीरी ब्राह्मणकुलमें बारहवीं शताब्दीके लगभग हुआ माना जाता है। कुछ इतिहास-वेत्ताओंका कथन है कि काशीमें श्रीरामानन्दजी और नदियामें श्रीचैतन्यदेवजीसे आपका सत्संग हुआ था।

एक बार दिग्विजयनिमित्त पर्यटन करते हुए आप नवद्वीपमें आये। वहाँका विद्वद्वर्ग आपसे भयभीत हो गया। तब श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु अपने शिष्यवर्गको साथ लेकर श्रीगंगाजीके परम सुखद पुलिनपर जाकर बैठ गये और बालकोंको पढ़ाते हुए शास्त्रचर्चा करने लगे। उसी समय टहलते हुए श्रीकेशवभट्टजी भी आकर आपके समीप बैठ गये। तब श्रीमहाप्रभुजी अत्यन्त नम्रतापूर्वक बोले—सारे संसारमें आपका सुयश छा रहा है, अत: मेरे मनमें यह अभिलाषा हो रही है कि मैं भी आपके श्रीमुखसे कुछ शास्त्रसम्बन्धी वार्ता सुनूँ।

श्रीकृष्णचैतन्यके इन वचनोंको सुनकर श्रीकेशवभट्टजी बोले कि तुम तो अभी बालक हो और बालकोंके साथ पढ़ते हो, परंतु बातें बड़ोंकी तरह बहुत बड़ी-बड़ी करते हो। परंतु तुम्हारी नम्रता-सुशीलता आदि देखकर मैं बहुत प्रसन्न हूँ, अत: तुम्हारा जो भी सुननेका आग्रह हो, वह कहो, हम वही सुनायेंगे। श्रीमहाप्रभुजीने कहा—आप श्रीगंगाजीका स्वरूप वर्णन करिये। तब श्रीकेशवभट्टजीने तत्काल स्वरचित नवीन सौ श्लोक धाराप्रवाह कह सुनाये। उन्हें सुनकर श्रीमहाप्रभुजीकी बुद्धि भाव-विभोर हो गयी। तत्पश्चात् उन्हीं सौ श्लोकोंमेंसे एक श्लोक कण्ठस्थ करके श्रीमहाप्रभुजीने भी श्रीकेशवभट्टजीको सुनाया और निवेदन किया कि इस श्लोककी व्याख्या एवं दोष और गुणोंका भी वर्णन करिये। सुनकर श्रीकेशवभट्टजीने कहा कि भला मेरी रचनामें दोष कहाँ? श्रीमहाप्रभुजीने कहा—काव्य-रचनामें दोषका लेश रहना स्वाभाविक ही है। यदि आप मुझे आज्ञा दें तो मैं इसके दोष-गुण कह सुनाऊँ। तब आपने कहा—अच्छा, तुम्ही कहो। तब श्रीमहाप्रभुजीने उस श्लोककी गुण-दोषमयी एक नवीन व्याख्या कर दी। श्रीकेशवभट्टजीने कहा—अच्छा, अब हम प्रात:काल तुमसे फिर मिलेंगे और इसपर अपना विचार व्यक्त करेंगे। ऐसा कहकर आप अपने निवास-स्थानपर चले आये और एकान्तमें श्रीसरस्वतीजीका ध्यान किया। श्रीसरस्वतीजी तत्काल एक बालिकाके रूपमें इनके सम्मुख आ उपस्थित हुईं। आपने उपालम्भभरे स्वरमें कहा कि सारे संसारको जितवा करके आपने एक बालकसे मुझे हरा दिया।

श्रीसरस्वतीजीने कहा—वे बालक नहीं हैं, वे तो साक्षात् लोकपालक भगवान् हैं और मेरे स्वामी हैं। भला मेरी सामर्थ्य ही कितनी है, जो मैं उनके सम्मुख खड़ी होकर वाद-विवाद कर सकूँ! श्रीसरस्वतीजीकी यह सुखस्रोतमयी वाणी सुनकर श्रीकेशवभट्टजी मनमें बड़े हर्षित हुए और वाद-विवादके भावका परित्याग करके श्रीकृष्णचैतन्य-महाप्रभुजीके पास आये तथा बहुत प्रकारसे विनय-प्रार्थना की। तब श्रीमहाप्रभुजीने कृपापूर्वक कहा कि वाद-विवादके प्रपंचको छोड़कर फलस्वरूपा भक्तिका रसास्वादन कीजिये, अब आजसे किसीको भूलकर भी नहीं हराइये। श्रीकेशवभट्टजीने श्रीमहाप्रभुजीकी यह बात हृदयमें धारण कर ली और शास्त्रार्थ तथा दिग्विजय छोड़कर एकान्तिक भक्ति-सुखमें निमग्न रहने लगे।

श्रीप्रियादासजीने श्रीकेशवभट्ट और श्रीचैतन्यमहाप्रभुके इस संवादका इस प्रकार वर्णन किया है—

करि दिगबिजै सब पण्डित हराय दिये लिये बड़े बड़े जीति भीति उपजाई है।
फिरत चौडोल चढ़े गज बाजि लोग संग प्रतिभा कौ रंग आए नदिया प्रभाई है॥
डरे द्विज भारी महाप्रभु जू बिचारी तब लीला बिस्तारी गंगा तीर सुखदाई है।
बैठे ढिंग आय बोले नम्रता जनाय रह्यो जग जसु छाय नेकु सुनै मन भाई है॥ ३३३॥
लरिकान संग पढ़ौ बातैं बड़ी बड़ी गढ़ौ ऐपै रढ़ौ कहौ सोई सीलता पै रीझियै।
'गंगा कौ सरूप कहौ' 'चाहौ दृग आगे सोई' नये सौ श्लोक किये सुनि मति भीजियै॥
तामैं एककण्ठ करि पढ़िकै सुनायौ अहो बड़ो अभिलाष याकी व्याख्या करि दीजियै।
अचरज भारी भयो कैसे तुम सीखि लयो? दयौ लै प्रभाव, तुम्हैं ताने दयो जीजियै॥ ३३४॥
दूषन और भूषन हूँ कीजिये बखान याके सुनि दुखमानि कही दोष कहाँ पाइयै।
कविता प्रबन्ध मध्य रहै खोटि गंध अहो आज्ञा मोको देउ कह्यो कहिकै सुनाइयै॥

व्याख्या करि दई नई औगुन सुगुन मई आए निजधाम भोर मिले समुझाइयै।
सरस्वती ध्यान कियौ आई तत्काल बाल बाल पै हरायो सब जग जितवाइयै॥ ३३५॥
बोली सरस्वती मेरे ईस भगवान वे तौ मान मेरौ कितौ सन्मुख बतराइयै।
भयौ दरसन तुम्हैं मन परसत होत सुनि सुख सोत बानी आए प्रभु पाइयै॥
बिनै बहु करी करी कृपा आप बोले अजू भक्तिफल लीजै काहू भूलि न हराइयै।
हिये धरि लई भीर भार छोड़ि दई पुनि नई यह भई सुनि दुष्ट मरवाइयै॥ ३३६॥

आपके समयमें दिल्लीका बादशाह अलाउद्दीन खिलजी था, उसके उग्र स्वभावसे हिन्दू प्रजा ऊब उठी थी। उसने घोषणा की कि सारे हिन्दू-मन्दिर तोड़ दिये जायँ। उस समय मथुराके सूबेदारके आदेशानुसार एक फ़कीरने लाल दरवाजेपर एक यन्त्र टाँगा, जिसके प्रभावसे जो भी हिन्दू उस दरवाजेसे निकलता, वह मुसलमान बन जाता और दूसरे लोग जबरन उसे अपने धर्ममें शामिल कर लेते। इस महान् विपत्तिसे बचनेके लिये सभी व्रजवासी श्रीभट्टजीके पास पहुँचे। श्रीआचार्यदेव स्वयं शिष्यसमूहको साथ ले उस स्थानपर गये और यन्त्रको तोड़कर धर्मकी रक्षा की।

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

आपु काश्मीर सुनी बसत विश्रान्त तीर तुरक समूह द्वार जन्त्र इक धारियै।
सहज सुभाय कोऊ निकसत आय ताको पकरत जाय ताके सुन्नत निहारियै॥
संग लै हजार शिष्य भरे भक्ति रंग महा अरे वही ठौर बोले नीच पट टारियै।
क्रोध भरि झारे आय सूबा पै पुकारे वे तौ देखि सबै हारे मारे जल बोरि डारियै॥ ३३७॥

श्रीश्रीभट्टजी

मधुर भाव संमिलित ललित लीला सुबलित छबि।
निरखत हरषत हृदै-प्रेम बरषत सुकलित कबि॥
भव निस्तारन हेतु देत दृढ़ भक्ति सबनि नित।
जासु सुजस ससि उदै हरत अति तम भ्रम श्रम चित॥
आनंद कंद श्रीनंदसुत श्रीबृषभानुसुता भजन।
श्रीभट्ट सुभट प्रगट्यो अघट रस रसिकन मन मोद घन॥ ७६॥

महा अजय संसाररिपुको जीतनेमें महावीर श्रीभट्टजीने अपार उज्ज्वल शृंगाररस पारावार प्रकट किया। आप अपनी सरस रचनाओंके द्वारा रसकी वर्षा करके रसिक महानुभावोंके मनको आनन्द प्रदान करनेके लिये मानो मेघके समान (विश्व-व्योममें) प्रकट हुए। आपके पदोंमें माधुर्यभावमयी तथा भक्तोंको सुख देनेवाली ललित लीलाओंसे सुष्ठु प्रकारेण संयुक्त श्रीप्रिया-प्रियतमकी मनोहारिणी छविका साक्षात् दर्शन होता है, जिसे देखते ही रसिकजनोंका हृदय हर्षित हो उठता है तथा हृदयमें प्रेमकी वर्षा-सी होने लगती है। आप ऐसे जगद्विदित कवि हुए। जीवोंको संसार-बन्धनसे मुक्त करनेके लिये अथवा संसार-सागरसे पार करनेके लिये आप अत्यन्त उदारतापूर्वक सबको अविचल अनपायिनी भक्ति प्रदान करते थे। आपका सुयशरूपी चन्द्रमा अपने अभ्युदयसे आज भी जीवोंके हृदयमें स्थित अज्ञानरूपी अन्धकार, विपरीत ज्ञान एवं अनादिकालसे भवाटवीमें भटकनेसे संजात श्रमको दूर कर रहा है। आप सदा-सर्वदा आनन्दकन्द श्रीनन्दनन्दन श्रीकृष्ण एवं श्रीवृषभानुनन्दिनी श्रीराधिकाजीके भजनमें निमग्न रहा करते थे॥ ७६॥

श्रीश्रीभट्टजीके विषयमें कुछ विवरण इस प्रकार है—

विक्रमीय संवत्‌की सोलहवीं सदीके पूर्व वृन्दावनकी पवित्र भूमि मधुर भक्तिसे पूर्ण आप्लावित थी। इसी समय व्रजभाषाके महान् रसिक कवि श्रीभट्टने श्रीराधा-कृष्णकी उपासनाद्वारा समाजको सरस और नवीन भक्ति-चेतनासे समलंकृतकर सगुण लीलाका प्रचार किया। श्रीभट्ट व्रज और मथुराकी ही सीमामें रहनेको परम सुख और आनन्दका साधन मानते थे। व्रजकी लताएँ, कुंज, सरिता, हरीतिमा और मोहिनी छविको वे प्राणोंसे भी प्रिय मानते थे। वे केशव काश्मीरीके अन्तरंग शिष्य थे। कहते हैं कि यवनोंके आतंकके कारण सनातन धर्ममें शिथिलता आ जानेसे देशकी तत्कालीन दुरवस्था देखकर श्रीकेशव कश्मीरीजी आजीवन भक्त, भक्ति, भगवन्त और गुरुके ऐश्वर्य-प्रकाश एवं सिद्धान्त-सम्पादनमें ही लगे रहे। इसके लिये आपने अनेक ग्रन्थोंकी रचना एवं कई बार सम्पूर्ण भारतका भ्रमण किया। फलस्वरूप वैष्णवताका तो खूब प्रचार-प्रसार हुआ, परंतु व्रजरसके यथेष्ट वर्णनकी आपकी लालसा शेष ही रह गयी। यद्यपि आपने अपने ग्रन्थोंमें प्रसंग आनेपर यत्र-तत्र-सर्वत्र इस रसकी बड़ी मधुर विवेचना की है, परंतु स्वतन्त्रतया इस विषयपर कोई प्रतिपादक ग्रन्थ न लिख सके। इसका एक कारण यह भी था कि आपको यह अन्देशा था कि यदि व्रज-प्रेमका वर्णन करनेमें मैं आत्मविभोर हो गया तो फिर उस प्रेम-प्रवाहसे बाहर निकलना मुश्किल हो जायगा। ऐसेमें सनातन धर्मके प्रचारका कार्य रुक जायेगा, अतः आपने स्वयं इस सम्बन्धमें कुछ न लिखकर अपने अन्तरंग शिष्य श्रीभट्टजीको प्रेरणाकर इस रसका प्रकाश कराया। वर्णन आया है कि श्रीश्रीभट्टजी जब अत्यन्त तन्मय होकर व्रजलीलाका वर्णन करने लगे तो उस प्रवाहमें आपने श्रीयुगलकिशोरकी कुंजक्रीड़ाके सौ शतक रच डाले और सबको ले जाकर श्रीगुरुदेवजीके करकमलोंमें अर्पित कर दिया। श्रीकेशव कश्मीरीजीने जब उन पदोंको देखा तो विचार किया कि इन्होंने तो प्रेमावेशमें शृंगाररसकी परम गोपनीयसे भी गोपनीय लीलाओंको एकदम प्रकट कर दिया है। भला, इस कराल कलिकालमें इस रसके ऐसे अधिकारी कहाँ हैं, जो यथावत् इसको समझ सकें। अतः आपने सबका सब श्रीयमुनाजीको भेंट कर दिया और कहा कि श्रीयमुनाजी जो कृपा करके प्रसादरूपमें दें, वही प्रकाशित किया जाय। श्रीयमुनाजीने सौ पदोंको छोड़कर शेष सबको स्वयंमें आत्मसात् कर लिया। वे ही सौ पद '**श्रीयुगलशतक**' के नामसे प्रसिद्ध हैं।

एक बार वे भगवती कलिन्दनन्दिनीके परम पवित्र तटपर विचरण कर रहे थे, उन्होंने नीरव और नितान्त शान्त निकुंजोंकी ओर दृष्टि डाली, भगवान्‌की लीला-माधुरीका रस नयनोंमें उमड़ आया। आकाशमें काली घटाएँ छा गयीं, यमुनाकी लहरोंका यौवन चंचल हो उठा, वंशीवटपर नित्य रास करनेवाले राधारमणकी वंशीस्वर-लहरीने उनकी चित्तवृत्तिपर पूरा-पूरा अधिकार कर लिया। वे नन्दनन्दन और श्रीराधारानीकी रसमयी छविपर सर्वस्व समर्पण करनेके लिये विकल हो उठे। सरस्वतीने उनके कण्ठदेशमें करवट ली। '***सरस समीरकी मन्द-मन्द गति***' उनकी दिव्य संगीत-सुधासे आलोडित हो उठी।

भगवान्‌से विरह-दुःख अब और न सहा गया, उनकी इच्छापूर्तिके लिये वे श्रीरासेश्वरीजीके सहित प्रकट हो गये। श्रीभट्टने देखा कि कुंजमें कदम्बके नीचे कोटि-कन्दर्प-लावण्य-युक्त रास-विहारी अपनी प्रियतमा राधारानीके स्कन्धदेशपर कोमल कर-स्पर्शका सौन्दर्य बिखेर रहे हैं; यमुनाकी स्वच्छ धाराएँ उनके चरण चूमनेके लिये कूलकी मर्यादा तोड़ देना चाहती हैं, पर बालुकाकी सेनाएँ उन्हें विवश कर देती हैं कि वे आगे न बढ़ें। श्रीभट्टने अपना जीवन सफल माना, उन्होंने भगवान्‌की दिव्य और कृपामयी झाँकीको काव्यरूप देकर अपने सौभाग्यकी सराहना की। रोम-रोम पुलकित हो उठा, मल्हाररागका भाग्य जाग उठा—

स्यामा स्याम कुंज तर ठाढ़े, जतन कियो कछु मैं ना।
श्रीभट उमड़ि घटा चहुँ दिसि तें घिरि आई जल सेना॥

'***बसौ मेरे नैननि में दोउ चंद***' की कान्तिमयी इच्छा-पूर्ति ही उनकी अतुल सम्पत्ति थी। भगवान्‌का

रस-रूप ही भवबन्धनसे निवृत्त होनेका कल्याणमय विधान था। श्रीभट्टके पदोंमें भगवान्‌के रसरूपका चिन्तन अधिकतासे हो सका है। उनकी रसोपासना और भक्ति-पद्धतिसे प्रभावित होकर अन्य रसोपासकों और कवियोंने श्रीराधाकृष्णकी निकुंज-लीला-माधुरीके स्तवन और गानसे भक्तिसाहित्यकी श्रीवृद्धिमें जो योग दिया है, वह सर्वथा स्तुत्य है। श्रीभट्ट रस-साहित्यके मर्मज्ञ और भक्त कवि थे।

श्रीहरिव्यासदेवजी

खेचरि नर की सिष्य निपट अचरज यह आवै।
बिदित बात संसार संत मुख कीरति गावै॥
बैरागिन के बृंद रहत सँग स्याम सनेही।
ज्यों जोगेस्वर मध्य मनो सोभित बैदेही॥
श्रीभट्ट चरन रज परस तें सकल सृष्टि जाकों नई।
हरि ब्यास तेज हरि भजन बल देबी कों दीच्छा दई॥ ७७॥

श्रीहरिव्यासजीने भगवद्भजनके तेज और बलसे देवीको भी मन्त्रोपदेश दिया था। अपनी दिव्यगतिसे आकाशमें विचरण करनेवाली देवी मनुष्यकी शिष्या बनीं, यह सुनकर नितान्त ही आश्चर्य होता है, किंतु यह सत्य है, सारे संसारमें यह बात प्रसिद्ध है एवं सन्तजन श्रीमुखसे श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजीकी इस कीर्तिका गान करते हैं। परम स्नेही श्रीसर्वेश्वरभगवान्‌का डोला एवं संसारसे वैराग्यपूर्वक भगवान् श्रीश्यामसुन्दरके श्रीचरण-कमलोंमें अनुराग करनेवाले विरक्त महात्माओंका समूह सदा ही आपके साथ बना रहता था। विरक्तोंके बीचमें आपकी ऐसी शोभा होती थी, जैसे नौ योगेश्वरोंके बीच श्रीविदेहराज जनक शोभा पाते थे। अपने सद्‌गुरुदेव श्रीभट्टदेवाचार्यजीके श्रीचरणकमलरजके स्पर्शके प्रतापसे श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजीके सम्मुख समस्त सृष्टिके लोग सिर झुकाते थे॥ ७७॥

श्रीहरिव्यासदेवजीके विषयमें विवरण इस प्रकार है—

श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदायमें परम वैष्णव आचार्य श्रीहरिव्यासदेवजी बहुत ऊँचे सन्त हो गये हैं। आपका जन्म गौड़ ब्राह्मणकुलमें हुआ था। आपने श्रीभट्टजीसे दीक्षा ली थी। पहली बार जब आप दीक्षाके लिये श्रीगुरुचरणोंमें गये, उस समय श्रीभट्टजी गोवर्धनमें वास कर रहे थे और युगलसरकार श्रीप्रिया-प्रीतमको गोदमें बिठाकर लाड़ लड़ा रहे थे। श्रीभट्टजीने पूछा—'हरिव्यास! हमारे अंगमें कौन विराजते हैं?' हरिव्यासजी बोले, 'महाराज! कोई नहीं।' इसपर श्रीभट्टजीने कहा—'अभी तुम शिष्य होनेयोग्य नहीं हो, अभी बारह वर्षतक श्रीगोवर्धनकी परिक्रमा करो।' गुरु-आज्ञा प्राप्तकर आपने बारह वर्षतक परिक्रमा की। तत्पश्चात् फिर गुरुसमीप आये। गुरुदेवने फिर वही प्रश्न किया और इसपर उन्होंने वही पुराना उत्तर दिया। पुनः बारह वर्ष श्रीगोवर्धनकी परिक्रमा करनेकी आज्ञा हुई। आज्ञा शिरोधार्यकर श्रीहरिव्यासदेवने पुनः बारह वर्षतक परिक्रमा की। तदुपरान्त गुरु-आश्रममें आये और आचार्यकी गोदमें प्रिया-प्रियतमको देखकर कृतकृत्य हो चरणोंमें लोट गये। अब इन्हें योग्य जान आचार्यने दीक्षा दी।

गुरुदेव श्रीभट्टजीके आज्ञानुसार आपने 'युगलशतक' पर संस्कृतमें भाष्य लिखा। स्वामीजीने संस्कृतमें कई मूलग्रन्थ भी लिखे। इनमें 'प्रसन्नभाष्य' मुख्य है। 'दशश्लोकी' के अन्यान्य भाष्योंसे इसमें विशेषता यह है कि वेदके तत्त्वनिरूपणके अतिरिक्त उपासनापर काफी जोर दिया गया है। व्रजभाषामें 'युगल-शतक' नामक पुस्तकमें आपके सौ दोहे और सौ गेय 'पद' संगृहीत हैं, जो मिठासमें अपना जोड़ नहीं रखते। ऊपर दोहेमें जो बात संक्षेपमें कही है, वही नीचे 'पद' में विस्तारसे कही गयी है। इस सम्प्रदायमें 'युगलशतक' पहली ही हिन्दी-

रचना है, शायद इसीसे इसे आदिवाणी कहते हैं और ये ही सर्वप्रथम उत्तरभारतीय सम्प्रदायाचार्य हैं। इनसे पहलेके सभी आचार्य शायद दाक्षिणात्य थे। स्वामीजी इस सम्प्रदायमें उस शाखाके प्रवर्तक हैं, जिसे 'रसिकसम्प्रदाय' कहते हैं। भगवान् श्रीकृष्णके शृंगारी रूपकी उपासना ही इनका सर्वस्व है। श्रीहरिव्यासदेवजीका इतना प्रभाव हुआ कि श्रीनिम्बार्कसम्प्रदायकी इस शाखाके सन्तोंको तबसे लोग 'हरिव्यासी' ही कहने लगे। वैष्णवोंके चारों सम्प्रदायोंमें इस सम्प्रदायके सन्त अब भी 'हरिव्यासी' ही कहलाते हैं।

एक बार श्रीहरिव्यासदेवजी साथमें संतोंकी जमात लिये हुए विचरते-विचरते 'चटथावल' नामक ग्राममें पहुँचे। वहाँ एक बागमें जल-थलका सब सुपास देखकर आप बड़े प्रसन्न हुए और उस बागमें ही उतरकर स्नान, भजन, पूजन आदि नित्यकृत्य करके रसोई करनेका विचार किया। उस बागमें ही एक देवीका मन्दिर था। उसी समय किसीने देवीकी प्रसन्नताके लिये एक बकरेको लाकर देवीके सम्मुख वध किया। यह वीभत्स दृश्य देखकर किसीने जलतक नहीं पिया। सब संत भूखे ही रह गये। दिन बीता, रात्रि आ गयी। उपवासपूर्वक श्रीहरिस्मरणसे भक्तिका तेज तो बढ़ा, पर भागवतापराधके कारण देवी-प्रतिमाका तेज नष्ट हो गया, अतः देवी भक्तके तेजसे एकदम अभिभूत हो गयीं। उन्होंने घबड़ाकर तुरंत नवीन देह धारणकर आकर आपका एवं सब संतोंका दर्शन किया और अत्यन्त नम्रतापूर्वक बोलीं—आपलोग रसोई बनाइये। भूखे क्यों बैठे हैं? आपने उत्तर दिया—अब रसोई कौन करे? पहले करनेका विचार तो था, परंतु यहाँकी स्थिति देखकर मनकी और ही दशा हो गयी। देवीने कहा—जिसके निमित्तसे आपलोगोंको ऐसी खिन्नता प्राप्त हुई, वह देवी मैं ही हूँ। आज मैंने भक्तिका तेज देखा, अतः अब कृपा करके मुझे भी भक्तिका दान दीजिये और अपनी शिष्या बना लीजिये।

देवीकी प्रार्थना सुनकर श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजीने उन्हें शिष्या बनाया। मन्त्रोपदेश श्रवण करनेके उपरान्त देवीजी अत्यन्त शीघ्रतापूर्वक नगरको दौड़ी गयीं और वहाँ जाकर जो उस नगरका प्रमुख था, उसको खाटसमेत भूमिपर पटक दिया। तत्पश्चात् उसकी छातीपर चढ़कर सूक्ष्मरूपसे उसकी जिह्वापर बैठकर उसके ही मुखसे कहने लगीं कि मैं तो श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजीकी शिष्या हो गयी हूँ। तुमलोग भी शीघ्र उनका शिष्यत्व ग्रहण करो। यदि तुमलोग उनका शिष्यत्व नहीं स्वीकार करोगे तो मैं अभी-अभी सबको मार डालूँगी। देवीका उग्र आदेश सुनकर वे परम हिंसक भी डरकर सब-के-सब आकर आपके शिष्य हो गये। एक दिन एक चाण्डाल आपकी शरणमें आया और सद्गतिके लिये प्रार्थना की। आपने उसे भी भक्तिरसका अधिकारी बनाया।

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका वर्णन अपने कवित्तोंमें इस प्रकार किया है—

चटथावल गाँव बाग देखि अनुराग भयौ लयौ नित्त नेम करि चाहैं पाक कीजियै।
देवीको स्थान काहू बकरा लै मार्‍यौ आनि देखत गलानि इहाँ पानी नहिं पीजियै॥
भूख निसि भई भक्ति तेज मिड़ गई नई देह धरि लई आय लखि मति भीजियै।
'करौ जू रसोई' 'कौन करै कछु और भई' 'सोई मोकों दीजै दान शिष्य करि लीजियै'॥ ३३८॥
करी देवी शिष्य सुनि नगरको सटकी यों पटकी लै खाट जाकी बड़ौ सरदार है।
चढ़ी मुख बोलै हौं तो भई हरिव्यासदासी जौ न दास होहु तौ पै अभी डारौं मार है॥
आये सब भृत्य भए मानौ नए तन लए गए दुःख पाप ताप किए भव पार है।
कोऊ दिन रहे नाना भोग सुख लहे एक श्रद्धाकै स्वपच आयो पायौ भक्तिसार है॥ ३३९॥

श्रीदिवाकरजी

उपदेसे नृपसिंह रहत नित आग्याकारी।
पक्व बृच्छ ज्यों नाय संत पोषक उपकारी॥

बानी भोलाराम सुहृद सबहिन पर छाया।
भक्त चरन रज जाचि बिसद राघौ गुन गाया॥
करमचंद कस्यप सदन बहुरि आय मनो बपु धर्‍यो।
अग्यान ध्वांत अंतहि करन द्वितिय दिवाकर अवतर्‍यो॥ ७८॥

जीवोंके हृदयके अज्ञानरूपी अन्धकारको दूर करनेके लिये श्रीदिवाकर भक्तजी मानो दूसरे सूर्यके समान हुए। आपने बड़े-बड़े रजोगुणी, क्रूर प्रकृतिके राजा-महाराजाओंको उपदेश देकर भक्ति-पथपर आरूढ़ किया। वे सब सदा-सर्वदा आपकी आज्ञाका पालन करनेमें तत्पर रहते थे। जिस प्रकार परिपक्व फलोंके भारसे वृक्ष नम्र हो जाते हैं, उसी प्रकार आप अपने सद्‌गुणोंके कारण अत्यन्त विनयशील थे। बड़े ही सद्भावपूर्वक भगवत्प्रसादान्न एवं उपदेशामृतसे सन्तोंका पालन-पोषण करते थे तथा प्राणिमात्रके उपकारमें तत्पर रहते थे। आप बात-बातमें 'भोलाराम' इस प्रकारका उच्चारण करते थे। सबके शुभचिन्तक तथा सबपर कृपा रखते थे। भक्तोंकी चरणरजको ही अपना सर्वस्व समझकर उसीकी कामना-याचना करते थे। आपने आजीवन भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके परमोज्ज्वल गुणोंका गान किया। आपके पिता श्रीकर्मचन्दजी मानो साक्षात् प्रजापति श्रीकश्यपजी थे, उनके घर मानो साक्षात् सूर्यभगवान् ही पुनः भक्त श्रीदिवाकरजीके रूपमें प्रकट हुए॥ ७८॥

श्रीदिवाकरजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीदिवाकरजीका जन्म राजस्थानके देवासा ग्राममें हुआ था। उनके पिता श्रीकर्मचन्द वैश्य परम भगवद्भक्त थे। श्रीदिवाकरजीकी पितामही भी बड़ी उदारहृदया और साधु-सेवी थीं। इस प्रकार श्रीदिवाकरजीमें भक्तिके संस्कार उनके रक्तमें ही विद्यमान थे। श्रीसीतारामजी आपके इष्ट और श्रीअग्रदेवाचार्यजी आपके गुरु थे। आपके जन्मके बाद ही आपके पिता श्रीकर्मचन्दजीने गृहस्थाश्रमका परित्यागकर श्रीअनन्तानन्दाचार्यजीसे विरक्त दीक्षा ले ली थी और अपना सारा जीवन भगवत्-भागवत सेवामें ही बिताया। आपके यहाँ सन्तोंका आगमन प्रायः बना ही रहता था। श्रीदिवाकरजीमें श्रीसन्त-सेवाके प्रति बड़ी निष्ठा है। धीरे-धीरे आपके यहाँ सन्त-सेवाका कार्य तो बढ़ता गया, पर वाणिज्य-व्यापारकी तरफ प्रवृत्ति घटती गयी; फलस्वरूप अर्थाभाव हो गया। फिर भी दिवाकरजीकी उदारता और साधु-सेवामें कोई कमी नहीं आती थी। जब भी कभी घरमें सीधा-सामग्रीका अभाव होता, आप अपनी गुदड़ी किसी वणिक्‌के यहाँ गिरवी रखकर सामान लाते और जब पैसोंकी व्यवस्था हो जाती, तो उसे छुड़ा लाते। एक बार आपके घरपर बीस सन्तोंकी एक मण्डली आ गयी। घरपर कुछ सीधा-सामान था नहीं, अतः आपने अपनी गुदड़ी एक वणिक्‌के यहाँ गिरवी रख दी और उससे खाद्य सामग्री लाकर सन्तोंका सत्कार किया। संयोगकी बात, इस बार पैसोंकी व्यवस्था न हो सकी और आप गुदड़ी छुड़ा न पाये। धीरे-धीरे समय बीतता गया, शीत ऋतु आ गयी, फिर कड़ाकेकी सर्दी पड़ने लगी। एक दिन आप सर्दीसे काँपते हुए वणिक्‌के यहाँ गये और उससे निवेदन किया कि मुझे शीत ऋतु भरके लिये गुदड़ी वापस कर दो, जैसे ही पैसेकी व्यवस्था होगी, मैं आपका कर्ज चुका दूँगा; परंतु गुदड़ी वापस करनेकी कौन कहे, वणिक्‌ने पैसेके बिना इनसे सीधे मुँह बात भी नहीं की। भगवदिच्छा समझ आप वापस लौट आये। रातमें ठण्डके मारे नींद नहीं आ रही थी, तो आप थर-थर काँपते हुए बैठे-बैठे भगवन्नाम-संकीर्तन करने लगे। भगवान्‌से भक्तका यह क्लेश देखा न गया। वे स्वयं एक रजाई लेकर आये और चुपचाप इन्हें ओढ़ा दिया। दूसरे दिन वणिक्‌ने जब इन्हें नयी रजाई ओढ़े देखा तो क्रोधमें भरकर बोला कि मेरे पैसे तो दिये नहीं और अपने लिये नयी रजाई बनवा ली। ऐसा कहकर उस निर्दयी वणिक्‌ने इनकी रजाई छीन ली। रातमें ये फिर थर-थर काँपते भगवन्नाम-संकीर्तन करने लगे, ठण्डके कारण नींद तो आ नहीं रही थी। भगवान् फिर आये और एक नयी रजाई ओढ़ाकर चले गये। अगले दिन वणिक्‌ने इनके पास फिर नयी रजाई देखी तो वह

आश्चर्यचकित हो गया। उसने जब 'रजाई कहाँसे आयी?' पूछा तो आपने सब सच-सच बता दिया। भगवत्कृपाका यह प्रत्यक्ष चमत्कार देखकर वणिक् बहुत लज्जित हुआ और चरणोंमें गिरकर बार-बार क्षमा माँगी तथा उनकी गुदड़ी और रजाई लाकर वापस कर गया। धीरे-धीरे यह चर्चा पूरे गाँवमें फैल गयी। फिर क्या! गाँववालोंने इनका खूब सम्मान किया और सभी लोग इनके शिष्य बन गये।

गोस्वामी श्रीविट्ठलनाथजी

राग भोग नित बिबिध रहत परिचर्या तत्पर।
सय्या भूषन बसन रचित रचना अपने कर॥
वह गोकुल वह नंदसदन दीछित को सोहै।
प्रगट बिभव जहँ घोष देखि सुरपति मन मोहै॥
बल्लभ सुत बल भजन के कलिजुग में द्वापर कियो।
बिठलनाथ ब्रजराज ज्यों लाल लड़ाय कै सुख लियो॥ ७९॥

गोसाईं श्रीविट्ठलनाथजीने व्रजेश्वर श्रीनन्दबाबाकी ही तरह श्रीबालकृष्णभगवान्‌को वात्सल्य भावसे अत्यन्त लाड़-प्यार करके परम सुख प्राप्त किया। आप नित्य प्रति श्रीठाकुरजीकी सेवामें अनेक प्रकारके सामयिक पदोंका गायन एवं उत्तमोत्तम नैवेद्य समर्पणपूर्वक अष्टयाम सेवामें ही तल्लीन रहते थे। आप अपने हाथसे ही श्रीठाकुरजीका वस्त्राभूषणोंसे शृंगार करते थे एवं शयनके लिये शय्या सजाते थे अर्थात् समस्त सेवा स्वयं ही करते थे। द्वापर युगमें श्रीगोकुल एवं श्रीनन्दबाबाके महलकी जो शोभा थी, वह शोभा दाक्षिणात्य दीक्षितब्राह्मण श्रीविट्ठलनाथजीके समयमें भी श्रीगोकुल एवं उनके भवनकी थी। जिस प्रकार द्वापरयुगमें श्रीगोकुलके गोपोंका ऐश्वर्य देखकर देवराज इन्द्र मोहित हो जाते थे, उसी प्रकारका वैभव श्रीविट्ठलनाथजीके समयमें भी श्रीगोकुलमें था। सारांश यह है कि श्रीमद्वल्लभाचार्यजीके पुत्र श्रीविट्ठलनाथजीने भगवद्भजनके बलसे कलियुगमें भी द्वापर कर दिया था॥ ७९॥

गोस्वामी श्रीविट्ठलनाथजीसे सम्बन्धित विशेष विवरण इस प्रकार है—

गोसाईं श्रीविट्ठलनाथजीकी महिमाका बखान असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। वे श्रीवल्लभाचार्य महाराजके पुष्टि-सिद्धान्तोंके भाष्यकार थे। उनकी कीर्तिसुधाके अपार पारावारमें अष्टछापके महाकवि सूरदास, कुम्भनदास आदिने राजरानी भक्तिका अभिषेक करके भागवत धर्मकी जो विजयिनी पताका फहरायी, वह अनन्तकालतक व्रजक्षेत्रमें लहराकर स्वर्गको पृथ्वीपर उतर आनेके लिये चुनौती देती रहेगी। श्रीविट्ठलनाथके जीवनकालमें भक्ति रसमयी हो उठी, श्रीकृष्ण-प्रेमसे सर्वथा सराबोर हो उठी। उन्होंने महाप्रभु वल्लभाचार्यकी प्रेमलक्षणा भक्तिकी आयु दिन-दूनी, रात-चौगुनी बढ़ा दी। अष्टछापके कवियोंने उनके प्रति जो अगाध श्रद्धाभक्ति अपनी रचनाओंमें प्रकट की है, वह उनकी परमोत्कृष्ट भगवदीयताकी परिचायिका है। श्रीविट्ठलनाथ महाप्रभु वल्लभके शुद्धाद्वैतदर्शनके भक्तिप्रतीक थे।

श्रीगोसाईं विट्ठलनाथ महाप्रभु वल्लभके द्वितीय पुत्र थे। उनके प्रकट होनेपर केवल तैलंगकुल ही नहीं पवित्र हुआ, अपितु समस्त भारतदेश पवित्र और कृतार्थ हो गया। उनका जन्म संवत् १५७२ वि० में काशीके निकट चरणाट (चुनार)-में हुआ। उनके पिता श्रीवल्लभ नवजात शिशुको अपने पूर्व निवासस्थान अड़ैल ले आये और वहाँ उन्होंने उनके आवश्यक संस्कार कराये। भाग्यशाली विट्ठलके प्राकट्यपर महाकवि सूरने मंगलगीत गाया था। गोकुलमें नन्दमहोत्सव मनाया गया था। कलियुगके जीवोंके उद्धार और सन्तोंके प्रतिपालनके लिये ही उनका जन्म हुआ था। संवत् १५८० वि० में अड़ैलमें उनका यज्ञोपवीत हुआ। अपने पिताकी तरह वे भी गृहस्थ थे; उन्होंने दो विवाह किये थे, पहली पत्नीका नाम रुक्मिणी और दूसरीका पद्मावती

बता दिया।
ार-बार क्षमा
न गयी। फिर

क्यो।
। ७९ ॥
त्रसे अत्यन्त
येक पदोंका
ठाकुरजीका
ते थे। द्वापर
लनाथजीके
कर देवराज
यह है कि
ा ॥ ७९ ॥

ल्लभाचार्य
महाकवि
फहरायी,
ी रहेगी।
ने महाप्रभु
उनके प्रति
रिचायिका

ा ही नहीं
ं काशीके
अड़ैल ले
कवि सूरने
सन्तोंके
ा। अपने
पद्मावती

था। उनके जीवनका अधिकांश गोवर्धन और गोकुलमें व्यतीत हुआ। अपने पिताद्वारा निर्धारित भगवान्‌की आठ झाँकियोंके अनुरूप विधिवत् सेवा करके भक्तिरसामृतका आस्वादन करनेको ही उन्होंने श्रेयमार्ग स्वीकार किया।

संवत् १५८७ वि० में श्रीवल्लभके गोलोक-प्रयाणके बाद उनके ज्येष्ठ पुत्र श्रीगोपीनाथजी उत्तराधिकारी हुए। थोड़े ही समयके बाद उनका भी लीलाप्रवेश हो गया। गोपीनाथजीकी विधवाने अपने पुत्र श्रीपुरुषोत्तमका पक्ष लिया। कृष्णदास अधिकारीने भी उन्हींका साथ देकर श्रीविट्ठलनाथका ड्योढ़ी-दर्शन बन्द कर दिया। वे श्रीनाथजीके विरहमें सहिष्णुतापूर्वक अपने दिन बिताने लगे। वे परासोली चले गये और वहींसे श्रीनाथजीके मन्दिरके झरोखेकी ओर देखा करते थे। उनकी पताकाको नित्य नमस्कार कर लिया करते थे। परासोलीमें रहते समय उन्होंने श्रीनाथजीके वियोगमें जो रचना की, वह 'विज्ञप्ति' नामसे प्रसिद्ध है। जब उनके पुत्र गिरिधरजीने मधुराके हाकिमसे शिकायत करके कृष्णदास अधिकारीको कैद करवा दिया, तब गोसाईंजीने अन्न-जलका त्याग कर दिया। कृष्णदासके मुक्त होनेपर ही उन्होंने भोजन किया। इस सहानुभूतिका कृष्णदासपर बड़ा प्रभाव पड़ा। उन्होंने गोसाईंजीसे क्षमा माँगी और उनके उत्तराधिकारको मान्यता दी।

श्रीविट्ठलनाथजीने पुष्टिमार्गके विकास और प्रगतिमें बड़ा योग दिया। उन्होंने श्रीकृष्णकी भक्तिप्राप्तिमें अपनी कलाकारिता, काव्यमर्मज्ञता, संगीतनिपुणता और चित्रकारिताका सदुपयोग करके असंख्य जीवोंको भवसागरके पार उतार दिया। भगवद्भक्ति तो उनकी सहज सिद्ध सम्पत्ति थी। महाकवि सूर, नन्ददास, कुम्भनदास, परमानन्ददास, चतुर्भुजदास, छीतस्वामी, गोविन्ददास, कृष्णदासकी कविताको अष्टछापकी पवित्र गद्दीपर प्रतिष्ठितकर उन्होंने भक्तिका रसराजत्व सिद्ध किया। अष्टछाप उनकी कीर्तिकी अमर लता है। बादशाह अकबर और उनके सभासदस्य मानसिंह, बीरबल आदि उनका बड़ा सम्मान करते थे। राजा आसकरण, महारानी दुर्गावती तथा अन्य भगवदीय जीवोंने उनके यशकी गंगामें अपना परलोक बना लिया। अकबरने गोकुल और गोवर्धनकी भूमि उन्हें निःशुल्क दे दी थी। श्रीगोसाईं विट्ठलनाथने गुजरातकी भी यात्रा की थी, उस क्षेत्रमें भागवत-धर्मका प्रचार किया था। उनके २५२ वैष्णव शिष्य बहुत ही प्रसिद्ध हैं। वास्तवमें वे मंगलरूप निधान थे। नन्ददास आदि काव्य-महारथियोंने एक स्वरसे उनकी चरणधूलिकी अलौकिकताका बखान किया है।

संवत् १६४२ वि० में गोवर्धनकी एक कन्दरामें प्रवेशकर उन्होंने अपनी जीवन-लीला समाप्त की।

गोसाईं विट्ठलनाथका जीवन-चरित्र भगवान् श्रीकृष्णके लीला-सौन्दर्यका दर्शन-बोध है। उनका भगवान् श्रीकृष्णके प्रति वात्सल्यपूर्ण पुत्रभाव और श्रीश्रीजीके प्रति पुत्रवधूभाव था। भगवान् और श्रीश्रीजी भी उनके भावकी रक्षा करते हुए वैसी ही लीला करते थे।

एक बार आप अपने बालरूप ठाकुरजीकी सेवा कर रहे थे, अचानक ठाकुरजीको एक बन्दर दिखायी दे गया और वे डरकर आपकी गोदमें छिप गये। यह देखकर आपको बड़ी शंका हुई कि एक छोटे-से बन्दरको देखकर जब ये डर गये तो त्रेतायुगमें पर्वताकार वानर-भालुओंको साथ लेकर इन्होंने रावण-कुम्भ-कर्णादि भयंकर राक्षसोंसे युद्ध कैसे किया होगा? आपके सन्देहको देखकर ठाकुरजीने आपको स्वप्नमें दर्शन दिया और कहा—गुसाईंजी! आप तो मुझे अपना छोटा-सा पुत्र मानते हैं, सो छोटा बालक तो बन्दरको देखकर डर जाता ही है और वह उस समय यदि अपने माता या पिताके पास होता है तो उनकी गोदमें छिप जाता है, बालककी इस क्रियासे उन्हें आनन्द भी आता है, अतः उसी आनन्दकी अनुभूति करानेके लिये मैं आपकी गोदमें छिप गया था। रही त्रेतायुगकी बात तो उस समय ऋषि-मुनियोंने मुझे साक्षात् ईश्वर समझा था, मेरा वह रूप असुर-संहारक था, अतः मैंने उस समय वैसी लीला की थी। ठाकुरजीकी इस कृपापर आप गद्गद हो गये।

श्रीश्रीजीकी भी आपपर इसी प्रकारकी कृपा थी। एक बार आपके घर एक चूड़ी पहनानेवाली आयी। आपके सात पुत्र और सात पुत्रवधुएँ थीं, अतः आपने कहा कि सभी वधुओंको चूड़ी पहना दो और पैसे मुझसे ले लेना। आपका श्रीठाकुरजीमें पुत्रभाव था, अतः श्रीश्रीजी भी अपने आपको आपकी पुत्रवधू ही मानती थीं।

इसलिये जब आपकी सातों पुत्रवधुओंने चूड़ी पहन ली तो श्रीराधिकाजीने चूड़ी पहननेके लिये चुड़िहारिनके सामने अपने कर-कमल बढ़ा दिये। सौन्दर्यके सारे उपमान मिलकर भी जिन हाथोंकी उपमा नहीं दे सकते, उन्हें अपने सम्मुख देख चुड़िहारिन तो सहसा भाव-विभोर हो उठी। कुछ देर बाद जब होश आया तो जैसे-तैसे चूड़ी पहना पायी। इसके बाद जब चुड़िहारिन आपसे पैसे माँगने आयी तो विचित्र स्थिति हो गयी। चुड़िहारिन कहती कि मैंने आठ पुत्रवधुओंको चूड़ी पहनायी है और आप कहते मेरे तो सात ही पुत्र हैं, आठ पुत्रवधुएँ कहाँसे आयीं, अन्ततः थोड़े-से पैसोंके लिये क्या विवाद करना सोचकर आपने आठके पैसे दे दिये। रातमें श्रीश्रीजीने स्वप्नमें कहा—'क्या आप मुझे अपनी पुत्रवधू नहीं मानते हैं? मैंने भी तो चूड़ी पहनी थी, फिर आप आठका पैसा क्यों नहीं दे रहे थे? आपने ही तो कहा था कि सब पुत्रवधुओंको चूड़ी पहना दो, इसीलिये मैंने भी चूड़ी पहन ली।' श्रीश्रीजीके वचनोंको सुनकर आप आनन्दविभोर हो गये। इसी प्रकार आपके विविध चरित्र हैं, जिनमें श्रीठाकुरजी तथा श्रीश्रीजीने आपके वात्सल्यभावको स्वीकार किया है।

गोस्वामी श्रीविट्ठलनाथजीके कृपापात्र श्रीत्रिपुरदासजी थे। इनका चरित्र संक्षेपमें इस प्रकार है—

श्रीत्रिपुरदासजी

भक्त श्रीत्रिपुरदासजी गुसाँई श्रीविट्ठलनाथजीके कृपापात्र सद्गृहस्थ सन्त थे। आप ब्रजमण्डलान्तर्गत शेरगढ़के निवासी थे। आपका जन्म कायस्थवंशमें हुआ था और आपके पिता शेरगढ़ रियासतके यवन राजाके राजमन्त्री थे। इतना सब होते हुए भी आपकी प्रवृत्ति विषय-भोगोंकी ओर न होकर प्रभु-भक्तिकी ओर ही थी। एक बार आप अपने पिताजीके साथ आगरासे आ रहे थे। मार्गमें श्रीगोवर्धनजीमें रुककर आपने श्रीश्रीनाथजीका दर्शन किया। श्रीठाकुरजीका दर्शन करके आप ऐसे आनन्दमग्न हुए कि आपने वहीं रुकनेका मन बना लिया। पिताजीने बार-बार समझाया, परंतु इन्होंने घर जानेसे इनकार कर दिया। अन्तमें वे अकेले ही घरके लिये चल दिये और आप श्रीठाकुरजीकी मधुर झाँकीके दर्शनके लिये वहीं रुके रहे। परंतु दुर्भाग्यवश कुछ दुष्टोंने आपके पिताजीको रास्तेमें ही मार डाला। यद्यपि यह अत्यन्त दुःखद समाचार था, आपको हार्दिक कष्ट तो हुआ, परंतु आपने इसमें भी भगवान्का मंगलमय विधान ही माना। अब आप गृह-परिवार आदिके बन्धनोंसे मुक्त होकर केवल श्रीनाथजीका दर्शन करते और उसीमें आनन्दमग्न रहते। एक दिन जब आप प्रेममयी दशामें आनन्दमग्न थे तो गुसाँई श्रीविट्ठलनाथजी महाराजकी आपपर दृष्टि पड़ी। आपको अधिकारी जीव जानकर उन्होंने परिचय पूछा। आपने आचार्यश्रीके चरणोंमें प्रणिपातकर साष्टांग प्रणाम किया और अत्यन्त दीनतापूर्वक कहा—'प्रभो! मैं मातृ-पितृहीन सर्वथा अनाथ बालक हूँ, अपनी चरण-शरणमें लेकर मुझे सनाथ करें।' आचार्यश्री आपकी प्रभु-भक्ति और विनम्रता देखकर बहुत प्रसन्न हुए और आपको विधिपूर्वक दीक्षा देकर ब्रह्मसम्बन्धकी प्रतिष्ठा की। कुछ दिनतक आप श्रीश्रीनाथजीकी सेवामें श्रीगोवर्धनजीमें रहे, तत्पश्चात् श्रीगुसाँईजीकी आज्ञा मानकर आप पुनः घर आ गये और भक्तिमय जीवन व्यतीत करते हुए घरपर ही निवास करने लगे। यवनराजको जब आपके गृह-आगमनकी जानकारी हुई तो कुछ कृतज्ञतावश और कुछ आपकी योग्यतासे प्रभावित हो, उसने आपको बुलाकर राजमन्त्री बना दिया।

श्रीत्रिपुरदासजी राजमन्त्री बन तो गये, पर जो अनन्त ब्रह्माण्डोंके स्वामीका सेवक रहा हो, उससे किसी तुच्छ यवन राजाकी चाकरी भला कैसे हो सकती थी; फिर प्रभु भी भला अपने सेवकको अन्य किसीकी सेवामें कैसे देख सकते थे! अन्यायी यवनराजकी चाटुकारिता आपसे हो नहीं सकी, अतः उसने द्वेषवश आपका सर्वस्व अपहरण कर लिया और मंत्रिपदसे हटा दिया। इस प्रकार आपको लौकिक बन्धनोंसे पुनः मुक्ति मिल गयी।

आपकी श्रीआचार्य महाप्रभु तथा श्रीश्रीनाथजीके चरणामृतप्रसादमें बड़ी ही निष्ठा थी, बिना चरणामृतप्रसाद लिये आप अन्न-जल कुछ भी ग्रहण नहीं करते थे। संयोगकी बात, एक दिन जब आप भोजन करने गये तो रसोइयेने कहा कि आज चरणामृतप्रसाद एकदम समाप्त हो गया है, यह सुनते ही आप यह कहते

हुए वापस चले गये कि बिना चरणामृतप्रसाद ग्रहण किये तो मैं अन्न-जल ग्रहण करूँगा नहीं; तुमलोग श्रीठाकुरजीका भोग लगाकर प्रसाद पा लेना। भक्त भूखा रहे तो भगवान्‌को भला भोग कैसे प्रिय लग सकता है! श्रीत्रिपुरदासजीकी नियमनिष्ठा, चरणामृतप्रसादके प्रति प्रेम देखकर भगवान् स्वयं एक दस वर्षके बालक बन गये और तीन थैलियाँ लेकर रसोइयेके पास आये और बोले—'भण्डारीजी! ये तीन थैलियाँ श्रीत्रिपुरदासजीने भिजवायी हैं, इनमें एकमें श्रीश्रीनाथजीका महाप्रसाद, दूसरीमें उनका चरणामृतप्रसाद और तीसरी थैलीमें आचार्यश्रीका चरणामृतप्रसाद है।' रसोइयेने थैलियाँ ले लीं और बालरूप भगवान् चलते बने।

श्रीठाकुरजीका भोग लग जानेपर रसोइयेने श्रीत्रिपुरदासजीको बुलानेके लिये भेजा परंतु वे न आये, कई बार बुलानेपर आये तो खिन्न भावसे कहने लगे कि मैंने तो पहले ही कह दिया था कि बिना चरणामृतप्रसाद ग्रहण किये मैं एक कण भी मुखमें नहीं रखूँगा, फिर आप लोग क्यों बार-बार बुला रहे हैं? यह सुनकर आश्चर्यचकित होते हुए रसोइयेने कहा—'आप ही ने तो एक बालकके हाथ तीन थैलियोंमें चरणामृतप्रसाद और महाप्रसाद भेजा था, फिर ऐसी बात क्यों कह रहे हैं?' अब आश्चर्यचकित होनेकी बारी त्रिपुरदासजीकी थी, उन्होंने कहा—मैंने तो किसीसे चरणामृतप्रसाद नहीं भेजा था, कौन लाया? कहाँ है वह बालक? रसोइयेने कहा—'वह तो थैलियाँ देकर तुरंत चला गया था।' अब आपको यह समझते देर न लगी कि करुणाविग्रह श्रीश्रीनाथजीने ही मेरे लिये यह कष्ट किया। प्रभुकी कृपा विचारकर वे गद्‌गद हो गये और उनकी आँखें अश्रुपूरित हो उठीं।

श्रीत्रिपुरदासजीने ऐसी प्रतिज्ञा की थी कि मैं प्रतिवर्ष शीतकालमें ठाकुर श्रीश्रीनाथजीके लिये दगला (अंगरखा) भेजा करूँगा। तदनुसार ये अत्यन्त ही बहुमूल्य वस्त्रका दगला सिलवाते थे, फिर उसमें सुनहले गोटे लगवाते थे और बड़े प्रेमसे भेजते थे। यही कारण है कि इनका भेजा हुआ दगला ठाकुर श्रीनाथजीको अत्यन्त प्रिय लगता था और गोसाईं श्रीविट्ठलनाथजी भी उसे बड़े प्रेमसे श्रीठाकुरजीको धारण करवाते थे। कुछ कालोपरान्त इनका ऐसा समय आया कि राजाने इनका सर्वस्व अपहरण कर लिया। ये एक-एक आने और एक-एक दानेको मोहताज हो गये। इसी बीच शरद् ऋतु आ गयी। तब इन्हें श्रीठाकुरजीके लिये दगला भेजनेकी याद आयी, परंतु धनका सर्वथा अभाव होनेसे श्रीठाकुरजीकी सेवासे वंचित होने तथा प्रतिज्ञा-भंग होनेके दुःखसे इनकी आँखोंमें आँसू छलछला आये। एकाएक पीतलकी एक दावात इनकी नजरमें आयी, फिर तो मानो डूबतेको तिनकेका सहारा मिल गया हो। इन्होंने मनमें निश्चय किया कि इसीको बेचकर श्रीठाकुरजीकी सेवा करूँगा।

श्रीत्रिपुरदासजीने उस दावातको बाजारमें बेचा, उससे उन्हें एक रुपया मिला। उस रुपयेसे इन्होंने केवल मोटे कपड़ेका एक थान खरीदा। फिर उस कपड़ेको लाल रंगमें रँगा। परंतु फिर भी इनका साहस नहीं हुआ कि ऐसे साधारण वस्त्रको लेकर हम कैसे श्रीगोसाईंजीके पास जायँ, अतः उसे घरमें ही रख लिया। सोचा था कि श्रीगिरिराजजीकी ओरसे कोई आयेगा तो उसके द्वारा भेजवा दूँगा। इसी बीच श्रीगोसाईंजीका कोई सेवक अपने गाँवमें आया हुआ सहज ही दीख गया। फिर तो इन्होंने वह वस्त्र उस सेवकको देकर कहा—'आप इसे भण्डारीजीको दे देना। यद्यपि यह वस्त्र श्रीगुसाईंजीके किसी दास-दासीके भी पहननेयोग्य नहीं है तो भी मुझ दीनकी यह तुच्छ भेंट आप ले जाइये, परंतु एक बातका ध्यान रखियेगा, मेरी आपसे यह प्रार्थना है कि इस वस्त्रका समाचार श्रीगुसाईंजीको मत सुनाइयेगा'।

श्रीप्रियादासजी इस घटनाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

कायथ त्रिपुरदास भक्ति सुख राशि भर्‌यो कर्‌यो ऐसो पन सीत दगला पठाइयै।
निपट अमोलपट हिये हित जटि आवै तातें अति भावै नाथ अंग पहिराइयै॥
आयो कोऊ काल नरपति नैं बिहाल कियौ भयौ ईश ख्याल नेकु घर मैं न खाइयै।
वही ऋतु आई सुधि आई आँखि पानी भरि आई एक द्वाति दीठि आई बेचि ल्याइयै॥ ३४०॥

बेचिकै बजार यों रुपैया एक पायौ ताकौ ल्यायौ लोटौ थान मात्र रंग लाल गाइयै।
भीज्यो अनुराग पुनि नैन जल धार भीज्यो भीज्यो दीनताई धरि राख्यो और आइयै॥
कोऊ प्रभु जन आय सहज दिखाई दई भई मन दियो लै 'भँडारी पकराइयै'।
काहू दास दासी के न काम कौ पै जाउ लै कै विनती हमारी जू गुसाईं न सुनाइयै॥ ३४१॥

उस सेवकने श्रीत्रिपुरदासजीके वस्त्रको लाकर भण्डारीके हाथमें दे दिया और उस भण्डारीने उस वस्त्रको बिछाकर उसके ऊपर श्रीठाकुरजीके शृंगारके और बढ़िया वस्त्र रख दिये। परंतु परम-सनेही ठाकुर श्रीश्रीनाथजीसे भक्तके इस प्रेमोपहारकी उपेक्षा सही नहीं गयी, वे व्याकुल होकर बोले—मुझे बड़े जोरसे ठण्डक लग रही है, शीघ्र इसको दूर करनेका कोई उपाय करो। तब श्रीगुसाईंजीने बहुतसे सुन्दर-सुन्दर वस्त्र श्रीअंगपर ओढ़ाये। परंतु ठण्ड नहीं गयी। तब श्रीगुसाईंजीने अँगीठी जलायी। फिर भी ठण्ड दूर नहीं हुई। तब आपके ध्यानमें आया कि किसी भक्तपर अनुग्रह करनेके लिये प्रभु यह लीला कर रहे हैं, अतः तुरंत ही सेवकको बुलाकर पूछा कि इस वर्ष किस-किसकी पोशाकें आयी हैं? बही खोलकर सेवकने सबका नाम सुनाया, परंतु एक त्रिपुरदासजीका नाम नहीं लिया।

गुसाईं श्रीविट्ठलनाथजीने कहा कि मैंने भक्त त्रिपुरदासका नाम तो सुना नहीं, क्या इस वर्ष इनके यहाँसे पोशाक नहीं आयी है? सेवकने कहा—उनका सब धन नष्ट हो गया है, अतः उनके यहाँसे मोटे कपड़ेका एक थान आया है, मैंने उसे और पोशाकोंके नीचे बिछा रखा है। श्रीगुसाईंजी श्रीठाकुरजीके मनकी जान गये कि प्रेम-प्रवीण प्रभु तो भक्तोंके भावको देखकर उनके प्रेमोपहारको सहर्ष स्वीकार करते हैं, आज्ञा दी कि उस कपड़ेको शीघ्र लाओ। सेवक अनमना-सा होकर उस कपड़ेको ले आया। तुरंत ही श्रीठाकुरजीके दर्जीको बुलाकर उस कपड़ेको नाप-साधकर कटवाकर अँगरखा सिलाया गया। श्रीगुसाईंजीने तुरंत उस अँगरखेको श्रीठाकुरजीके श्रीअंगमें धारण कराया, तब श्रीठाकुरजीने बड़े भावमें भरकर कहा कि अब हमारा जाड़ा दूर हो गया।

श्रीप्रियादासजी श्रीत्रिपुरदासजीके प्रति श्रीठाकुरजीके इस भावका इस प्रकार वर्णन करते हैं—

दियौ लै भंडारी कर राखे धरि पट वापै निपट सनेही नाथ बोले अकुलायकै।
भये हैं जड़ाये कोऊ बेग ही उपाय करौ बिबिध उढ़ाये अंग वसन सुहायकै॥
आज्ञा पुनि दई यों अँगीठी बारि दई फेर वही भई सुनि रहे अति ही लजायकै।
सेवक बुलाय कही कौनकी कबाय आई सबैकी सुनाई एक वही ली बचायकै॥ ३४२॥
सुनी न त्रिपुरदास, बोल्यो धन नास भयौ मोटो एक थान आयौ राख्यौ है बिछायकै।
ल्यावो बेगि याही छिन मनकी प्रवीन जानि ल्यायो दुखमानि ब्योंति लई सो सिवायकै॥
अंग पहिराई सुखदाई कापै गाई जाति कही तब बात जाड़ौ गयौ भरि भायकै।
नेह सरसाई लै दिखाई उर आई सबै ऐसी रसिकाई ह्दै राखी है बसायकै॥ ३४३॥

गोस्वामी श्रीविट्ठलेशसुतजी

श्रीगिरधर जू सरससील गोबिंद जु साथहि।
बालकृष्ण जसबीर धीर श्रीगोकुलनाथहि॥
श्रीरघुनाथ जु महाराज श्रीजदुनाथहि भजि।
श्रीघनस्याम जु पगे प्रभू अनुरागी सुधि सजि॥

ए सात प्रगट बिभु भजन जग तारन तस जस गाइये।
श्रीबिट्ठलेस सुत सुहृद श्रीगोबरधन धर ध्याइये॥ ८०॥

गुसाईं श्रीविट्ठलनाथजीके पुत्रोंको सर्वभूतसुहृद् साक्षात् श्रीगोवर्धनधारी श्रीकृष्ण जानकर उनका ध्यान करना चाहिये। उनके नाम हैं—१-श्रीगिरिधरजी, जो बड़े रसिक एवं अत्यन्त सुन्दर शील स्वभाववाले थे। २-श्रीगोविन्दजीका स्वभाव भी वैसा ही था। ३- श्रीबालकृष्णजी महायशस्वी हुए। ४-श्रीगोकुलदासजी बड़े धीर महापुरुष हुए। ५-श्रीरघुनाथजी महाराज एवं ६-श्रीयदुनाथजी महाराज अपने समगुणोंसे भजनेयोग्य हुए। इनका भजन करना चाहिये। ७-श्रीघनश्यामजी सदा-सर्वदा प्रभुप्रेममें पगे रहते थे, बड़े अनुरागी थे, हृदयमें हमेशा प्रभुकी स्मृति सँजोये रहते थे। ये सातों प्रत्यक्ष ही भगवद्विभूति थे, भगवद्भजनमें परम प्रवीण एवं समर्थ थे तथा श्रीकृष्णकी ही भाँति ये भी संसारका उद्धार करनेवाले थे। इनका यशोगान करना चाहिये॥ ८०॥

गुसाईं श्रीविट्ठलनाथजीके पुत्रों (विट्ठलेशसुत)-का विशेष वर्णन इस प्रकार है—

गोसाईं श्रीविट्ठलनाथजीके सात पुत्र (विट्ठलेशसुत)

गुसाईं श्रीविट्ठलनाथजीका श्रीठाकुरजीके प्रति वही भाव था, जो नन्दरायजी और यशोदारानीका बालकृष्णके प्रति था। श्रीठाकुरजीने भी इनके वात्सल्यभावको स्वीकार किया था और उनके साथ छोटे बालक-जैसी ही लीला किया करते थे। वे कभी दूध पीनेमें आना कानी करते, कभी सोनेमें तो कभी बन्दरसे डरकर उनकी गोदमें छिप जाते। श्रीगुसाँईजी उनकी इस लीलासे आनन्दविभोर हो जाया करते थे। उनके वात्सल्यभावपर रीझकर एक बार श्रीठाकुरजी प्रकट हुए और उनसे वर माँगनेको कहा। तब आपने यह वर माँगा कि आपने द्वापरमें श्रीनन्दरायजीको जैसी बाललीलाका सुख दिया एवं उनका आपमें जैसा वात्सल्य-स्नेह था, वैसा ही सुख एवं वैसा ही स्नेह आप कृपा करके हमको भी प्रदान करें। तब श्रीठाकुरजीने कहा—पिताके रूपमें तो मुझे आप पितृसुख दे देंगे, पर बिना माताके मेरी बाललीलाका पूर्ण विकास कैसे होगा? अतः पहले आप मेरे रिक्त मातृपदकी पूर्ति करें, फिर आपको परम प्रभावशाली सात पुत्रोंकी प्राप्ति होगी। उन सभी पुत्रोंमें पाँच-पाँच वर्षतक मेरा आवेश रहेगा। इस प्रकार आपको दीर्घकालतक मेरा वात्सल्य-सुख प्राप्त होता रहेगा। कालान्तरमें प्रभुकृपासे आपको सात पुत्रोंकी प्राप्ति हुई और आप दीर्घकालतक वात्सल्यरससिन्धुमें अवगाहन करते रहे। आपने अपने सातों पुत्रोंके लिये सात गद्दियोंकी स्थापना की, जिससे वैष्णव धर्म और भगवद्भक्तिका खूब प्रचार-प्रसार हुआ। लीलासंवरणकालमें आपने अपने सभी पुत्रोंको श्रीठाकुरजीका एक-एक सेवा-विग्रह प्रदान किया था, जिनकी आज भी परम्परागत रूपसे सेवा-पूजा हो रही है। इसका विवरण इस प्रकार है—(१) श्रीगिरिधरजीको ठाकुर श्रीमथुरेशजी, जो इस समय यतिपुरामें विराजमान हैं; (२) श्रीगोविन्दरायजीको ठाकुर श्रीश्रीनाथजी, जो वर्तमानमें श्रीनाथद्वारा (राजस्थान)-में विराजते हैं; (३) श्रीबालकृष्णजीको श्रीद्वारिकाधीश भगवान्, जो कांकरौलीमें विराज रहे हैं; (४) श्रीगोकुलनाथजीको श्रीगोकुलनाथजी, जो श्रीगोकुलधाममें विराजमान हैं; (५) श्रीरघुनाथजीको श्रीगोकुलचन्द्रमाजी, जो वर्तमानमें श्रीकामवनमें विराज रहे हैं; (६) श्रीयदुनाथजीको श्रीबालकृष्णभगवान्, जो इस समय सूरतमें विराज रहे हैं तथा (७) श्रीघनश्यामजीको ठाकुर श्रीमदनमोहनजी, जो इस समय श्रीकामवनमें विराज रहे हैं।

इस प्रकार श्रीविट्ठलनाथजीके पुत्रोंद्वारा वैष्णवधर्म और भगवद्भक्तिका विपुल प्रचार-प्रसार हुआ।

श्रीकृष्णदासजी

श्रीबल्लभ गुरु दत्त भजन सागर गुन आगर।
कबित नोख निर्दोष नाथ सेवा में नागर॥
बानी बंदित बिदुष सुजस गोपाल अलंकृत।
ब्रज रज अति आराध्य वहै धारी सर्बसु चित॥
सान्निध्य सदा हरि दास बर गौर स्याम दृढ़ ब्रत लियो।
गिरिधरन रीझि कृष्णदास कों नाम माझ साझो दियो॥ ८१॥

श्रीगोवर्धनधारी भगवान् श्रीकृष्णने प्रसन्न होकर श्रीकृष्णदासको अपने नाममें हिस्सा दिया। श्रीकृष्णदासजी श्रीगुरु वल्लभाचार्यजीके द्वारा दिये गये भजन-भावके समुद्र एवं समस्त शुभ गुणोंकी खानि थे। आपके द्वारा रची गयी कविताएँ बड़ी ही अनोखी एवं काव्यदोषसे रहित होती थीं। आप ठाकुर श्रीश्रीनाथजीकी सेवामें बड़े चतुर थे। श्रीगिरिधर गोपालजीके मंगलमय सुयशसे विभूषित आपकी वाणीकी विद्वान् जन भी सराहना करते थे। आप श्रीव्रजकी रज (धूल)-को अपना परम आराध्य मानते थे। चित्तमें उसीको सर्वस्व मानकर शरीरमें एवं सिर-माथेपर धारण करते थे तथा चित्तमें चिन्तन भी करते थे। आप सदा-सर्वदा श्रीहरिदासवर्य श्रीगोवर्धनजीके समीप बने रहते थे एवं सदा बड़े-बड़े सन्तोंके सान्निध्यमें रहते थे। आपने श्रीराधा-माधव-युगलकी सेवाका दृढ़ व्रत ले रखा था॥ ८१॥

श्रीकृष्णदासजीसे सम्बन्धित विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीकृष्णदासजीका जन्म सं० १५५३ वि० में गुजरातप्रदेशके अहमदाबाद जनपदमें चलोतर नामक गाँवमें हुआ था। वे कुनबी कायस्थ थे। पाँच वर्षकी अवस्थासे ही वे भगवान्के लीला-कीर्तन, भजन तथा उत्सवोंमें सम्मिलित होने लगे थे। बाल्यावस्थासे ही बड़े सत्यनिष्ठ और निडर थे। जब वे बारह सालके थे, उनके गाँवमें एक बनजारा आया, उसने माल बेचकर बहुत-सा रुपया जमा किया था। कृष्णदासके पिता गाँवके प्रमुख थे, उन्होंने रातमें उसका रुपया लुटवाकर हड़प लिया। कृष्णदासके सीधे-सादे हृदयपर इस घटनाने बड़ा प्रभाव डाला, उन्होंने अपने पिताके विरुद्ध बनजारेद्वारा न्यायालयमें अभियोग चलाया और उनके साक्ष्यके फलस्वरूप बनजारेको पैसा-पैसा मिल गया। वे घरसे निकाल बाहर किये गये, तीर्थयात्राके लिये चल पड़े।

महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य अड़ैलसे व्रज जा रहे थे। उन्होंने गऊघाटपर अभी दो ही चार दिन पहले सूरको ब्रह्मसम्बन्ध दिया था। महाप्रभुजीने मथुराके विश्रामघाटपर युवक कृष्णदासको देखा, देखते ही समझ लिया कि बालक बड़ा संस्कारी है; उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक उनको दीक्षितकर ब्रह्मसम्बन्ध दिया। आचार्यसे मन्त्र प्राप्त करते ही उन्हें सम्पूर्ण भगवल्लीलाका स्मरण हो आया। आचार्यने उनको श्रीनाथजीके मन्दिरका अधिकारी नियुक्त किया। उनकी देख-रेखमें श्रीनाथजीकी सेवा राजसी ठाटसे होने लगी। दूर-दूरतक उनकी प्रसिद्धि फैल गयी। वे श्रीनाथजीकी सेवा करते थे और सरस पदोंकी रचना करके भक्तिपूर्वक समर्पित करते थे। उनके पद अधिकांश शृंगार-भावना-प्रधान हैं, भक्ति और शृंगारमिश्रित प्रेम-लीला, रासलीलाके सम्बन्धमें उन्होंने अनेकानेक पद लिखे। 'युगल-मान-चरित्र' की रचना-माधुरी और विशिष्ट कवित्व-शक्तिसे प्रभावित होकर श्रीविट्ठलनाथने उनको अष्टछापमें गौरवपूर्ण स्थानसे सम्मानित किया। वे आजीवन अविवाहित रहे।

पुष्टिमार्गके भक्तों और महाप्रभुके शिष्योंमें उनका व्यक्तित्व अत्यन्त विशिष्ट और महत्त्वपूर्ण स्वीकार

किया जाता है। वे बहुत बड़े भगवदीय थे।

श्रीकृष्णदासजी महाप्रभु वल्लभाचार्यजीके शिष्य थे। महाप्रभुने ठाकुर श्रीश्रीनाथजीकी सेवाका सम्पूर्ण भार इन्हें सौपा था। एक बार आप श्रीठाकुरजीके सेवा-कार्यके लिये दिल्ली गये हुए थे। वहाँ बाजारमें कड़ाहीसे निकलती हुई गरमागरम जलेबियोंको देखकर आपने मानसी-सेवामें ही उन जलेबियोंका श्रीश्रीनाथजीको भोग लगाया, भाववश्य भगवान्ने उसे स्वीकार कर लिया। फलस्वरूप जब मन्दिरमें भोग उसारा गया तो विविध भोग सामग्रियोंमें जलेबीका थाल और हाथमें जलेबी प्रत्यक्ष मौजूद पायी गयी। ऐसे ही एक बार आप आगरा गये थे। वहाँ आप एक वेश्याका अत्यन्त मधुर राग-स्वरसे गायन सुनकर प्रेमके वशीभूत हो गये और उससे बोले—क्या तू हमारे चन्द्रमुख श्रीलालजीके यहाँ चलकर गाना सुना सकती है? वेश्याने इन्हें गुणग्राहक तथा प्रेमी देखकर इनके साथ चलनेकी स्वीकृति दे दी। फिर तो ये भी लोक-लाजको सर्वथा दूरकर उसे साथ लेकर चल दिये।

श्रीकृष्णदासजी उस वेश्याको अपने संग श्रीश्रीनाथजीके मन्दिरमें लिवा लाये और बोले—'आजतक तुमने संसारी लोगोंको रिझाया है, अब हमारे श्रीलालजीको रिझाओ। देखो, ये कैसे रिझवार हैं।' वेश्या श्रीश्रीनाथजीका दर्शन करते ही प्रेममतवाली हो गयी और स्वर साधकर उसने आलाप किया। श्रीकृष्णदासजीने पूछा—क्या तुमने मेरे लालजीको अच्छी प्रकार देखा? उसने कहा—हाँ, मैंने देखा, दर्शनमात्रसे ही हृदयको अत्यन्त अच्छे लग रहे हैं। वेश्याने अपने नृत्य, गान, तान, भावभरी मुसकान और नेत्रोंकी चितवनसे श्रीनाथजीको एकदम रिझा लिया। उसने एकदम तदाकार होकर नृत्य-गान किया। प्रेमाधिक्यके कारण उसका शरीर छूट गया। श्रीठाकुरजीने उसके जीवात्माको अंगीकार कर लिया। वेश्याने अपने हृदयमें प्रेमभाव भर रखा था और भगवान् भी प्रेमके भूखे हैं, अतः उसकी जाति-पाँति या कर्मपर दृष्टि न देकर उसके हृदयके प्रेमको ही अपने हृदयमें धारणकर अपना लिया।

श्रीप्रियादासजीने श्रीकृष्णदासजीसे सम्बन्धित इन दो घटनाओंका इस प्रकार वर्णन किया है—

प्रेम रसरास कृष्णदास जू प्रकाश कियौ लियौ नाथ मानि सो प्रमान जग गाइयै।
दिल्लीके बजारमें जलेबी सो निहारि नैन भोग लै लगाई लगी विद्यमान पाइयै॥
राग सुनि भक्तिनी को भए अनुरागबस ससिमुख लाल जूको जाइ कै सुनाइयै।
देखि रिझवार रीझि निकट बुलाइ लई, लई संग चले जग लाजको बहाइयै॥ ३४४॥
नीके अन्हवाय पट आभरन पहिराय सौधौ हू लगाय हरि मन्दिर में ल्याये हैं।
देखि भई मतवारी कीनी लै अलापचारी कह्यौ 'लाल देखे?' बोली देखेमें ही भाये हैं॥
नृत्य, गान, तान, भावभरि मुसक्यान, दृगरूप लपटान, नाथ निपट रिझाये हैं।
है कै तदाकार, तन छूट्यौ अंगीकार करी धरी उर प्रीति मन सबके भिजाये हैं॥ ३४५॥

एक बार श्रीकृष्णदासजी श्रीसूरदासजीसे मिलने आये। पद-रचनाके प्रसंगमें श्रीसूरदासजीने विनोदमें कहा कि आप तो कविता करनेमें बड़े प्रवीण हैं, अतः कोई ऐसा पद बनाकर गाइये, जिसमें मेरे पदोंकी छाया न हो। श्रीकृष्णदासजीने पाँच-सात पद गाये। श्रीसूरदासजी उन पदोंको सुनकर मुसकराने लगे तथा पूछनेपर बताया कि आपके इस पदमें हमारे इस पदकी छाया है। श्रीकृष्णदासजी बड़े संकुचित हुए। श्रीसूरदासजीने कहा कि अच्छा, कोई बात नहीं है, कल प्रातःकाल कोई नया पद बनाकर आकर मुझे सुनाना। निवास-स्थानपर आकर श्रीकृष्णदासजीको भारी सोच हुआ; क्योंकि कोई भी भाव श्रीसूरदासजीसे अछूता नहीं मिल रहा था। श्रीकृष्णदासजीकी सोचका निवारण करनेके लिये प्रभुने स्वयं एक अत्यन्त

कृष्णदासकी नर्तकीपर कृपा [पृ० ५२३]

भक्त सदनपर प्रभुकृपा [पृ० ५७४]

राँका-बाँका [पृ० ५८५]

रसिकमुरारीका हाथीको उपदेश [पृ० ५७१]

पृथ्वीराज और पयहारीजी [पृ० ६७३]

सत्यवादी भक्त घाटम [पृ० ६०५]

नरसीके साँवलशाह [पृ० ६४७]

भक्त अंगद और उनकी बहन [पृ० ६६१]

भक्तिमती मीरा [पृ० ६७०]

श्रीपरशुरामदेवाचार्यजी [पृ० ७१५]

भगवान् नृसिंहकी रत्नावतीपर कृपा [पृ० ७३६]
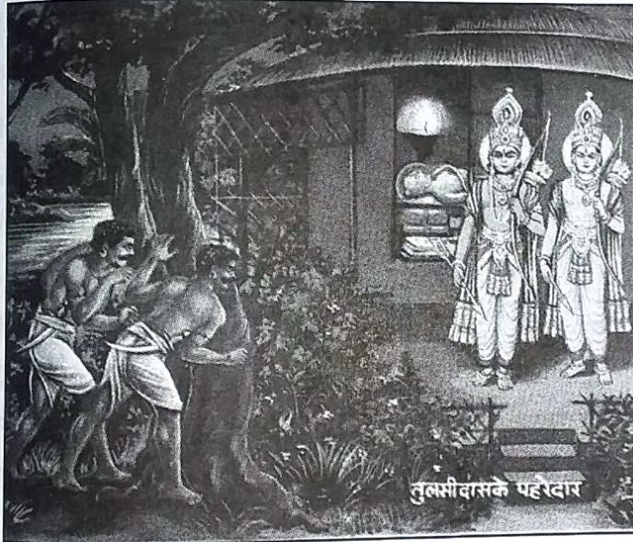
तुलसीदासके पहरेदार [पृ० ७०२]

भक्त गदाधरभट्ट [पृ० ७१९]

भक्त कूबाजी [पृ० ७५६]

भक्तिमती करमैतीबाई [पृ० ७७५]

भक्त प्रेमनिधिपर प्रभुकृपा [पृ० ७८६]

सुन्दर पद बनाकर श्रीकृष्णदासजीकी शय्यापर रख दिया। जब चिन्तामें निमग्न श्रीकृष्णदासजी शय्यापर पौढ़ने गये तो सिरहाने श्रीप्रभुके करकमलसे लिखा हुआ पद पाया। फिर क्या था, प्रातःकाल होते ही श्रीकृष्णदासजी पुनः श्रीसूरदासजीके पास आये और उस पदको सुनाया। सुनकर श्रीसूरदासजी बड़े सुखी हुए, साथ ही यह जानकर कि यह पद श्रीकृष्णदासरचित नहीं हो सकता है, इसे तो श्रीश्रीनाथजीने बनाया है, श्रीसूरदासजीने इसे श्रीठाकुरजीका पक्षपात बताया। श्रीठाकुरजीके इस पक्षपातपर श्रीसूरदासजी रूठ गये। उन्होंने मन्दिरमें कीर्तनकी सेवा बन्द कर दी, तब श्रीठाकुरजीने उन्हें मनाया। फिर तो भक्त और भगवान्के हृदयमें परस्पर प्रेमरंग छा गया।

श्रीठाकुरजीकी इस लीला और भक्तवत्सलताका वर्णन श्रीप्रियादासजीने इस प्रकार किया है—

आए सूर सागर सो कही बड़े नागर हौ कौऊ पद गावो मेरी छाया न मिलाइयै।
गाए पाँच सात सुनि जानि मुसकात कही भले जू प्रभात आनि करिकैं सुनाइयै॥
पर्‍यो सोच भारी गिरिधारी उर धारी बात सुन्दर बनाय सेज धर्‍यो यों लखाइयै।
आयके सुनायौ सुख पायौ पच्छपात लै बतायौ हूँ मनायौ रंग छायौ अभू गाइयै॥ ३४६॥

अन्त समयमें श्रीकृष्णदासजी फिसलकर कुएँमें गिर गये और उसीमें इनका शरीर छूट गया। यद्यपि भजनके प्रतापसे आपको तत्काल दिव्यदेहकी प्राप्ति हो गयी, परंतु लोगोंके मनमें अकाल मृत्युकी आशंका थी। इस आशंकासे रसिकजनोंके मनमें दुःख हुआ। सुजानशिरोमणि श्रीश्रीनाथजीने भक्तोंके हार्दिक दुःखको जानकर उसे दूर करनेके लिये तथा लोगोंकी आशंकाका निवारण करनेके लिये श्रीकृष्णदासजीका परम सुखदायी ग्वालस्वरूप लोगोंको प्रत्यक्ष दिखला दिया। श्रीगोवर्धनजीकी तलहटीमें कुछ व्रजवासियोंको देखकर दिव्यदेहधारी श्रीकृष्णदासजीने कहा कि आगे श्रीबलदाऊजी गये हैं, उन्हींके साथ पीछे-पीछे मैं भी जा रहा हूँ, आपलोग श्रीगुसाईं विट्ठलनाथजीसे मेरा प्रणाम कह देना। तदुपरान्त श्रीकृष्णदासजीने पृथ्वीमें गड़े हुए धनका पता बताया, जो इन्होंने पूर्व शरीरसे सुरक्षार्थ पृथ्वीमें गाड़ रखा था। व्रजवासियोंने आकर श्रीकृष्णदासजीका वृत्तान्त गुसाईं श्रीविट्ठलनाथजीसे निवेदन किया, पुनः निर्दिष्ट स्थान खोदा गया तो वहाँ धन भी मिला। इससे सबको विश्वास हो गया कि निश्चय ही इन व्रजवासियोंको श्रीकृष्णदासजी मिले थे तथा दूसरी बात यह कि श्रीकृष्णदासजीकी अधोगति नहीं हुई, वे भगवान्की नित्यलीलामें सम्मिलित हो गये।

भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

कुवाँ में खिसिल देह छूटि गई नई भई भई यों असंका कछु औरे उर आई है।
रसिकन मन दुख जानि सो सुजान नाथ दियो दरसाय तन ग्वाल सुखदाई है॥
गोबर्धन तीर कही 'आगे बलबीर गये श्रीगुसाईं धीरसों प्रनाम' यों जनाई है।
धनहू बतायो खोदि पायो बिसवास आयो हिये सुख छायो संक पंक लै बहाई है॥ ३४७॥

श्रीवर्धमानजी तथा श्रीगंगलजी

श्रीभागवत बखानि अमृतमै नदी बहाई।
अमल करी सब अवनि ताप हारक सुखदाई॥
भक्तन सों अनुराग दीन सों परम दयाकर।
भजन जसोदानंद संत संघट के आगर॥

भीषमभट अंगज उदार कलिजुग दाता सुगति के।
बर्द्धमान गंगल गँभिर उभै थंभ हरि भगति के॥ ८२॥

श्रीवर्धमानजी तथा श्रीगंगलजी—ये दोनों भाई भक्तिरूपी सेतुके दो सुदृढ़ स्तम्भ थे। इन्होंने श्रीमद्भागवतमहापुराणकी कथा कहकर मानो पृथ्वीपर कथासुधाकी नदी बहा दी तथा अपने दर्शन-स्पर्श-सदुपदेश-समागमादिसे सम्पूर्ण पृथ्वीको पापरहित कर दिया। आप दोनों प्राणियोंके तीनों तापोंको दूर करनेवाले तथा उन्हें परम सुख देनेवाले हुए। आप दोनों भक्तोंसे अत्यन्त प्रेम एवं दीनोंपर दया करनेवाले थे, श्रीयशोदानन्दन श्रीकृष्णकी उपासना करते थे, सन्त-समूहमें अग्रगण्य तथा सेवामें बड़े चतुर थे। आप दोनों श्रीभीष्मभट्टजीके पुत्र थे, स्वभावसे बड़े उदार थे तथा इस कराल कलिकालमें भी प्राणियोंको उत्तम गति अर्थात् भगवत्पद प्रदान करनेवाले थे॥ ८२॥

श्रीवर्धमानजी तथा श्रीगंगलजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

परम विरक्त अकिंचन सन्त श्रीवर्धमानजी तथा श्रीगंगलजी श्रीभीष्मभट्टजीके पुत्र और श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदायके आचार्य श्रीकेशवाचार्यजीके कृपापात्र शिष्य थे। बचपनसे ही आप दोनों भाई संसारसे उदासीन और भगवद्भजनपरायण थे। वैष्णवी दीक्षा लेनेके बाद आप दोनों भाई प्रायः सन्तोंकी मण्डली लेकर विचरण किया करते थे और भगवद्विमुख जीवोंका उद्धार करनेके लिये उन्हें भजनोन्मुख करते रहते थे।

एक बार आप लोग विचरण करते-करते एक ऐसे क्षेत्रमें पहुँच गये, जहाँ भगवद्विमुख नास्तिकों और पाखण्डियोंका बाहुल्य था। वे लोग इन वैष्णवजनोंका अनेक प्रकारसे उपहास करने और अपने किसी तथाकथित गुरुको सिद्ध बताने लगे। अपने गुरुकी झूठी महिमाका ख्यापन करते हुए इन लोगोंके प्रति अशिष्ट बर्ताव करने लगे। उन दुष्टोंने यहाँतक कह दिया कि हमारे गुरुके तेजके सामने तुम लोग ठहर नहीं सकते हो इत्यादि कहकर उन्होंने इनका अनेक प्रकारसे अपमान किया। इतना दुर्व्यवहार करनेपर भी आप लोग क्षमाशील ही बने रहे और उन लोगोंको कुछ न कहकर केवल भगवन्नाम-स्मरण ही करते रहे। आप लोगोंकी साधुता और उन लोगोंकी दुष्टता देखकर भक्तवत्सल भगवान्‌से अपने भक्तोंका तिरस्कार न सहा गया, फिर तो उन सबको सबक सिखानेके लिये प्रभुने ऐसी लीला रची कि कुवाक्य बोलनेवालोंके वस्त्र मल-मूत्रसे बिगड़ गये। तब तो वे भगवद्विमुख लोग बहुत ही लज्जित हुए और भागकर अपने तथाकथित गुरुके पास पहुँचे। उसने मारण प्रयोग किया, परंतु उस मूर्खको यह ज्ञात नहीं था कि भगवान् श्रीहरिके भक्तोंकी रक्षामें अस्त्रराज सुदर्शन चक्र स्वयं नियुक्त रहते हैं, उनपर क्षुद्र आभिचारिक क्रिया-कलापोंका क्या प्रभाव! फलतः प्रयोग करने और करानेवाले स्वयं मारे गये। फिर तो उन भगवद्विमुखोंने 'त्राहि माम्' की पुकार लगाते हुए श्रीगंगलजीकी शरण ली। सन्तहृदय श्रीगंगलजी महाराज क्रोधसे परे थे, उन क्षमामूर्तिने उन सबको न केवल अभयदान दिया, बल्कि मरे हुओंको भगवत्कृपासे प्राणदान भी दिया। इस घटनासे आपका सुयश सर्वत्र फैल गया और उस भगवद्विमुखक्षेत्रके लोग भी इनके शिष्य बनकर वैष्णव जीवन जीने लगे।

इसी प्रकार श्रीवर्धमानजी भी सिद्ध सन्त थे। एक बारकी बात है, किसी गाँवमें वे श्रीमद्भागवत-महापुराणकी कथा कह रहे थे। श्रोता समाजमें एक अन्धी वृद्धा माता भी प्रतिदिन आकर कथा सुना करती थीं। एक बार कथामें विश्राम होनेपर वे आपके पास आयीं और बोलीं—महाराज! आप-जैसे महाभागवत सन्त कृपा करके हमारे ग्राममें पधारे। समस्त ग्रामवासी आपका दर्शनकर तथा सदुपदेशोंका श्रवणकर कृतार्थ हो गये। मुझे भी आपकी कथा सुनकर परम आनन्द प्राप्त हुआ; परंतु मैं अभागिन नेत्रहीन होनेके कारण आपके दर्शनोंका लाभ न प्राप्त कर सकी, इस बातका मुझे बड़ा दुःख है। सन्तहृदय आपश्रीको वृद्धा माताकी

व्याकुलतापर बड़ी दया आयी और आपने भगवत्स्मरण करते हुए भगवच्चरणामृत उन वृद्धा माताके नेत्रोंमें डाल दिया। उस अकालमृत्युहारी और सर्वरोगनाशक अमृतोपम चरणामृतके नेत्रोंमें पड़ते ही वृद्धाके नेत्र तत्काल ज्योतिष्मान् हो उठे। चारों और सन्त-भगवन्तकी जय-जयकार होने लगी। इसी प्रकार आप दोनों भाइयोंके अनेक पावन चरित्र हैं।

श्रीक्षेम गुसाईंजी

रघुनंदन को दास प्रगट भूमंडल जानै।
सर्बस सीताराम और कछु उर नहिं आनै॥
धनुष बान सों प्रीति स्वामि के आयुध प्यारे।
निकट निरंतर रहत होत कबहूँ नहिं न्यारे॥
सूरबीर हनुमत सदृस परम उपासक प्रेम भर।
रामदास परताप तें खेम गुसाईं खेमकर॥ ८३॥

श्रीगुरु रामदासजीके प्रतापसे, कृपाप्रसादसे श्रीक्षेम गुसाईंजी सचमुच प्राणियोंका क्षेम अर्थात् कल्याण करनेवाले हुए। आप श्रीराघवेन्द्रसरकारके अनन्य भक्त थे, यह बात सारे संसारमें विख्यात थी, सब लोग जानते थे। आपके सर्वस्व श्रीसीतारामजी थे। अपने इष्टको छोड़कर और कुछ भी हृदयमें नहीं लाते थे। आपको अपने आराध्यदेव श्रीरामजीके आयुध बड़े प्यारे लगते थे, अत: श्रीरामजीकी ही तरह श्रीरामजीके आयुध धनुष-बाणसे भी अत्यन्त प्रीति करते थे। आप भावनामें निरन्तर अपने प्रभु श्रीसीतारामजीके सन्निकट बने रहते थे, कभी भी एक क्षणके लिये भी अलग नहीं होते थे। आप श्रीहनुमान्‌जीके समान शूर-वीर, अनन्य उपासक एवं परम प्रेमसे परिपूर्ण थे॥ ८३॥

श्रीक्षेम गुसाईंजीके सम्बन्धमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीक्षेमदासजी श्रीगुरु रामदासजीके शिष्य थे, आपकी प्रभु श्रीसीतारामजीमें अनन्य भक्ति थी। एक बार आपको श्रीरामदर्शनकी प्रबल लालसा जगी, आप प्रभु-वियोगमें रात-दिन आँसू बहाते रहते। यहाँतक कि अन्न-जल भी छूट गया। यह देखकर श्रीहनुमान्‌जीको इनपर बड़ी दया आयी। उन्होंने प्रभु श्रीरामचन्द्रजीसे इन्हें दर्शन देनेकी प्रार्थना की। श्रीहनुमान्‌जीकी प्रार्थना और आपके प्रेमसे द्रवीभूत श्रीराघवेन्द्रसरकारने प्रकट होकर आपको दर्शन दिये और वरदान माँगनेको कहा। आपने प्रभुसे उनकी अनन्य भक्ति माँगी और सेवा करनेके लिये उनके आयुधद्वय धनुष-बाण माँगे। भगवान् श्रीराम वरदानस्वरूप इन्हें अपने धनुष-बाण देकर अन्तर्धान हो गये। उसी दिनसे आप प्रभुके धनुष-बाणकी आरती-पूजा करते और उनका दर्शन करके अपने आराध्यके दर्शनका सुख पाते थे। एक बार चोर उन धनुष-बाणोंको चुरा ले गये। अब तो आपने उनके विरहमें अन्न-जलका ही परित्याग कर दिया। लोगोंने बहुत समझाया कि वैसे ही दूसरे धनुष-बाण बनवा दिये जायेंगे, आप भोजन कीजिये; परंतु आप तो उन आयुधोंको साक्षात् अपने इष्टदेव प्रभु श्रीरामजीका ही प्रतीक समझते थे तो भला दूसरे धनुष-बाणसे उनकी क्या समता! फलत: आपने किसीकी एक न सुनी और अन्न-जल ग्रहण करना स्वीकार न किया। आपके इस अनन्य अनुरागको देखकर भगवान्‌के परम दिव्य चिन्मय आयुध (धनुष-बाण) अपने-आप आकर इनके हृदयसे लग गये और इन्हें आश्वासन दिया कि अब कोई चोरीके भावसे यदि हमें स्पर्श करेगा तो हम पहाड़की तरह भारी हो जायँगे। तब इन्होंने

प्रसन्नतापूर्वक उनकी पूजाकर अन्न-जल ग्रहण किया।

एक बार आपके एक शिष्यने उन धनुष-बाणोंको चुराना चाहा, परंतु लाख कोशिश करनेपर भी वह उन्हें उठा नहीं सका। तब वह अपनी करनीपर बहुत लज्जित हुआ और प्रात:काल आपके चरणोंमें प्रणामकर अपने हृदयकी दुर्भावना और धनुषका चमत्कार सब इनसे निवेदन किया और क्षमा माँगी। आपने कहा कि तुम चोरीकी नीयतसे उन्हें उठाना चाहते थे, इसीलिये वे नहीं उठे, अब जाकर सद्भावपूर्वक उठाओ तो वे फूलकी भाँति उठ जायँगे। आपके कहनेपर शिष्यने सद्भावपूर्वक धनुषका स्पर्श किया और सचमुच वह फूलकी ही भाँति उठ गाया।

श्रीक्षेमगुसाईंजी महाराजकी श्रीसीतारामजीमें अनन्य निष्ठा थी; किसी अन्य देवी-देवताकी सेवा-पूजा क्या, उससे कोई सहायता लेना भी इन्हें स्वीकार नहीं था। आप प्राय: कहा करते थे—

बनै तो रघुबर ते बनै कै बिगरै भरपूर। तुलसी बनै जो और ते ता बनिबे में धूर॥

एक बार श्रीहनुमान्‌जीने इनकी अनन्यताकी परीक्षा लेनेके लिये एक अवधूतका वेश धारण किया और भैरवकी एक सुवर्ण प्रतिमा लेकर इनके पास आये और बोले—महाराजजी! आप इस प्रतिमाको रख लीजिये, जब आपको धनकी आवश्यकता हो तो इसके हाथ-पैर काट लीजियेगा और उन्हें विक्रय करने धनकी प्राप्ति कर लीजियेगा, इसके हाथ-पैर पुन: अपने-आप उत्पन्न हो जायेंगे। यह कहकर उन अवधूतवेशधारी श्रीहनुमान्‌जीने उस प्रतिमाका आपको चमत्कार भी दिखलाया। सोनेका वहाँ ढेर लग गया। अवधूतने कहा—आप इसे रख लीजिये। इसपर आपने मना करते हुए कहा कि मुझे सोना या धनकी आवश्यकता होगी तो मैं अपने राघवेन्द्रसरकारसे माँग लूँगा, किसी यक्ष या भैरवमूर्तिसे मैं सुवर्णकी आशा क्यों करूँ? अवधूतने कहा—रख लीजिये, आपकी कुटीमें किसी कोनेमें पड़ी रहेगी; आपने कहा—'जब मुझे इसकी आवश्यकता नहीं है, तो मैं ऐसी व्यर्थकी वस्तुओंका क्यों संग्रह करूँ?' अवधूतने कहा—'इस मूर्तिसे प्राप्त धनसे आप सन्त-सेवा कर सकते हैं, आखिर सन्त-सेवाके लिये भी तो धनकी आवश्यकता होती ही है?' इस प्रकार अवधूतद्वारा बार-बार तर्क करने और मूर्ति रखनेका आग्रह करनेसे आप उद्विग्न हो उठे और एक डण्डा लेकर यह कहते हुए मारने दौड़े कि तू कौन कपटी है, जो मुझे मेरी निष्ठासे डिगाना चाहता है? भाग जा यहाँसे, नहीं तो मारकर कचूमर निकाल दूँगा। आपकी इस प्रकारकी अनन्यता, अकिंचनता देखकर श्रीहनुमान्‌जी परम प्रसन्न हुए और उन्होंने प्रकट होकर दर्शन दिया तथा इनकी अनन्य भक्तिकी सराहना करते हुए वर माँगनेको कहा। आपने कहा—'मैं जब-जब आपका स्मरण करूँ, आप प्रकट होकर मुझे दर्शन देनेकी कृपा करें।' हनुमान्‌जी 'एवमस्तु' कहकर अन्तर्धान हो गये।

एक बार कुछ पाखण्डी लोग संन्यासीका वेष धारणकर आपके पास आये और आपसे धनकी माँग करने लगे। आपने कहा कि मैं तो अकिंचन साधु हूँ, मेरी कुटीमें आपकी आवश्यकताका जो कुछ हो, वह आप ले लीजिये, परंतु वे लोग हठपूर्वक इनको मारनेका उपक्रम करने लगे। यह देख इन्होंने श्रीहनुमान्‌जीका स्मरण किया। फिर क्या था! इनमें हनुमान्‌जीका आवेश आ गया और इन्होंने अकेले ही सबको मार भगाया।

श्रीविट्ठलदासजी

तिलक दाम सों प्रीति गुनहिं गुन अंतर धार्‌यो।
भक्तन को उत्कर्ष जनम भरि रसन उचार्‌यो॥

सरल हृदै संतोष जहाँ तहँ पर उपकारी।
उत्सव में सुत दान कियौ क्रम दुसकर भारी॥
हरि गोबिंद जै जै गुबिंद गिरा सदा आनंददा।
बिठलदास माथुर मुकुट भयो अमानी मानदा॥ ८४॥

श्रीविट्ठलदासजी मथुराके चतुर्वेदी ब्राह्मणोंमें सिरमौर हुए। आप स्वयं सर्वथा अभिमानशून्य रहते हुए दूसरोंको सम्मान देते थे। वैष्णवताके प्रतीक ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक, श्रीतुलसीकी कण्ठी-माला आदिसे आप अत्यन्त प्रेम करते थे तथा सबमें गुण-ही-गुण देखते थे एवं सबके अवगुणोंपर दृष्टिपात न करके सबके गुणोंको हृदयमें धारण करते थे। आपने जीवनभर भक्तोंकी ही महिमाका जिह्वासे गान किया। आप परम सरल हृदय तथा सन्तोषी थे एवं सदा-सर्वत्र परोपकारमें रत रहा करते थे। आपने भगवान्‌के उत्सवमें पुत्रदानरूपी अत्यन्त महान् कर्म किया, जो औरोंके लिये असम्भव है। आपकी जिह्वासे सदा-सर्वदा ***'हरि गोबिंद जै जै गुबिंद'*** का उच्चारण होता रहता था, जिसे सुनकर सबको परमानन्द प्राप्त होता था॥ ८४॥

श्रीविट्ठलदासजीसे सम्बन्धित विशेष विवरण इस प्रकार है—

मथुरापुरीके चतुर्वेदी ब्राह्मणोंमें दो ब्राह्मण भाई उदयपुरके राणाके पुरोहित थे। एक बार धनके बँटवारेको लेकर दोनों भाई आपसमें लड़कर मर गये। उन्हींमेंसे एकके पुत्र श्रीविट्ठलदासजी थे। ये बचपनसे ही भगवान्‌को हृदयमें बसाये हुए थे। एक दिन सभामें राणा साहबने कहा—पिताके मरनेके बाद वह ब्राह्मण-कुमार कभी भी सभामें नहीं आता है, उसे शीघ्र बुला लाओ। राजकर्मचारियोंने आकर श्रीविट्ठलदासजीसे कहा कि चलो, राणा साहब तुम्हारे सब मनोरथ पूर्ण कर देंगे। तब उन्होंने कहा कि भगवत्कृपासे मेरे सब मनोरथ पूर्ण हो गये हैं, अतः अब तो मैं एकमात्र भगवद्भजनको छोड़कर और कहीं आना-जाना नहीं चाहता। कर्मचारियोंने इनका सन्देश राजाको सुनाया। राजाने इन्हें पुनः यह कहकर बुलवाया और प्रार्थना की कि आज रात्रिमें भगवन्नाम-संकीर्तनपूर्वक जागरण हमारे ही यहाँ हो।

श्रीविट्ठलदासजी साधुओंको साथ लेकर राणा साहबके यहाँ पहुँचे। इनके प्रेमकी परीक्षा करनेके लिये राणाने कुछ दुष्टोंके बहकावेमें आकर जागरणके लिये महलकी तीसरी मंजिलकी छतपर बिछौना बिछवाया। सभी लोग प्रेमपूर्वक कीर्तन तथा नृत्य करने लगे। नाचते-गाते श्रीविट्ठलदासजीको प्रेमावेश आया तो ये बेसुध होकर नृत्य करते हुए छतपरसे गिरकर नीचे पृथ्वीपर आ पड़े। यह देखकर राणाका मुँह एकदम उदास हो गया, वह दुष्टोंको गारी देने लगा कि इनके कहनेसे ही मैंने ऐसा किया और फलस्वरूप इतना महान् अनर्थ हो गया। साधुलोग श्रीविट्ठलदासजीको गोदमें उठाकर घर ले आये। राणाने अपने अपराधके प्रायश्चित्त तथा इनकी वृद्ध माताकी जीविकाके निमित्त इनकी माताको बहुत-सा द्रव्य भेंटमें दिया। तीन दिनतक इनका शरीर मूर्च्छित पड़ा रहा। तीन दिन बाद जब वैष्णवोंने आपको जगाया तो शरीरकी सुधि हुई, आप उठकर बैठ गये। भगवत्कृपासे किसी अंगमें चोट नहीं आयी थी। मूर्च्छा तो प्रेमजन्य थी।

मूर्च्छा दूर होनेपर जब श्रीविट्ठलदासजी उठे तो माताने सब हाल कह सुनाया। उसे सुनकर इन्हें असह्य दुःख हुआ, ये रात्रिमें घरसे निकल पड़े। घूमते-फिरते छठीकरा गाँवमें आकर श्रीगरुड़ गोविन्द भगवान्‌की सेवा-पूजा करने लगे और फिर वहीं रहने लगे।

भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजी महाराजने इस घटनाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

भाई उभैं माथुर सुराना के पुरोहित हे, लरि मरे आपस में जियो एक जाम है।
ताको सुत विट्ठल सुदास सुखरासि हिये लिए बैस थोरी भयौ बड़ौ सेवै स्याम है॥
बोल्यो नृप सभा मध्य 'आवत न विप्र सुत छिप्र लैकै आवौ' कही कह्यौ पूजै काम है।
फेरिकै बुलायौ 'करौ जागरन याही ठौर', काहू समझायौ 'गावै नाचै प्रेमधाम है'॥ ३४८॥
गए संग साधुनि लै बिनै रंग रँगे सब राना उठि आदर दै नीके पधराये हैं।
किये जा बिछौना तीनि छत्तनिके ऊपर लै नाचि गाय आये प्रेम गिरे नीचे आये हैं॥
राजा मुख भयो सेत दुष्टनि को गारी देत सन्त भरि अंक लेत घर मधि ल्याये हैं।
भूप बहु भेंट करी देह वाही भाँति परी पाछे सुधि भई दिन तीसरे जगाये हैं॥ ३४९॥
उठे जब मायने जनाय सब बात कही सही नहीं जात निसि निकसे बिचारिकै।
आये यों छठीकरा में गरुड़ गोविन्दसेवा करत मगन हिये रहत निहारिकै॥
राजाके जे लोग सु तो ढूंढ़ि करि रहे बैठि तिया मात आई करै रुदन पुकारिकै।
किये लै उपाय रही कितौ हा हा खाय ये तौ रहे मँडराय तब बसी मन हारिकै॥ ३५०॥

छठीकरा (गरुड़ गोविन्द)-निवासकालमें एक बार इनका शरीर दुखी हो गया। इनके शारीरिक कष्टको देखकर भगवान् श्रीगरुड़ गोविन्दजीने स्वप्नमें आदेश दिया कि तुम मथुरा चले जाओ। भगवान्ने तीन दिन लगातार इस प्रकारका स्वप्नादेश दिया। तब ये माता और पत्नीको लेकर मथुरा चले आये, जहाँपर इनकी जाति-बिरादरीके लोग रहते थे। परंतु इन्होंने देखा तो वहाँ कुछ और ही रंग छा रहा था। हाँ, एक बढ़ई अवश्य ऐसा था, जो सदा साधु-संगकी अभिलाषा करता था। उसकी सज्जनताको देखकर ये उसीके घर रहने लगे। उन दिनों इनकी पत्नी गर्भवती थी और धनके अभावमें अत्यन्त शोकमग्न रहा करती थी। दैवयोगसे इन्हें एक दिन घरमें मिट्टी खोदते समय पृथ्वीमें गड़ा हुआ धन एवं श्रीठाकुरजीकी एक प्रतिमा मिली। श्रीविट्ठलदासजीने खातीको बुलाकर कहा—देखो, तुम्हारे घरमें पृथ्वीमें गड़ा हुआ यह धन और श्रीठाकुरजीकी प्रतिमा मुझे मिली है, इसे ग्रहण करो। परंतु उस बढ़ईने इनके चरणोंमें माथा टेककर प्रणाम करके कहा—इस धनसे आप ही श्रीठाकुरजीकी सेवा करिये। हम तो आपके दर्शन और सत्संगसे ही परम सुखी हैं।

श्रीप्रियादासजी महाराजने श्रीविट्ठलदासजीके प्रति बढ़ईके दिव्य भावका इस प्रकार वर्णन किया है—

देख्यो जब कष्ट तन प्रभू जू स्वपन दियौ 'जावौ मधुपुरी' ऐसै तीन बार भाषियै।
आये जहाँ जाति पाँति छाये कछु औरै रंग देख्यो एक खाती साधु संग अभिलाखियै॥
तिया रहै गर्भवती सती मति सोचरती खोदि भूमि पाई प्रतिमा सुधन राखियै।
खातीको बुलाय कही, 'लही, यहु लेहु तुम' उन पाँय परि कह्यौ रूप मुख चाखियै॥ ३५१॥

अब श्रीविट्ठलदासजी सदा भगवान्की सेवा-पूजामें लगे रहते थे। धीरे-धीरे जब आपकी भक्ति चारों ओर फैल गयी तो बहुत-से लोग प्रेमपूर्वक आकर आपके शिष्य बन गये। आपके यहाँ रसिकजनों तथा गुणी गायकजनोंका बहुत बड़ा समाज एकत्रित होता था। एक बार ऐसे ही समाजके अवसरपर गुणीजनोंने बधाईके विविध पद गाये। सब लोग आनन्दसे झूम रहे थे। इस बीच वहाँ रूप-गुण-धनसे जटित एक नटी आयी और भगवान्के सामने नृत्य-गान करने लगी। जब वह विविध मूर्च्छनाओंके साथ कटीली तानसे

सबके हृदयमें प्रेमकी चटपटी-सी उत्पन्न करती हुई गाने लगी तो उसके कौशलपर रीझकर श्रीविट्ठलदासजीने प्रेमसे व्याकुल होकर अपने पुत्रको ही भगवान्‌के ऊपर न्यौछावर करके उस नटीको दे दिया।

श्रीविट्ठलदाससुत श्रीरंगीरायजी

श्रीविट्ठलदासजीके पुत्रका नाम श्रीरंगीराय था। श्रीराणासाहबकी एक पुत्री उनकी शिष्या थी। जब उसने सुना कि हमारे गुरुदेवजीको उनके पिताने न्यौछावरमें किसी नटिनीको दे दिया तो उसे बड़ा दुःख हुआ, उसने एकदम अन्न-जलका परित्याग कर दिया। राणासुताने उस नटिनीको संदेश कहलाया कि जितना धन चाहो उतना हमसे ले लो, परंतु मेरे श्रीगुरुदेवजीको मुझे वापस कर दो। उस नटिनीने उत्तरमें कहा कि द्रव्यकी मुझे किंचिन्मात्र भी चाहना नहीं है, हाँ मैं रीझकर तो अपना तन-मन तथा सर्वस्व दे सकती हूँ। तब राणाकी पुत्रीने श्रीविट्ठलदासजीसे पुनः समाज करानेकी प्रार्थना की। उसकी प्रार्थना मानकर श्रीविट्ठलदासजीने दुबारा समाज किया। उसमें राणाकी पुत्रीने स्वयं भी नृत्य किया। उसके नृत्यपर रीझकर औरकी तो बात ही क्या, स्वयं वह नटिनी भी न्यौछावरमें उसे बहुत-सा द्रव्य देने लगी, परंतु उसने नहीं लिया।

वह नटिनी श्रीरंगीरायजीका सुन्दर श‍ृंगार करके, उन्हें एक डोलेमें बिठाकर सभामें लायी और उन्हें श्रीठाकुरजीके द्वारपर ले जाकर न्यौछावर करके राणासुताको भेंट किया। जब राणासुताने उन्हें लेनेके लिये हाथ बढ़ाया तो उन्होंने कहा कि मैं तो मनमोहन श्रीकृष्णचन्द्रके न्यौछावर हो चुका हूँ, अतः तुम मुझे मत लो। परंतु प्रेमार्त उनकी शिष्या राणासुताने उन्हें ले ही लिया। इस प्रकार राणाकी पुत्रीका अभीष्ट सिद्ध तो हो गया, लेकिन दूसरे ही क्षण श्रीरंगीरायजीने अपना तन त्याग दिया। ऐसे श्रीरंगीरायजीको एवं उनकी-सी निष्ठाको कोई कहाँ पा सकता है।

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

करैं सेवा पूजा और काम नहिं दूजा जब फैलि गई भक्ति भये शिष्य बहु भायकै।
बड़ोई समाज होत मानों सिंधु सोत आये बिबिध बधाये गुनी जन उठै गायकै॥
आई एक नटी गुण रूप धन जटी वह गावै तान कटी चटपटी सी लगायकै।
दिये पट भूषन लै भूख न मिटत किहूँ चहूँ दिसि हेरि पुत्र दियो अकुलायकै॥ ३५२॥
'रंगीराय' नाम ताकी सिष्या एक राना सुता भयो दुःख भारी नेकु जलहूँ न पीजियै।
कहि कै पठाई वासों चाहौ सोई धन लीजै मेरो प्रभु रूप मेरे नैननि कूँ दीजियै॥
द्रव्य तौ न चाहौं रीझि चाहौं तन मन दियौ फेरिकै समाज कियौ विनती कौ कीजियै।
जिते गुनी जन तिनै दियो अनगन दाम पाछे नृत्य कर्‍यौ आप देत सो न लीजियै॥ ३५३॥
ल्याई एक डोलामें बैठाय रंगीराय जू कौ सुन्दर सिंगार कही बार तेरी आइयै।
कियौ नृत्य भारी जो विभूति सो तौ वारि लिये भरि अंकवारी भेंट किये द्वार गाइयै॥
'मोहन न्यौछावर मैं भयौ मोहि लेहु मति' लियौ उन शिष्य तन तज्यौ कहा पाइयै।
कह्यौ जू चरित्र बड़े रसिक विचित्रन कौ जो पै लाल मित्र कियौ चाहौ हिये ल्याइयै॥ ३५४॥

श्रीहरिराम हठीलेजी

उग्र तेज ऊदार सुघर सुथराई सींवा।
प्रेम पुंज रस रासि सदा गदगद सुर ग्रीवा॥

भक्तन को अपराध करै ताको फल गायो।
हिरनकसिपु प्रहलाद परम दृष्टांत दिखायो॥
सस्फुट बकता जगत में राज सभा निधरक हियो।
हरिराम हठीले भजन बल राना को उत्तर दियो॥ ८५॥

श्रीहरिराम हठीलेजीने भजनके बलसे चित्तौड़के राणाके साथ निर्भय होकर उत्तर-प्रत्युत्तर किया। आप परम तेजस्वी, उदार, सुन्दर एवं स्वच्छता-पवित्रताकी सीमा थे। आप प्रेम-निधान तथा भक्तिरसकी राशि थे। प्रेमावेशके कारण आप सदा गद्‌गद वाणी बोलते थे। भक्तोंका अपराध करनेपर, उसका क्या दुष्परिणाम भोगना पड़ता है, यह बात आपने जोर देकर कही है और इसकी पुष्टिमें आपने हिरण्यकशिपु और श्रीप्रह्लादजीका ज्वलन्त दृष्टान्त दिया है। आप संसारमें बड़े स्पष्ट वक्ता थे। आपने राजसभामें भी निर्भय होकर राणाको उत्तर दिया॥ ८५॥

श्रीहरिराम हठीलेजीकी राणासे संवादकी घटना इस प्रकार है—

एक संन्यासी थे, उनका राणा साहबके साथ बड़ा स्नेह था। वे उनके साथ सदा चौपड़ खेला करते थे। उन्होंने राणा साहबका बल पाकर एक वैष्णव सन्तकी भूमि छिनवा ली थी। सन्तने राणाके पास जाकर पुकार की, परंतु वह चूँकि संन्यासीके वशमें था, अतः उसने सन्तको फटकारकर भगा दिया। सन्तकी सच्ची बातको भी झूठी करके अनसुनी कर दी। तब वे सन्त श्रीहरिरामजी हठीलेके पास आये और अपना समस्त वृत्तान्त कह सुनाया। श्रीहरिरामजीने उन वैष्णव सन्तको अपना भाई जानकर अत्यन्त प्रेमपूर्वक वार्तालाप किया, उन्हें बहुत प्रकारसे आश्वासन दिया और उनको साथ लेकर आगे-आगे राणाके पास चले। दोनों महानुभाव राणाके यहाँ गये और उससे वार्तालाप करनेकी प्रतीक्षामें बहुत देरतक बैठे रहे, परंतु उस विमुखने इसपर किंचित् ध्यान नहीं दिया कि मेरे यहाँ सन्त-महात्मा आये हैं। तब श्रीहरिरामजीने स्वयं वार्ता चलायी और राजाको समझाया कि वह सन्तकी भूमि संन्यासीसे दिलवा दें, परंतु जब उसने इनकी बातोंपर ध्यान नहीं दिया तो इन्होंने निर्भय होकर राणाको खूब फटकारा और अन्तमें उसे लोक-परलोकका भय दिखाकर सन्तकी भूमि पुनः वापस करवा दी।

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

राना सों सनेह सदा चौपर कौं खेल्यौ करै ऐसो सो संन्यासी भूमि सन्तकी छिनाई है।
जायकै पुकार्‌यौ साधु झिरकि बिडार्‌यो पर्‌यौ विमुखके बस बात साँची लै झुठाई है॥
आये हरिराम जू पै सबही जताई रीति प्रीति करि बोले चल्यौ आगे आवै भाई है।
गये बैठे आयौ जन मनमें न ल्यायौ नृप तब समुझायो झार्‌यौ फेरि भू दिवाई है॥ ३५५॥

श्रीकमलाकरभट्टजी

पंडित कला प्रबीन अधिक आदर दें आरज।
संप्रदाय सिर छत्र द्वितिय मनों मध्वाचारज॥
जेतिक हरि अवतार सबै पूरन करि जानै।
परिपाटी ध्वजबिजै सदृस भागवत बखानै॥
श्रुति स्मृती संमत पुरान तप्त मुद्राधारी भुजा।
कमलाकर भट जगत में तत्वबाद रोपी धुजा॥ ८६॥

पण्डित श्रीकमलाकरभट्टजीने संसारमें तत्त्ववादकी ध्वजा फहरायी। आप शास्त्रार्थ, खण्डन-मण्डन एवं शंका-समाधानादिकी कलाओंमें बड़े चतुर थे। श्रेष्ठ पुरुष आपका बड़ा आदर करते थे। आप 'माध्व-गौड़ेश्वर सम्प्रदाय' के सिरमौर थे। आपको देखकर ऐसा लगता था, मानो आप ब्रह्म-सम्प्रदाय-प्रवर्तकाचार्य श्रीमन्मध्वाचार्यजीकी ही प्रतिमूर्ति हों। आप भगवान्‌के सभी अवतारोंको पूर्णावतार ही जानते एवं मानते थे। श्रीमद्भागवतकी 'विजयध्वजी' टीकाकी पद्धतिसे श्रीमद्भागवतकी व्याख्या करते थे। आपके वचन श्रुति-स्मृति-पुराणसम्मत होते थे। आप अपनी भुजाओंपर तप्त मुद्राओंको धारण किये हुए थे॥ ८६॥

श्रीकमलाकरभट्टजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

पण्डित श्रीकमलाकरजी भट्ट माध्वगौड़ेश्वर सम्प्रदायके सिरमौर सन्त थे। आप अगाध पाण्डित्यसम्पन्न होते हुए भी अत्यन्त विनम्र और साधुस्वभावके थे। एक बार आप एकान्तमें बैठकर भगवल्लीलाओंका चिन्तन कर रहे थे, उसी समय एक शाक्तने आकर आपको शास्त्रार्थकी चुनौती दी। प्रथम तो आपने उसे यों ही टाल देना चाहा, परंतु जब वह जिद्द कर बैठा तो आप भी शास्त्रार्थके लिये तैयार हो गये। उसने विविध युक्तियोंसे अपने मतकी सर्वश्रेष्ठताका प्रतिपादन किया, परंतु आपने अनायास ही उसके समस्त सिद्धान्तोंका ऐसा खण्डन किया कि उसकी वाणी मौन हो गयी। तब उसने उस दिनका शास्त्रार्थ स्थगित कर दिया और अगले दिन पुनः शास्त्रार्थ करनेके लिये कहकर घर चला गया। घर आकर उसने अपनी इष्टदेवीका ध्यान किया। देवीने साक्षात् प्रकट होकर उसे दर्शन दिया। तब उसने उपालम्भपूर्वक देवीसे पूछा कि आपने कल शास्त्रार्थमें मेरी सहायता क्यों नहीं की, मुझे अवमानित होना पड़ा? यह सुनकर देवीने कहा—'श्रीकमलाकरजी भट्ट भगवान्‌के परम भक्त हैं, भगवान्‌के भक्तोंपर मायाका प्रभाव नहीं चलता। भला भगवान्‌के सम्मुख मेरी क्या सत्ता? वे तो मेरे भी स्वामी हैं।' भक्त, भक्ति और भगवान्‌की यह महिमा सुनकर उस शाक्तकी आँखें खुल गयीं और उसने श्रीकमलाकरजी भट्टका शिष्यत्व स्वीकारकर उनसे वैष्णवी दीक्षा ले ली।

श्रीनारायणभट्टजी

गोप्य स्थल मथुरा मँडल जिते बाराह बखाने।
(ते) किए नरायन प्रगट प्रसिध पृथ्वी में जाने॥
भक्ति सुधा को सिंधु सदा सतसंग समाजन।
परम रसग्य अनन्य कृष्न लीला को भाजन॥
ग्यान समारत पच्छ को नाहि न कोउ खंडन बियो।
ब्रजभूमि उपासक भट्ट सो रचि पचि हरि एकै कियो॥ ८७॥

श्रीव्रजभूमिकी उपासना करनेवाला श्रीनारायणभट्टजी-सरीखा भक्त भगवान्‌ने बहुत परिश्रम करके एक ही बनाया। श्रीवाराहपुराणमें मथुरामण्डल (चौरासी कोस)-के जितने तीर्थोंका वर्णन किया गया है, कालके प्रभावसे वे सभी तीर्थ लुप्तप्राय हो गये थे। श्रीनारायणभट्टजीने उन सभी तीर्थोंको प्रकट और प्रसिद्ध किया, यह बात सर्वप्रसिद्ध है और सारी पृथ्वीके लोग जानते हैं। आप भक्तिरसामृतके समुद्र थे तथा सदा ही सन्तोंके समाजमें विराजमान होकर सत्संग किया करते थे। आप परम रसज्ञ, अनन्य निष्ठावान् तथा श्रीकृष्णलीलामृतको धारण करनेके लिये उत्तम पात्र एवं नित्यलीलाके पात्र थे। शुष्कज्ञान तथा कोरे कर्मकाण्डका खण्डन करके भक्तिकी स्थापना करनेवाला आपके समान दूसरा कोई नहीं हुआ॥ ८७॥

श्रीनारायणभट्टजीसे सम्बन्धित विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीनारायणभट्टजीका जन्म दक्षिण भारतके मदुरानगरमें वैशाख शु० १४, सं० १५८८ वि० को हुआ था। आपके पिताका नाम श्रीभास्करभट्ट और माताका नाम यशोमति था। यथासमय उपनयन-संस्कार होनेके बाद आपने अपने पितृव्य श्रीशंकरभट्टजीसे वेद-वेदान्त आदि शास्त्रोंका अध्ययन करना प्रारम्भ किया और बारह वर्षकी अवस्थामें ही उसे पूर्ण कर लिया। भगवान् श्रीराधा-माधव और ब्रज-वृन्दावनके प्रति अनुरागपूर्ण भक्तिभाव आपमें बचपनसे ही था।

एक दिन आप श्रीगोदावरीजीमें स्नान करके स्तोत्रपाठ करते हुए युगलसरकारका ध्यान कर रहे थे। उसी समय प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-माधवजीने प्रकट होकर आपको दर्शन दिया और उपासना-रहस्योपदेशके साथ-साथ यह आदेश दिया कि तुम शीघ्र ही ब्रज जाकर मेरी लीलास्थलियोंका प्रकाश करो। यह कहकर श्रीभगवान्ने आपको अपना 'लाडिलेय' नामक बालस्वरूपवाला श्रीविग्रह प्रदान किया और कहा कि इसकी सेवा-पूजासे तुमको व्रजलीलाके रहस्योंका बोध हो जायगा। इस अलौकिक घटनाके उपरान्त आप व्रजमें निवास करने और लुप्त तीर्थोंका प्राकट्य करनेके लिये घरसे चल दिये और ढाई वर्षतक तीर्थाटन करके वि० सं० १६०२ में आप व्रज पहुँचे। श्रीव्रजधाम पहुँचनेपर सर्वप्रथम आप श्रीगोवर्धनके समीपस्थ श्रीराधा-कुण्ड गये, जहाँ चैतन्यमतानुयायी श्रीकृष्णदास ब्रह्मचारीने इन्हें अपने सम्प्रदायमें आत्मसात् किया। इस प्रकार श्रीनारायणभट्टजीने श्रीकृष्णदास ब्रह्मचारीजीसे सम्प्रदायके सिद्धान्तों एवं उपासना-रहस्यका अध्ययन किया। तदुपरान्त आपने भगवान्की आज्ञाका स्मरणकर व्रजके लुप्त तीर्थोंका उद्धार करनेका निश्चय किया। सर्वप्रथम आपने श्रीराधाकुण्ड और श्यामकुण्डको प्रकट करानेकी योजना बनायी; परंतु उस समय कोई आपकी बातका विश्वास ही नहीं कर रहा था। तब आपने एक स्थानपर दस हाथकी गहराईतक धरतीका उत्खनन कराया तो वहाँ दहीसे भरे एक मृण्मय पात्रकी प्राप्ति हुई और टूटी सीढ़ियाँ भी दिखीं; जिससे लोगोंको आपकी बातका विश्वास हो गया। फिर तो आप सम्पूर्ण व्रजमण्डलमें घूम-घूमकर तीर्थोंको प्रकटित कराने लगे। व्रजवासी भी इसमें आपको पूर्ण सहयोग देते थे। उस समय अकबर दिल्लीका बादशाह था, वह भी आपके कार्योंसे अत्यन्त प्रभावित हुआ, अतः उसने अपने कोषाध्यक्ष राजा टोडरमलको आपकी सेवामें भेजा। श्रीटोडरमलजीके द्वारा सेवाकी प्रार्थना करनेपर आपने कहा कि यदि आपका विशेष प्रेम है तो मैंने जिन-जिन तीर्थोंको प्रकट किया है, उनका स्वरूपानुरूप आप निर्माण करा दीजिये। टोडरमलजीने सहर्ष आज्ञा स्वीकार की और तीर्थोंका सुन्दर ढंगसे निर्माण करा दिया। आपने श्रीबरसाने ग्राममें 'श्रीश्रीजी' और ऊँचे गाँवमें 'श्रीरेवतीरमण बलभद्रजी' के विग्रहोंका प्राकट्य किया था। इन विग्रहोंकी सेवा-पूजा आप स्वयं किया करते थे। आपने बारह वर्षतक श्रीराधाकुण्डपर तथा शेष जीवन ऊँचेगाँवमें निवास करते हुए व्यतीत किया और श्रीवामन-जयन्तीको गोलोक प्रस्थान कर गये।

आपके द्वारा किये गये कतिपय महत्त्वपूर्ण कार्योंका विवरण इस प्रकार है—

(१) मथुरा-मण्डलके गोप्य तीर्थोंका उद्धार, (२) व्रजके वन-उपवन, तीर्थों, देवी-देवताओंकी महिमा तथा भगवान् श्रीकृष्णकी भक्तिके प्रचारार्थ महान् ग्रन्थोंका प्रणयन, (३) रासलीला-अनुकरणका सर्वप्रथम प्राकट्य, रास-प्रचार तथा रास-मण्डलोंका निर्माण, (४) वन-यात्रा तथा व्रज-यात्राका प्रारम्भ, (५) श्रीरेवतीरमण बलदेव और लाडलीस्वरूपकी प्रतिष्ठा और (६) कीर्तनपद्धतिमें 'समाज' का आयोजन।

आपने अनेक ग्रन्थोंका प्रणयन भी किया, जिनमें कुछ इस प्रकार हैं—

(१) ब्रजदीपिका, (२) ब्रजभक्तिविलास, (३) ब्रजप्रदीपिका, (४) ब्रजोत्सवचन्द्रिका, (५)

ब्रजमहोदधि, (६) ब्रजोत्सवाह्लादिनी, (७) बृहत्ब्रजगुणोत्सव, (८) ब्रजप्रकाश, (९) भक्तभूषणसन्दर्भ, (१०) भक्तिविवेक, (११) भक्तिरसतरंगिणी, (१२) साधनदीपिका, (१३) रसिकाह्लादिनी टीका, (१४) प्रेमांकुर नाटक, (१५) लाडिलेयाष्टक, (१६) धर्मप्रवर्तिनी, (१७) सिद्धान्तचूडामणि, (१८) नीतिश्लोकानि, (१९) ब्रजरत्नदीपिका, (२०) भक्तिरहस्य, (२१) राधाविनोदकाव्यस्य टीका।

एक बार आप मथुरामें विराजमान थे। माघका महीना था, बहुतसे लोग तीर्थराजप्रयागमें श्रीत्रिवेणीस्नानको जा रहे थे। आपने उन लोगोंसे कहा कि चलो, मैं दिखाऊँ, श्रीत्रिवेणीजी तो व्रजमें ही हैं। फिर आप सब लोग अन्यत्र कहाँ जा रहे हैं? तब लोगोंने आश्चर्यचकित होकर पूछा कि 'व्रजमें त्रिवेणी कहाँ है?' आपने कहा—'ऊँचे गाँवमें।' फिर आप सबको साथ लिवा लाये एवं भूमि खोदकर श्रीत्रिवेणीजीके तीन स्रोत सबको प्रत्यक्ष दिखा दिये।

श्रीप्रियादासजीने इन घटनाओंका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

भट्ट श्रीनारायन जू भये व्रजपारायन जायँ जाही ग्राम तहाँ व्रत करि ध्याये हैं।
बोलिकै सुनावैं इहां अमुकौ स्वरूप है जू लीला कुण्ड धाम स्याम प्रगट दिखाये हैं॥
ठौर ठौर रासकै विलास लै प्रकास किये जिये यों रसिक जन कोटि सुख पाये हैं।
मथुराते कही चलौ बेनी पूछै बेनी कहाँ ऊँचे गाँव आप खोदि स्रोत लै लखाये हैं॥ ३५६॥

श्रीब्रजबल्लभभट्टजी

नृत्य गान गुन निपुन रास में रस बरषावत।
अब लीला ललितादि बलित दंपतिहि रिझावत॥
अति उदार निस्तार सुजस ब्रज मंडल राजत।
महा महोत्सव करत बहुत सबही सुख साजत॥
श्रीनारायन भट्ट प्रभु परम प्रीति रस बस किए।
ब्रजबल्लभ बल्लभ परम दुर्लभ सुख नैननि दिए॥ ८८॥

श्रीब्रजबल्लभजी सभीको अत्यन्त प्यारे थे, क्योंकि आपने सभीके नेत्रोंको रासलीलाका परम दुर्लभ सुख प्रदान किया। आप नृत्य-गानादि गुणोंमें बड़े प्रवीण थे। रासलीलामें आप अपने कौशलसे रसकी वर्षा करते थे और श्रीललितादि सखियोंके सहित दम्पती श्रीयुगलकिशोरको रिझाया करते थे। आप स्वभावसे बड़े उदार तथा प्राणियोंका भवसे निस्तार करनेवाले थे। आपका सुयश सम्पूर्ण व्रजमण्डलमें व्याप्त तथा शोभायमान है। आप बहुत-से महोत्सव करते थे, जिसमें सभीको परम सुख मिलता था। आपने श्रीस्वामी नारायणभट्टजीको अपने प्रेमरससे वशमें कर लिया था॥ ८८॥

श्रीब्रजबल्लभभट्टजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

भगवान् श्रीकृष्णके परम भक्त श्रीब्रजबल्लभजी भट्ट श्रीनारायणभट्टजीके समकालीन सन्त थे। आपने श्रीनारायणभट्टजीके रास-प्रचार-कार्यमें अपूर्व सहयोग किया। एक बार आप रासलीलाके प्रसंगमें श्रीललिता सखीका स्वरूप धारणकर श्रीप्रिया-प्रियतमको रिझानेके लिये राधा-माधव युगलसरकारके गुणोंका गान करते हुए रसमय नृत्य कर रहे थे, अचानक आपके पेटमें असह्य पीड़ा होने लगी, रंगमें भंग हो गया। आप रासमण्डलसे श्रृंगारघरमें चले आये और 'हा कृष्ण', 'हा कृष्ण' पुकारते हुए पीड़ासे व्याकुल होकर लेट

गये। आपको अपने पेट-दर्दसे अधिक पीड़ा इस बातसे थी कि मैं श्रीप्रिया-प्रियतमकी यथोचित सेवा नहीं कर सका। सर्वान्तर्यामी भक्तवत्सल भगवान्‌ने उनके अन्तर्मनकी बात जान ली और तत्काल आपका वेष धारणकर रासमण्डलमें विराजमान श्रीराधा-कृष्णस्वरूपके आगे पूर्ववत् नृत्य करने लगे। उस समय रासमण्डलमें ऐसा आनन्द छाया कि सभी लोग चित्रलिखितसे हो गये, सबका शरीर पुलकायमान हो गया तथा सबके नेत्र प्रेमाश्रुओंसे छलछला उठे। उधर एक सेवक श्रीब्रजबल्लभजीको दवा देकर रासमण्डलमें आया तो देखा कि वे यहाँ नृत्य कर रहे हैं। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ, वह पुनः शृंगारघरमें आया तो देखा श्रीब्रजबल्लभजी पीड़ासे कराह रहे हैं और 'हा कृष्ण', 'हा कृष्ण' पुकार रहे हैं। यहाँसे जब वह पुनः रासमण्डलमें गया तो देखा कि वहाँ तो ब्रजबल्लभजी प्रेमोल्लासमें आनन्दमग्न हो नृत्य कर रहे हैं। दोनों जगह वह आपको देखकर आश्चर्यचकित हो गया, सहसा तो उसे अपनी आँखोंपर विश्वास ही नहीं हो रहा था, फिर वह शृंगारघरमें आया और आपसे रासमण्डलमें हो रहे अद्भुत नृत्यका समाचार बताया। आपने किसी प्रकार पीड़ाको दबाकर धैर्य धारण किया और रासमण्डलमें आये और वहाँका दृश्य देखा तो आपकी भी आँखें फटीकी फटी रह गयीं; परंतु इस रहस्यको समझनेमें आपको देर न लगी कि स्वयं प्रभु ही मेरा रूप धारणकर नृत्य कर रहे हैं। प्रभुकी इस कृपावत्सलताको देख आप आनन्दाधिक्यमें मूर्च्छित हो गये। दूसरे दिन जब चैतन्य हुए तो आपने इस रहस्यका उद्घाटन किया।

श्रीरूपसनातनजी

गौड़ देस बंगाल हुते सबही अधिकारी।
हय गय भवन भँडार बिभव भूभुज उनहारी॥
यह सुख अनित बिचारि बास बृंदाबन कीन्हो।
जथा लाभ संतोष कुंज करवा मन दीन्हो॥
ब्रज भूमि रहस राधाकृषन भक्त तोष उद्धार कियो।
संसार स्वाद सुख बांत ज्यों (दुहुँ) रूप सनातन तजि दियो॥ ८९॥

श्रीरूपजी तथा श्रीसनातनजी—इन दोनों भाइयोंने संसार-स्वादके सब सुखोंका वमन (उलटी)-की भाँति परित्याग कर दिया। आप दोनों भाई पहले बंगाल-प्रान्तस्थ गौड़देशके शासकके यहाँ उच्चाधिकारी थे। आपके पास राजाओंके समान घोड़े-हाथी, महल-मकान, कोष-खजाना, भोग-ऐश्वर्यादि थे। परंतु इस संसारके सुखको अनित्य विचारकर आप दोनोंने सब कुछ छोड़कर श्रीवृन्दावनमें दृढ़वास किया। भगवदिच्छासे शरीर-निर्वाहके लिये सहजमें जो कुछ भी मिल जाता, उसीमें संतोष करते थे। राज्यैश्वर्यसे मन हटाकर परम वैराग्यपूर्ण जीवन बिताते थे। आप दोनोंने श्रीब्रजभूमिके रहस्यों तथा श्रीराधाकृष्णके रहस्य-तत्त्वोंको प्रकटकर भक्तोंको परम संतोष प्रदान किया तथा जगत्‌के जीवोंका उद्धार किया॥ ८९॥

श्रीरूप-सनातनके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

चार सौ वर्षसे अधिक बीत चुके, बंगालके सिंहासनपर हुसैनशाह नामक एक मुसलमान शासक अधिष्ठित था, उसके उच्चपदस्थ कर्मचारी प्रायः हिन्दू ही थे। बादशाहके उच्चपदाधिकारियोंमें रूप और सनातन नामके दक्षिणके दो ब्राह्मण-बन्धु मन्त्रीके पदपर प्रतिष्ठित थे। मुसलिम शासकके सान्निध्य तथा राजसी परिवेशके प्रभावसे इनका रहन-सहन भी मुसलमान रईसों-जैसा हो गया था। बादशाहने भी इनके

मुसलिम नाम रख दिये थे। राज्यमें ये 'दबिर खास' और 'शाकिर मल्लिक' के नामसे प्रसिद्ध थे। सनातनका असली नाम 'अमर' और रूपका नाम 'सन्तोष' था। हुसैनशाह इन्हें अपना दाहिना हाथ समझता था। वेष-भूषासे ये पूरे मुसलमान प्रतीत होते थे। इतना सब होनेपर भी इनका हृदय हिन्दू-भावोंसे भरा था। श्रीराम और श्रीकृष्णके प्रति इनका अनुराग था। ब्राह्मण-साधुओंमें इनकी भक्ति थी। रामकेलि ग्राममें इनके घरपर ब्राह्मण-साधुओंका प्रायः मेला-सा लगा रहता था। अनेक विद्वान् ब्राह्मणोंका भरण-पोषण इनके द्वारा हुआ करता था। इनके छोटे भाई 'अनूप' घर रहा करते थे और ये दोनों अधिकांश समय बादशाहके पास गौड़में रहते थे।

श्रीचैतन्यमहाप्रभुका नाम सुनकर उनके प्रति स्वाभाविक ही इनकी श्रद्धा हो गयी और उस श्रद्धाने क्रमशः बढ़कर एक प्रकारकी विरह-वेदनाका-सा रूप धारण कर लिया। दोनों भाई श्रीचैतन्यके दर्शनके लिये बड़े उत्कण्ठित हो गये। दबिर खास और शाकिर मल्लिककी तीव्र दर्शनाभिलाषाने श्रीचैतन्यमहाप्रभुके मनको खींच लिया। महाप्रभुसे अब नहीं रहा गया और वे वृन्दावन जानेके बहाने गंगाजीके किनारे-किनारे चलकर गौड़के समीप जा पहुँचे। जब महाप्रभु गौड़के समीप पहुँचे, तब उनके हजारों भक्तोंके दलकी तुमुल हरिध्वनिसे सारा नगर गूँज उठा। दोनों भाइयोंके हृदय आनन्दसे गद्गद और रोम पुलकायमान हो गये, परंतु उन्हें मनमें यह भय भी बना रहा कि कहीं स्वेच्छाचारी मुसलमान बादशाह महाप्रभुके दलको कोई कष्ट न पहुँचा दे। वे चाहते थे कि महाप्रभु यहाँसे शीघ्र ही चले जायँ तो ठीक है। परंतु उनका दर्शन करनेके लिये दोनोंके मनमें बड़ी उत्कण्ठा हो रही थी। इसलिये बाहर-के-बाहर उन्हें लौटाना भी नहीं चाहते थे। महाप्रभु गौड़में आ पहुँचे। वे दर्शन दिये बिना कब लौटनेवाले थे, वे तो आये ही थे दोनों भाइयोंको संसार-कूपसे खींचकर बाहर निकालनेके लिये! रातको दोनों भाई महाप्रभुके दरबारमें पहुँचे। प्रभु अपने प्रियतम परमात्माके प्रेममें समाधिस्थ थे। श्रीनित्यानन्दजीने चेष्टा करके उनकी समाधि भंग करवाकर दोनों भाइयोंका परिचय कराया। दोनों मुँहमें तिनके दबाकर और गलेमें कपड़ा डालकर महाप्रभुके चरणोंमें गिर पड़े और बोले—'प्रभो! आपने पतित और दीनोंका परित्राण करनेके लिये ही पृथ्वीपर पदार्पण किया है, हम-जैसे दयनीय पतित आपको और कहाँ मिलेंगे? आपने जगाई-मधाईका उद्धार किया, परंतु वे तो अज्ञानसे पाप करते थे। उद्धार तो सबसे पहले हमारा होना चाहिये; क्योंकि हमने तो जान-बूझकर पाप किये हैं, वास्तविक पतित तो हमीं हैं नाथ! अब आपके सिवा हमें और कहीं ठौर नहीं है।'

महाप्रभु उनकी निष्कपट दीनताको देखकर मुग्ध हो गये, दयासे उनका हृदय द्रवित हो गया। वे बोले—'उठो, दीनताको दूर करो; तुम्हारी इस दीनताको देखकर मेरा हृदय फटा जा रहा है, तुम मुझे बड़े प्रिय हो। मैं यहाँ तुम्हीं दोनों भाइयोंसे मिलने आया हूँ। तुम निश्चिन्त रहो। शीघ्र ही तुमपर श्रीकृष्णकी कृपा होगी। आजसे तुम्हारा नाम 'सनातन' और 'रूप' हुआ।' महाप्रभुके वचन सुनकर सनातन और रूपका हृदय आनन्दसे भर गया और वे कृतज्ञतापूर्ण दृष्टिसे महाप्रभुके मुख-कमलकी ओर एकटकी लगाकर देखने लगे। उनके जीवन-स्रोतकी दिशा सहसा बदल गयी!

इसके बाद महाप्रभुने सनातनके परामर्शसे इतने लोगोंको साथ लेकर वृन्दावन जानेका विचार छोड़ दिया और वापस नीलाचल (पुरी)-की ओर लौट गये।

इधर रूप-सनातनकी दशा कुछ और ही हो गयी। वैराग्य उमड़ पड़ा। राज्य-वैभव और मन्त्रित्वसे मन हट गया। एक क्षण भी राजकाजमें रहना उनके लिये नरक-यन्त्रणाके समान दुःखदायी हो गया। सनातनकी अनुमतिसे रूप तो छुट्टी लेकर अपने घर रामकेलि चले गये। सनातन बीमारीका बहाना करके

डेरेपर ही रहने लगे। रूपने दो गुप्तचर महाप्रभुके समीप नीलाचल भेज दिये और उन्हें ताकीद कर दी कि महाप्रभुके वृन्दावनकी ओर प्रयाण करते ही शीघ्र लौटकर मुझे सूचना देना। इस बीचमें धन-सम्पत्तिको लुटाकर रूप वृन्दावन जानेके तैयारी करने लगे। इनके छोटे भाईका नाम अनुपम था, वह पहलेसे ही बड़ा श्रद्धालु था। उसने भी भाईके साथ ही घर छोड़नेकी तैयारी कर ली। रूप-सनातनके कोई संतान नहीं थी; अनुपमके 'जीव' नामक एक पुत्र था, उसे थोड़ा-सा धन सौंपकर शेष सारा धन गरीबोंको लुटा दिया गया। इतनेमें समाचार मिला कि सनातनको बादशाहने कैद कर लिया है। जानी हुई-सी बात थी। रूप और अनुपमने शीघ्र ही चले जानेका विचार किया और अनुचरोंके नीलाचलसे लौटते ही महाप्रभुके वृन्दावन-गमनकी बात सुनकर दोनों भाई वृन्दावनको चल दिये। जाते समय एक पत्र सनातनको इस आशयका लिख गये कि 'हमलोग दोनों वृन्दावन जा रहे हैं। किसी प्रकार पिण्ड छुड़ाकर आप भी शीघ्र आइये, आवश्यक व्ययके लिये दस हजार रुपये मोदीके यहाँ रख दिये गये हैं।'

सदा अमीरी ठाटमें रहनेवाले रूप और अनूपकी आज कुछ विचित्र ही अवस्था है। उन्होंने सारे वस्त्र और आभूषण उतारकर फेंक दिये हैं, तनपर एक-एक फटी गुदड़ी है और कमरमें एक-एक कौपीन है। भूख-प्यास और नींदकी कुछ भी परवा नहीं है, पासमें एक कौड़ी नहीं है। वे सहर्ष कष्ट सहन करते हुए पैदल चले जा रहे हैं। अपने-आप जो कुछ खानेको मिल जाता है, उसीसे उदरपूर्ति करके रातको चाहे जहाँ पड़ रहते हैं; परंतु उनके मनमें कोई दुःख नहीं है। चलते-चलते दोनों भाई प्रयाग पहुँचे। वहाँ जाते ही अनायास पता लग गया कि महाप्रभु यहींपर हैं। दोनों भाई दाँतों-तले तिनका दबाकर जगत्के बड़े-से-बड़े दीन और कंगालकी तरह काँपते-रोते और पड़ते-उठते महाप्रभुके चरणोंमें जाकर गिर पड़े और दोनों ही प्रेमके आवेशमें मतवाले-से हो गये। कुछ समयके बाद धीरज धरकर बोले—'हे दीनदयामय! हे पतितपावन! हे नाथ! हम-जैसे पतितोंको तुम्हारे अतिरिक्त और कौन आश्रय देगा?'

महाप्रभुने इससे पूर्व सिर्फ एक दिन रातके समय रूपको देखा था, परंतु अब उसे देखते ही तुरंत पहचानकर महाप्रभु हँसकर बोले—

'उठो, उठो, रूप! दीनता छोड़ दो, तुमलोगोंपर श्रीकृष्णकी अपार कृपा है। तभी तो उन्होंने तुमलोगोंको विषय-कूपसे निकाल लिया है।'

रूपने कहा—'प्रभो! सुना है कि सनातनको बादशाहने कैद कर लिया है।' प्रभु बोले—'घबराओ मत! सनातन कैदसे छूट गया है और मेरे समीप आ रहा है!' रूप और अनुपम उस दिन महाप्रभुके पास ही रहे और वहीं प्रसाद लिया।

महाप्रभुने कई दिनोंतक उन्हें प्रयागमें अपने पास रखा। रूपके द्वारा प्रभुको बहुत बड़ा कार्य करवाना था, वृन्दावनकी दिव्य प्रेमलीलाको पुनर्जीवन देना था। इसलिये रूपको एकान्तमें रखकर लगातार कई दिनोंतक महाप्रभुने उसको भक्तिका यथार्थ रहस्य भलीभाँति समझाकर अन्तमें कहा—'रूप! मैं काशी जाता हूँ। तुम वृन्दावन जाओ, मेरी आज्ञाका पालन करो, जीवोंका कल्याण करो, अपने सुखकी आशा छोड़कर वृन्दावन जाओ और इसके बाद यदि इच्छा हो तो मुझसे नीलाचलमें मिलना।' यों कहकर प्रभु वहाँसे चल दिये। बड़े कष्टसे धैर्य धारणकर प्रभुके आज्ञानुसार रूप अपने छोटे भाई अनुपमके साथ वृन्दावनको चले!

रूप और अनुपमको वृन्दावन भेजकर महाप्रभु काशी चले गये और वहाँ श्रीचन्द्रशेखरके मकानमें ठहरे। इधर सनातनने गौड़के कारागारमें रूपका पत्र पाकर शीघ्र ही वहाँसे निकलकर महाप्रभुके समीप जानेका विचार कर लिया तथा मौकेसे द्वाररक्षकको दस हजार मुहरें देकर वे कारागारसे निकल पड़े और उसीकी

सहायतासे रातोंरात गंगाके उस पार चले गये। ईशान नामक एक नौकर इनके साथ था। उसने छिपाकर आठ मुहरें अपने पास रख ली थीं। पातड़ा ग्राममें भौमिकोंने मुहरोंके लोभसे सनातनका बड़ा आदर किया। उनके मनमें पाप था, वे रातको सनातन और ईशानको मारकर मुहरें छीनना चाहते थे। सनातनने मनमें सोचा कि ये लोग मेरा इतना सम्मान क्यों करते हैं, इनको लुभानेकी मेरे पास तो कोई वस्तु नहीं है। उनके मनमें सन्देह हुआ और उन्होंने ईशानसे पूछा—'मालूम होता है तुम्हारे पास कुछ धन है।' ईशानने एक मुहर छिपाकर कहा—'हाँ, सात मुहरें हैं।' सनातनने कहा—'भाई! इस पापको अपने पास क्यों रखा? यदि तुम इस समय न बताते तो रातको ये भौमिक बिना मारे न छोड़ते।' उससे सातों मुहरें लेकर सनातनने भौमिकोंको दे दीं, शेष एक मुहरका और पता लगनेपर सनातनने वह मुहर ईशानको देकर उसे वापस देश लौटा दिया, सारा बखेड़ा निपटा। सुखपूर्वक सनातन अकेले ही चलने लगे। सन्ध्याके समय हाजीपुर नामक स्थानमें पहुँचे और एक जगह बैठकर बड़े ऊँचे स्वरसे श्रीकृष्णके पावन नामका कीर्तन करने लगे। उन्हें सच्ची शान्ति और विश्रान्ति इसीमें मिलती थी। वास्तवमें बात भी ऐसी ही है।

सनातनके बहनोई श्रीकान्त बहुत दिनोंसे हाजीपुरमें थे। वे गौड़ बादशाहके लिये घोड़े खरीदने आये थे। सन्ध्याका समय था, श्रीकान्त एक तरफ बैठे आराम कर रहे थे। उनके कानोंमें हरिनामकी मीठी आवाज गयी, पहचाना हुआ-सा स्वर था, श्रीकान्त उठकर सनातनके पास आये और देखते ही अवाक् रह गये। उन्होंने देखा, सनातनका शरीर जीर्ण हो गया है, वे फटी हुई मैली-सी धोती पहने हुए हैं, दाढ़ी बढ़ रही है, मुखपर वैराग्यकी छाया पड़ी हुई है और जोर-जोरसे मतवालेकी भाँति हरिनामका उच्चारण कर रहे हैं। श्रीकान्तने सनातनको पुकारकर सचेत किया और उनके पास बैठकर इस हालतका कारण पूछा। सनातनने संक्षेपमें सारी कहानी सुना दी। श्रीकान्तने कहा—'ऐसा ठीक नहीं, घर लौट चलिये।' सनातनने कहा—'घर ही तो जा रहा हूँ। अबतक घर भूला हुआ था, पराये घरको घर माने हुए था; अब पता लग गया है, इसीलिये तो दौड़ता हूँ। आँखें खुलनेपर स्वप्नके महलोंमें कौन रहता है?' श्रीकान्तने समझानेकी बड़ी चेष्टा की, परंतु समझे हुएको भूला हुआ क्या समझायेगा! जहाँ वैराग्यका सागर उमड़ा हो, वहाँ विषयरूपी कूड़ेको कहाँ स्थान मिल सकता है? श्रीकान्तकी बातें सनातनके जाग्रत् हृदयको स्पर्श नहीं कर सकीं, ऊपर-ही-ऊपर उड़ गयीं। श्रीकान्तने समझा कि अब ये नहीं मानेंगे। अतएव सनातनके घर लौटनेकी आशा छोड़कर उन्होंने उनके राह-खर्चके लिये कुछ देना चाहा। सनातनने कुछ भी नहीं लिया। गहरा जाड़ा पड़ रहा था, श्रीकान्तने एक बढ़िया दुशाला देना चाहा, सनातनने उसे भी नहीं लिया। श्रीकान्त रोने लगे, उनका रोना देखकर सनातनका मन पिघला। भक्त बड़े कोमल-हृदय होते हैं, उनसे दूसरेका दुःख नहीं देखा जाता। अतएव श्रीकान्तके मनको शान्त और सुखी करनेके लिये उन्होंने उनसे एक भूटानी कम्बल ले लिया और देखते-ही-देखते वहाँसे चल पड़े। श्रीकान्त चुपचाप खड़े रोते रह गये।

महाप्रभु जिस राहसे, जिस गाँवसे और जिस नगरसे जाते थे, सभी जगह अपना एक निशान छोड़ जाते थे—वह था हरिनामकी तुमुल और मत्त-ध्वनि। अतएव सनातनको खोज करनेकी आवश्यकता नहीं पड़ी। वे प्रेममें झूमते हुए हरिनामपरायण लोगोंको महाप्रभुका मार्ग-चिह्न समझकर काशी जा पहुँचे और वहाँ जाकर इसी प्रकार सीधे चन्द्रशेखरके मकानके समीप पहुँच गये। खोज प्रत्यक्ष थी। लाखों नर-नारी मिलकर हरिध्वनि कर रहे थे। सनातनका मन प्रफुल्लित और शरीर पुलकित हो गया। वे धीरे-धीरे जाकर चन्द्रशेखरके दरवाजेपर बैठ गये। महाप्रभु घरके भीतर हैं और सनातन बाहर बैठे हुए प्रभुके श्रीचरणोंका ध्यान कर रहे हैं। अन्दर जानेका साहस नहीं होता। अपने पापोंको स्मरण करके मनमें सोचते हैं कि 'क्या

मुझपर भी प्रभुकी कृपा होगी? मुझ-सरीखे घोर नारकी जीवकी ओर क्या प्रभु निहारेंगे?' सनातनके मनमें कहींपर भी कपट या दम्भकी गन्धतक नहीं है। सरल और शुद्ध हृदयसे पापोंकी स्मृतिके अनुतापसे दग्ध होते हुए सनातन आज प्रभुकी शरण चाहते हैं।

सर्वज्ञ महाप्रभुने घरके अन्दर बैठे हुए ही इस बातको जान लिया कि बाहर सनातन बैठे हैं। अतएव उन्होंने चन्द्रशेखरसे कहा कि 'दरवाजेपर जो वैष्णव बैठा है, उसे अन्दर बुला लाओ।' आज्ञानुसार चन्द्रशेखर बाहर गया और वहाँ किसी वैष्णवको न देखकर वापस लौटकर बोला कि 'बाहर तो कोई वैष्णव नहीं है।' महाप्रभुने कहा—'क्या दरवाजेपर कोई नहीं बैठा है?' चन्द्रशेखरने कहा—'दरवाजेपर एक फकीर-सा तो बैठा है।' महाप्रभुने कहा—'जाओ! उसीको बुला लाओ।' सनातनके कपड़े-लत्ते वैष्णवके-से नहीं थे; परंतु उसका अन्तर तो विष्णुमय था। अन्तरको पहचानना अन्तर्यामीका ही काम है।

चन्द्रशेखर यह सुनकर आश्चर्य करने लगा। सोचने लगा कि आज प्रभु इस फकीरको क्यों बुला रहे हैं। परंतु महाप्रभुके सामने कुछ कहनेका साहस नहीं हुआ और उसने बाहर जाकर सनातनसे कहा—'आप कौन हैं? आपको प्रभु बुला रहे हैं!' 'प्रभु बुला रहे हैं!' इन शब्दोंने बिजलीका-सा काम किया। सनातनके हृदयमें हर्ष, आशा, चिन्ता, भय, भक्ति और लज्जा आदि अनेक भावोंकी तरंगें उठने लगीं। उन्होंने कहा—'हैं! क्या प्रभु बुलाते हैं? क्या सचमुच ही मुझे बुलाते हैं? आप भूल तो नहीं रहे हैं? भला, प्रभु मुझे क्यों बुलाने लगे। वे और किसीको बुलाते होंगे!' चन्द्रशेखरने कहा—'प्रभु आपको ही बुलाते हैं, आप अन्दर पधारिये!'

सनातनके हृदयमें आनन्दका समुद्र उमड़ पड़ा, परंतु अपनी स्वाभाविक दीनतासे वे दाँतों-तले तिनका दबाकर अपराधीकी भाँति चुपचाप अन्दर जाकर प्रभुके चरणोंमें लकुटकी तरह गिर पड़े। दोनों नेत्रोंसे आँसुओंकी अजस्र धारा बहने लगी। सनातन बोले—'प्रभो! मैं पामर हूँ; मैंने आजीवन कामादि षड्विकारोंकी सेवा की है, विषय-भोगको ही सुख माना है, दिन-रात नीचोंके साथ नीच कर्म करनेमें रत रहा हूँ। इस मनुष्य-जन्मको मैंने व्यर्थ ही खो दिया; मुझ-सरीखा पापी, अधम, नीच और कुटिल और कौन होगा। प्रभो! आज आपके चरणोंकी शरणमें आया हूँ, अपनी स्वाभाविक दयालुताकी तरफ खयाल करके मुझे चरणोंमें स्थान दो। इस अधमको इन चरणोंके सिवा और कहाँ आश्रय मिलेगा।'

प्रभु सनातनके इन शब्दोंको नहीं सुन सके, उनका हृदय दयासे द्रवित हो गया। सनातनको जबरदस्ती उठाकर प्रभुने अपनी छातीसे लिपटा लिया। सनातनके नेत्रोंकी अश्रुधारा मानो मन्दाकिनीकी धारा बनकर महाप्रभुके सशरीर चरणोंको धोने लगी और महाप्रभुके नेत्रोंकी प्रेमाश्रुधारा सनातनके मस्तकको सिंचनकर उसे सहसा पापमुक्त करने लगी।

सनातन कहने लगे—'प्रभो! मुझे आप क्यों स्पर्श करते हैं? मेरा यह कलुषित कलेवर आपके स्पर्श-योग्य नहीं है। इस घृणित और दूषित देहको आप स्पर्श न कीजिये।' प्रभुने कहा—'सनातन! दीनताका त्याग करो।

तुम्हारी दीनता देखकर मेरा कलेजा फटा जाता है; जब श्रीकृष्ण कृपा करते हैं, तब भले-बुरेका विचार नहीं करते। श्रीकृष्ण तुम्हारे सम्मुख हुए हैं; तुमपर श्रीकृष्णकी इतनी कृपा है कि उसका वर्णन नहीं हो सकता। तभी तो उन्होंने तुम्हें विषयकूपसे निकाल लिया है। तुम्हारा शरीर निष्पाप है; क्योंकि तुम्हारी बुद्धि श्रीकृष्ण-भक्तिमें लगी हुई है। मैं तो अपनेको पवित्र करनेके लिये ही तुम्हें स्पर्श करता हूँ।'

यों कहकर महाप्रभुने सनातनके भाग्यकी बड़ी ही प्रशंसा की और कहा कि श्रीकृष्ण-प्रेम होनेपर

वास्तवमें ऐसी ही दीनता हुआ करती है। इसके बाद महाप्रभुने सनातनसे उसकी कारामुक्तिके सम्बन्धमें पूछा। सनातनने संक्षेपसे सारी कथा सुना दी।

महाप्रभुने चन्द्रशेखरसे कहा कि 'सनातनका मस्तक मुण्डनकर और इसे स्नान करवाकर नये कपड़े पहना दो। स्नान कर चुकनेपर जब तपन मिश्र नामक एक भक्त सनातनको नयी धोती देने लगे, तब सनातनने कहा—'यदि आप मुझे वस्त्र देना चाहते हैं तो कोई फटा-पुराना कपड़ा दे दीजिये, मुझे नये कपड़ेसे क्या प्रयोजन है।' सनातनका आग्रह देखकर मिश्रने एक पुरानी धोती दे दी और सनातनने फाड़कर उसके दो कौपीन बना लिये। सनातनके इस वैराग्यको देखकर महाप्रभु मन-ही-मन बड़े प्रसन्न हुए, परंतु श्रीकान्तकी दी हुई कम्बल सनातनके कन्धेपर इस समय भी पड़ी हुई थी। महाप्रभुने दो-चार बार उसकी ओर देखा; तब सनातनने समझा कि मैंने अबतक यह सुन्दर कम्बल अपने पास रख छोड़ा है, मेरी विषयवासना दूर नहीं हुई है, इसीसे प्रभु बार-बार इसकी ओर ताककर मुझे सावधान कर रहे हैं। सनातनने गंगा-तटपर जाकर वह कम्बल एक गरीबको दे दिया, बदलेमें उससे फटी गुदड़ी लेकर उसे ओढ़ लिया। जब महाप्रभुने सनातनको गुदड़ी ओढ़े देखा, तब वे बड़े प्रसन्न हुए और बोले कि 'सनातन! श्रीकृष्णने तुम्हारे विषय-रोगको आज समूल नष्ट कर दिया; भला, उत्तम वैद्य रोगका जरा-सा अंश भी शेष क्यों रहने देता है?'

महाप्रभुने सनातनको लगातार दो महीनेतक भक्ति-तत्त्वकी परमोत्तम शिक्षा देकर उनसे वृन्दावन जानेको कहा और वहाँ रूप-अनुपमके साथ मिलकर श्रीकृष्णका कार्य-सम्पादन करनेके लिये आदेश दिया।

महाप्रभु तो नीलाचल चले गये और उनकी आज्ञा पाकर सनातन वृन्दावन आये। वृन्दावन आनेपर पता लगा कि उनके भाई रूप और अनुपम दूसरे मार्गसे काशी होते हुए देश चले गये हैं। सनातन वनमें एक पेड़के तले रहने लगे। प्रतिदिन जंगलसे लकड़ियाँ लाकर बाजारमें बेचते और उसीसे अपना निर्वाह करते; जो कुछ बच रहता, सो दीन-दु:खियोंको बाँट देते! एक दिन जो बंगालके हर्ता-कर्ता थे, आज वे ही हरिप्रेमकी मादकताके प्रभावसे ऐसे दीन बन गये!

कुछ समयतक वृन्दावनमें निवास करके सनातन महाप्रभुसे मिलनेके लिये नीलाचलकी ओर चले। रास्तेमें उन्हें एक चर्मरोग (कुष्ठ) हो गया। कविराज गोस्वामीने लिखा है कि झारखण्डके दूषित जलपानसे उनको यह रोग हो गया था। जो कुछ भी हो, सनातन रोगाक्रान्त होकर नीलाचल पहुँचे और अपनेको दीन, हीन और पतित मानकर श्रीहरिदासजीके यहाँ ठहर गये। श्रीहरिदासजीके यहाँ महाप्रभु रोज जाया करते। उन्होंने जाकर सनातनको देखा, सनातन दूरसे ही चरणोंमें प्रणाम करने लगे। महाप्रभुने दौड़कर उन्हें छातीसे लगाना चाहा; पर सनातन पीछे हट गये और बोले कि 'प्रभो! आप मुझे स्पर्श न करें, मैं अत्यन्त नीच तो हूँ ही, तिसपर मुझे कोढ़ हो गया है। इसलिये क्षमा करें।' महाप्रभुने कहा—'सनातन! तुम्हारा शरीर मेरे लिये बड़ा ही पवित्र है, तुम श्रीकृष्णके भक्त हो; तुमसे जो घृणा करेगा, वही अस्पृश्य है।' यों कहकर महाप्रभुने सनातनको जबरदस्ती छातीसे लिपटा लिया, सनातनके कोढ़का मवाद महाप्रभुके सारे शरीरमें लग गया। महाप्रभुने सनातनसे कहा कि 'तुम्हारे दोनों भाई यहाँ आकर दस महीने रहे थे; इसके बाद रूप तो वापस वृन्दावन लौट गये हैं और अनुपमको यहीं श्रीकृष्णकी प्राप्ति हो गयी है।' छोटे भाईका मरण सुनकर सनातनको खेद हुआ। प्रभुने आश्वासन देकर सनातनसे कहा कि 'तुम यहीं हरिदासजीके पास रहो; तुम दोनोंका ही श्रीकृष्णमें बड़ा प्रेम है, तुमलोगोंपर शीघ्र ही श्रीकृष्ण कृपा करेंगे।' यों कहकर महाप्रभु चले गये और इसी प्रकार रोज-रोज वहाँ आकर सनातनको आलिंगन करने लगे। सनातनके मनमें इससे बड़ा क्षोभ होता था।

भगवान् मंगलमय परम पिता हैं, वे तो अपनी संतानपर नित्य दयामय हैं; उनसे कुछ भी माँगना उनकी दयालुतापर अविश्वास करना है। सनातनने कुष्ठकी भयानक पीड़ा सहर्ष सहन की; परंतु किसी समय भी उनके मनमें यह संकल्प नहीं उठा कि मैं प्रभुसे अपने रोगकी निवृत्तिके लिये कुछ प्रार्थना करूँ। इन्हीं सब बातोंको दिखलानेके लिये समर्थ होनेपर भी प्रभुने केवल दर्शनमात्रसे सनातनके रोगका नाश नहीं किया। जब जगत् सनातनके अतुलनीय निष्कपट, निष्काम प्रेम और उनकी अनुकरणीय दीनतासे परिचित हो गया, बस, उसी समय सनातन रोगमुक्त हो गये। तदनन्तर महाप्रभुने सनातनको वृन्दावन जाकर जीवोंका उद्धार करनेकी अनुमति दी। महाप्रभुको छोड़कर जानेमें सनातनको असीम कष्ट था; परंतु उनकी आज्ञाका उल्लंघन करना सनातनको उससे भी अधिक कष्टकर प्रतीत हुआ। सनातन वृन्दावन चले गये। रूप भी पहुँच गये। दोनोंने मिलकर वृन्दावनके उद्धारका कार्य किया।

सनातनने 'बृहद्भागवतामृत', 'हरिभक्तिविलास', 'लीलास्तव', 'स्मरणीय टीका', 'दिग्दर्शनी टीका' और श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धपर 'वैष्णवतोषिणी' नामक टीका बनायी। रूपने 'भक्तिरसामृतसिन्धु', 'मधुरामाहात्म्य', 'पदावली', 'हंसदूत', 'उद्धवसन्देश', 'अष्टादशकच्छन्दः', 'स्तवमाला', 'उत्कलिकावली', 'प्रेमेन्दुसागर', 'नाटकचन्द्रिका', 'लघुभागवततोषिणी', 'विदग्धमाधव', 'ललितमाधव', 'उज्ज्वलनीलमणि', 'दानकेलिभानिका' और 'गोविन्दविरुदावली' आदि अनेक अनुपम ग्रन्थोंकी रचना की। 'विदग्धमाधव' की रचना वि० संवत् १५८२ में हुई थी। इन सब ग्रन्थोंमें भक्त, भक्ति और श्रीकृष्णतत्त्व आदिका बड़ा विशद वर्णन है!

दोनों भाई वहाँ वृक्षोंके नीचे सोते रहते—भीख माँगकर रूखी-सूखी खाते, फटी लँगोटी पहनते, गुदड़ी और करवा साथ रखते। आठ पहरमें केवल चार घड़ी सोते और शेष सब समय श्रीकृष्णका नाम-जप-संकीर्तन और शास्त्रोंका प्रणयन करते।

श्रीरूप और सनातन दोनों श्रीवृन्दावनमें ही गोलोकवासी हुए। एक समय जो विद्या, पद, ऐश्वर्य और मानमें मत्त थे, वे ही भगवत्कृपासे अत्यन्त विलक्षण निरभिमानी, निर्लोभी, वैराग्यवान् और परम प्रेमिक बन गये।

श्रीप्रियादासजी श्रीरूपसनातनजीके विषयमें कहते हैं—

गोस्वामी श्रीनाभाजी श्रीरूपजी तथा श्रीसनातनजीके वैराग्यका वर्णन करनेमें ऐसे प्रेममग्न हो गये कि छप्पयके पाँच चरण वैराग्य-वर्णनमें ही पूरे हो गये। केवल एक चरण शेष रह गया, तब श्रीनाभाजीका मन अत्यन्त संतप्त हो उठा कि मैंने इनके प्रेमपक्षका तो कुछ वर्णन ही नहीं किया। फिर तो एक तुक शेष रह गयी थी, उसीमें करोड़ों कवित्तोंका अर्थ भर दिया। श्रीनाभाजीने इस स्थलपर कविताका सच्चा स्वरूप दिखलाया है। इस एक तुकमें श्रीनाभाजीने श्रीरूप-सनातनजीकी श्रीराधा-कृष्णरसकी आचार्यता वर्णन की है। अहो! जिनकी कृपादृष्टिसे जनसाधारण भी प्रेम-पोथी पढ़े, पढ़ते हैं एवं पढ़ेंगे, उनके लिये यह कहना कि 'ये दोनों महानुभाव बड़े अनुरागी थे' क्या कोई बड़ाई है? अर्थात् नहीं। भाव यह कि ये तो सहज ही प्रेमरूप थे—

कहत बैराग गये पागि नाभा स्वामी जू वै गई यों निबर तुक पाँच लागी आँचि है।
रही एक माँझ धर्‍यो कोटिक कवित्त अर्थ याही ठौर लै दिखायो कविताकौ साँचि है॥
राधाकृष्ण रसकी आचारजता कही यामें सोई जीवनाथभट्ट छप्पै बानी नाँचि है।
बड़े अनुरागी ये तौ कहिबो बड़ाई कहा अहो जिन कृपा दृष्टि प्रेम पोथी बाँचि है॥ ३५७॥

कालके कुचक्रसे व्रजमण्डलके तीर्थ प्रायः लुप्त-गुप्त हो गये थे। अतः उन दिनों उन्हें और श्रीव्रजभूमि एवं श्रीवृन्दावनके स्वरूप एवं रहस्यको कोई जानता नहीं था। परंतु श्रीमद्भागवतमें श्रीशुकदेवजीने

श्रीव्रज-वृन्दावनके सम्बन्धमें जैसा कुछ कहा है, श्रीरूप-सनातनजीने वैसा ही प्रकट करके दिखा दिया। आपकी उपासनाकी रीति भी श्रीमद्भागवतके ही अनुसार थी। आपने रससार शृंगार रसकी उपासना अपनायी थी, जो कि रसिक महानुभावोंको परम सुखदायिनी है। श्रीगौरांग महाप्रभुका आदेश पाकर आपने कुछ दिनतक श्रीगोपीश्वर महादेवके निकट निवास किया और श्रीमहाप्रभुकी कृपासे सब प्रकारकी भक्ति पाकर बहुत-से भक्ति-ग्रन्थोंकी रचना की। ग्रन्थोंमें वर्णित आपकी एक-एक बातमें मन, बुद्धि जब निमग्न होते हैं तो वह सुख मिलता है कि फिर शरीर पुलकायमान हो जाता है और आँखोंसे आँसुओंकी झड़ी-सी लग जाती है—

वृन्दावन व्रज भूमि जानत न कोऊ प्राय दई दरसाय जैसी शुक मुख गाई है।
रीति हूँ उपासनाकी भागवत अनुसार लियो रससार सो रसिक सुखदाई है॥
आज्ञा प्रभु पाय पुनि 'गोपीस्वर' लगे आय किये ग्रन्थ पाय भक्ति भाँति सब पाई है।
एक एक बात में समात मन बुद्धि जब पुलकित गात दृग झरी सी लगाई है॥ ३५८॥

एक समय श्रीरूपगोस्वामीजी श्रीनन्दग्राममें कदम्ब टेरपर भजन कर रहे थे। उसी समय बड़े भाई श्रीसनातनजी श्रीवृन्दावनसे आपके पास आये। उस समय श्रीरूपजीके मनमें यह विचार आया कि आज मैं परम सुखदायी खीरका भोग श्रीठाकुरजीको लगाकर वह प्रसाद अपने अग्रजको पवाऊँ। आपके मनमें किंचिन्मात्र ही यह विचार आया था कि तत्काल मानो भक्तोंको सुख देनेवाली लाडिली श्रीप्रियाजू एक बालिकाके रूपमें खीरका सब सामान ले आयीं। उसी सामानसे तुरंत रसोई करके श्रीठाकुरजीको भोग लगाया गया और जब वह प्रसाद लेकर श्रीसनातनजीने पाया तो उन्हें अत्यन्त प्रिय लगा तथा प्रेमका नशा-सा छा गया; तब उन्होंने पूछा कि यह खीर कैसे बनी है? इसमें तो अलौकिक स्वाद है, तब श्रीरूपजीने सब बात बतायी। सुनकर श्रीसनातनजीने कहा—अब पुनः ऐसी इच्छा मत करना। मेरी इस बातको हृदयमें दृढ़तापूर्वक धारण कर लो। तुम तो अपनी वैराग्यकी चालसे ही चलो। इतना कहते-कहते श्रीसनातनजीकी एवं उनका आदेश सुनकर श्रीरूप गोस्वामीजीकी आँखोंमें प्रेमाश्रु छलछला आये—

रहे नन्दगाँव रूप आये श्रीसनातन जू महासुख रूप भोग खीर कौ लगाइयै।
नेकु मन आई सुखदाई प्रिया लाडिली जू मानो कोऊ बालकी सुसौंज सब ल्याइयै॥
करिकै रसोई सोई लै प्रसाद पायो भायौ अमलसो आयौ चढ़ि पूछी सो जताइयै।
फेरि जिनि ऐसी करौ यही दृढ़ हिये धरौ ढरौ निज चाल कहि आँखैं भरि आइयै॥ ३५९॥

एक बार वैष्णव समाजमें श्रीरूप गोस्वामीजीके श्रीमुखसे श्रीराधा-कृष्णके रूप-गुणका गान हो रहा था। जिसे कानोंसे सुनकर सभामें उपस्थित सभी लोगोंके प्राण व्याकुल हो गये, सबको मूर्च्छा-सी आ गयी। परंतु आप (श्रीरूपजी) बड़े ही धैर्यवान् थे। अतः यद्यपि भावावेशमें शरीरकी सुधि नहीं थी तो भी खड़े ही रहे और खड़े-खड़े रूप-गुणगान करते रहे। उस समय आपने प्रेमकी ऐसी रहस्यमय स्थितिका दर्शन कराया, जो बड़े-बड़े भावज्ञोंकी बुद्धिमें नहीं आ सकती है। (वह यह कि उसी समय) श्रीकर्णपूर गोस्वामीजीने आपके पीछे आकर अच्छी प्रकारसे देखा कि आप बिलकुल अच्छेसे, स्वस्थसे जान पड़ते हैं, किसी प्रकारकी आकुलता नहीं है। परंतु वह तनिक आपके समीप आये और आपकी श्वास उनके शरीरको लगी, तब वे आपके प्रेमको जान पाये। श्वासका स्पर्श होते ही उन्हें ऐसा लगा मानो अग्निकी लपट लग गयी हो तथा उनके शरीरपर अंगार छू जाने-जैसा चिह्न भी हो गया अर्थात् फफोले पड़ गये। प्रेमकी यह नवीन रीति भला किससे गायी जा सकती है—

रूप गुण गान होत कान सुनि सभा सब अति अकुलान प्रान मूरछा सी आई है।
बड़े आप धीर रहे ठाढ़े न शरीर सुधि बुधि मैं न आवै ऐसी बात लै दिखाई है॥
श्रीगुसाईं कर्णपूर पाछे आये देखे आछे नेकु ढिंग भये स्वास लग्यौ तब पाई है।
मानौ आगि आँचि लागी ऐसो तन चिह्न भयौ नयौ यह प्रेमरीति कापै जात गाई है॥ ३६०॥

एक दिन रात्रिके समय ठाकुर श्रीगोविन्दचन्द्रजीने आपको स्वप्नमें दर्शन दिया और कहा कि मैं खिरक (गोमटीला)-के भूगर्भमें निवास करता हूँ। एक गैया नित्यप्रति सुबह-शाम तथा रात्रिको भी अपनी दूधकी धारासे मेरा अभिषेक करती है और हमारा पोषण करती है। आप वहाँ जाकर देखिये, तब स्वयं जान जायँगे। श्रीठाकुरजीके संकेतानुसार श्रीरूप गोस्वामीजीने श्रीगोविन्दचन्द्र भगवान्‌का स्वरूप प्रकट किया। श्रीठाकुर गोविन्ददेवजीकी अत्यन्त ही अनुपम छबि है। चतुर रसिकजन रसिकेन्द्रचूड़ामणि श्रीराधागोविन्द एवं परम रसिक श्रीरूपजीका निरन्तर हृदयमें ध्यान करते हैं—

श्रीगोविन्दचन्द आय निसि कौ स्वपन दियौ दियौ कहि भेद सब जासों पहिचानियै।
रहौ मैं खिरक माँझ पोषें निसिभोर साँझ सींचै दूधधार गाय जाय देखि जानियै॥
प्रगट लै कियो रूप अति ही अनूप छबि कबि कैसे कहै थकि रहे लखि मानियै।
कहाँ लौं बखानौं भरै सागर न गागर मैं नागर रसिक हिये निसि दिन आनियै॥ ३६१॥

एक बार श्रीसनातनजी नन्दगाँवमें पावन सरोवरपर रह रहे थे। भजनमें मन लग जानेसे तीन दिन न तो गाँवमें मधुकरी आदि माँगने गये और न तो संयोगसे गाँवका ही कोई सरोवरकी ओर आया। चौथे दिन एक श्यामवर्णका बालक (स्वयं ठाकुर श्रीमदनमोहनजी) दूध लेकर आया और उसने प्रार्थनापूर्वक इन्हें दूध पिलाया। बालककी रूप-माधुरीसे आकृष्ट होकर इन्होंने पूछा—तुम कहाँ रहते हो? तब बालकने अपने घरका पता बताया तथा कहा कि हम चार भाई श्रीहरदेवजी गोवर्धनमें, श्रीबलदेवजी बलदेव ग्राममें, श्रीकेशवदेवजी मथुरामें, श्रीगोविन्ददेवजी वृन्दावनमें हैं, साथ ही पिताजी (श्रीनन्दूजी)-का भी परिचय दिया। बालकके चले जानेपर श्रीसनातनजीका मन पुनः बालकके दर्शनके लिये उत्कण्ठित हुआ, अतः सरोवरसे उठकर नन्दगाँव गये और उन्होंने घर-घर पूछा, परंतु कहीं भी बालकरूपधारी श्रीहरिको नहीं पाया। चारों ओर खोज-खोजकर हार गये। इनकी आँखोंमें आँसू भर आये, तब आपने निश्चय किया कि यदि अबकी बार वह बालक आयेगा तो उसे जाने नहीं दूँगा। श्रीसनातनजीको बालकके सिरपर बँधी लाल पगिया बहुत ही अच्छी लग रही थी। आप रात-दिन उसी लालपागवाले साँवरे किशोरका ध्यान करने लगे—

रहैं श्रीसनातन जू नन्दगांव पावन पै आव न दिवस तीन दूध लै कै प्यारियै।
साँवरो किशोर, आप पूछे किहिं ओर रहो? कहे चारि भाई पिता रीतिहूँ उचारियै॥
गये ग्राम, बूझी घर हरि पै न पाये कहूँ चहूँ दिसि हेरि हेरि नैन भरि डारियै।
अब कै जो आवै फेर जान नहिं पावै सीस लाल पाग भावै निसिदिन उर धारियै॥ ३६२॥

श्रीरूप गोस्वामीजीने 'चाटु पुष्पांजलि' नामक स्तोत्रमें श्रीराधिकाजीकी वेणीकी नागिनसे उपमा दी है। इस प्रसंगको जब श्रीसनातनजीने पढ़ा तथा श्रीराधिकाजीका स्वरूप नेत्रोंसे देखा तो उन्हें यह उपमा नहीं जँची। उन्होंने सोचा कि जान पड़ता है भाईने भावपद्धतिसे हटकर केवल काव्यपद्धतिका अनुसरण करते हुए ऐसा लिखा है। परंतु एक दिन आप श्रीराधाकुण्डके किनारे बैठे भजन कर रहे थे। इतनेमें क्या देखा कि एक वृक्षकी डालपर झूला पड़ा हुआ है, उसपर बैठी एक गौरवर्णकी किशोरी प्रफुल्लितमना झूल रही है और सखियाँ उमंगमें भरी झुला रही हैं। उस किशोरीकी पीठपर आपको लपलपाती हुई

नागिन-सी दिखायी पड़ी। आप तुरंत ही नागिनसे किशोरीकी रक्षा करनेके लिये दौड़ पड़े। परंतु समीप पहुँचनेपर देखा कि वह नागिन नहीं है, वस्तुतस्तु उसकी वेणी है। इतनेमें ही वह झूलेका दृश्य भी अन्तर्धान हो गया। फिर तो आप समझ गये कि यह तो साक्षात् किशोरी श्रीराधिकाजी सखियोंके साथ झूला झूल रही थीं और हमारे भ्रमका निवारण करनेके लिये यह लीला की थी। फिर तो आप अपने छोटे भाई श्रीरूपजीके पास आये और अत्यन्त श्रद्धापूर्वक उनकी परिक्रमा की। बड़े भाईको अपनी परिक्रमा करते देखकर श्रीरूपजीने भयभीत होकर इनके चरण पकड़ लिये। श्रीसनातनजीने उन्हें उठाकर हृदयसे लगा लिया। दोनों ही भाई प्रेमरससारमें पगे रहते थे। आप दोनोंके चरित्र अपार हैं। आपका सुयश संसारमें जगमगा रहा है—

कही ब्याली रूप बेनी निरखि सरूप नैन जानी श्रीसनातन जू काव्य अनुसारियै।
राधासर तीर द्रुम डार गहि झूलैं फूलैं देखत लफलफात गति मति वारियै॥
आये यों अनुज पास फिरे आसपास देखि भयो अति त्रास गहे पाउँ उर धारियै।
चरित अपार उभै भाई हित सार पगे जगे जग माहिं मति मनमैं उचारियै॥ ३६३॥

श्रीहितहरिवंशजी गोस्वामी

राधा चरन प्रधान हृदय अति सुदृढ़ उपासी।
कुंज केलि दंपती तहाँ की करत खवासी॥
सर्बसु महाप्रसाद प्रसिध ताके अधिकारी।
बिधि निषेध नहिं दास अननि उतकट ब्रत धारी॥
ब्यास सुवन पथ अनुसरै सोइ भलें पहिचानिहै।
(श्री) हरिबंस गुसाईं भजन की रीति सकृत कोउ जानिहै॥ ९०॥

श्रीहितहरिवंश गोस्वामीजीकी भजनकी रीतिको कोई एक विरला (श्रीदामोदरदासजी 'सेवकजी') ही जान सकेगा। आपकी उपासना-पद्धतिमें श्रीराधाजीकी प्रधानता है। आप उन्हींके श्रीचरणोंकी हृदयमें अत्यन्त सुदृढ़ भावसे उपासना करते थे और कुंजक्रीड़ामें दम्पती श्रीश्यामाश्यामकी सखीरूपसे सेवा करते थे। आपके सम्बन्धमें यह बात प्रसिद्ध है कि आप श्रीमहाप्रसादको सर्वस्व करके मानते थे। अपनी अनन्य निष्ठाके कारण आप सचमुच महाप्रसादके उत्तम अधिकारी थे। आपने श्रीश्यामाश्यामके सेवारूपी उत्कट व्रतको धारण किया था। अतः स्मृतिशास्त्रोक्त विधि-निषेधोंकी अपेक्षा नहीं रखते थे। श्रीव्यासमिश्रजीके पुत्र श्रीहितहरिवंश गोस्वामीद्वारा प्रवर्तित पथका जो अनुसरण करेंगे, वे ही अच्छी तरहसे आपके सिद्धान्तोंको जान सकेंगे॥ ९०॥

श्रीहितहरिवंश गोस्वामीजीसे सम्बन्धित विशेष विवरण इस प्रकार है—

रसिकभक्तशिरोमणि गोस्वामी श्रीहितहरिवंशचन्द्र महाप्रभुजीका जन्म मथुराके निकट बादग्राममें वि० संवत् १५५९ वैशाख शुक्ला एकादशीको हुआ था। इनके पिताका नाम श्रीव्यासमिश्रजी और माताका श्रीतारादेवी था। व्यासमिश्रजी नौ भाई थे, जिनमें सबसे बड़े श्रीकेशवदासजी तो संन्यास ग्रहण कर चुके थे। उनके संन्यासाश्रमका नाम श्रीनृसिंहाश्रमजी था। शेष आठ भाइयोंके केवल यही एक व्यास-कुलदीपक थे, इसलिये ये सभीको प्राणोंसे बढ़कर प्रिय थे और इसीसे इनका लालन-पालन भी बड़े लाड़-चावसे हुआ था। ये बड़े ही सुन्दर थे और शिशुकालमें ही 'राधा' नामके बड़े प्रेमी थे।

'राधा' सुनते ही ये बड़े जोरसे किलकारी मारकर हँसने लगते थे। कहते हैं कि छः महीनेकी अवस्थामें ही इन्होंने पलनेपर पौढ़े हुए 'श्रीराधा-सुधानिधि' स्तवका गान किया था, जिसे आपके ताऊ स्वामी श्रीनृसिंहाश्रमजीने लिपिबद्ध कर लिया था।

श्रीप्रियादासजीने श्रीहितहरिवंशजीकी इस राधाभक्तिका वर्णन इस प्रकार किया है—

हित जू की रीति कोऊ लाखनि मैं एक जानै राधा ही प्रधान मानै पाछे कृष्ण ध्याइयै।
निपट विकट भाव होत न सुभाव ऐसो उन ही की कृपा दृष्टि नेकु क्यों हूँ पाइयै॥
विधि औ निषेध छेद डारे प्रान प्यारे हिये जिये निजदास निसिदिन वहै गाइयै।
सुखद चरित्र सब रसिक विचित्र नीके जानत प्रसिद्ध कहा कहिकै सुनाइयै॥ ३६४॥

इनके बालपनकी कुछ बातें बड़ी ही विलक्षण हैं जिनसे इनकी महत्ताका कुछ अनुमान होता है। एक दिन ये अपने कुछ साथी बालसखाओंके साथ बगीचेमें खेल रहे थे। वहाँ इन्होंने दो गौर-श्याम बालकोंको श्रीराधा-मोहनके रूपमें सुसज्जित किया। फिर कुछ देर बाद दोनोंके शृंगार बदलकर श्रीराधाको श्रीमोहन और श्रीमोहनको श्रीराधाके रूपमें परिणत कर दिया और इस प्रकार वेश-भूषा बदलनेका खेल खेलने लगे।

प्रातःकालका समय था। इनके पिता श्रीव्यासजी अपने सेव्य श्रीराधाकान्तजीका शृंगार करके मुग्ध होकर युगलछविके दर्शन कर रहे थे। उसी समय आकस्मिक परिवर्तन देखकर वे चौंक पड़े। उन्होंने श्रीविग्रहोंमें श्रीराधाके रूपमें श्रीकृष्णको और श्रीकृष्णके रूपमें राधाजीको देखा। सोचा, वृद्धावस्थाके कारण स्मृति नष्ट हो जानेसे शृंगार धरानेमें भूल हो गयी है। क्षमा-याचना करके उन्होंने शृंगारको सुधारा। परंतु तुरंत ही अपने-आप वह शृंगार भी बदलने लगा। तब घबराकर व्यासजी बाहर निकले। सहसा उनकी दृष्टि बागकी ओर गयी, देखा—हरिवंश अपने सखाओंके साथ खेल-खेलमें वही स्वरूप-परिवर्तन कर रहा है। उन्होंने सोचा इसकी सच्ची भावनाका ही यह फल है। निश्चय ही यह कोई असाधारण महापुरुष है।

एक बार श्रीव्यासजीने अपने सेव्य श्रीठाकुरजीके सामने लड्डूका भोग रखा; इतनेमें ही देखते हैं कि लड्डुओंके साथ फल-दलोंसे भरे बहुत-से दोने थालमें रखे हैं। इन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। उस दिनकी बात याद आ गयी। पूजनके बाद इन्होंने बाहर जाकर देखा तो पता लगा कि हरिवंशजीने बगीचेमें दो वृक्षोंको नीले-पीले पुष्पोंकी मालाओंसे सजाकर युगल-किशोरकी भावनासे उनके सामने फल-दलका भोग रखा है। इस घटनाका भी व्यासजीपर बड़ा प्रभाव पड़ा।

एक बार श्रीहरिवंशजी खेल-ही-खेलमें बगीचेके पुराने सूखे कुएँमें सहसा कूद पड़े। इससे श्रीव्यासजी, माता तारादेवी और कुटुम्बके लोगोंको तो अपार दुःख हुआ ही, सारे नगरनिवासी व्याकुल हो उठे। व्यासजी तो शोकाकुल होकर कुएँमें कूदनेको तैयार हो गये। लोगोंने जबरदस्ती उन्हें पकड़कर रखा।

कुछ ही क्षणोंके पश्चात् लोगोंने देखा, कुएँमें एक दिव्य प्रकाश फैल गया है और श्रीहरिवंशजी श्रीश्यामसुन्दरके मंजुल श्रीविग्रहको अपने नन्हे-नन्हे कोमल करकमलोंसे सम्हाले हुए अपने-आप कुएँसे ऊपर उठते चले आ रहे हैं। इस प्रकार आप ऊपर पहुँच गये और पहुँचनेके साथ ही कुआँ निर्मल जलसे भर गया। माता-पिता तथा अन्य सब लोग आनन्द-सागरमें डुबकियाँ लगाने लगे। श्रीहरिवंशजी जिन भगवान् श्यामसुन्दरके मधुर मनोहर श्रीविग्रहको लेकर ऊपर आये थे, उस श्रीविग्रहकी शोभाश्री अतुलनीय थी। उसके एक-एक अंगसे मानो सौन्दर्य-माधुर्यका निर्झर बह रहा था। सब लोग उसका दर्शन करके निहाल हो गये। तदनन्तर श्रीठाकुरजीको राजमहलमें लाया गया और बड़े समारोहसे उनकी प्रतिष्ठा की गयी। श्रीहरिवंशजीने उनका परम रसमय नामकरण किया—श्रीनवरंगीलालजी। अब श्रीहरिवंशजी निरन्तर अपने श्रीनवरंगीलालजीकी

पूजा-सेवामें निमग्न रहने लगे। इस समय इनकी अवस्था पाँच वर्षकी थी।

इसके कुछ ही दिनों बाद इनकी अतुलनीय प्रेममयी सेवासे विमुग्ध होकर साक्षात् रासेश्वरी नित्य-निकुंजेश्वरी वृषभानुनन्दिनी श्रीराधिकाजीने इन्हें दर्शन दिये, अपनी रस-भावनापूर्ण सेवा-पद्धतिका उपदेश किया और मन्त्रदान करके इन्हें शिष्यरूपमें स्वीकार किया।

आठ वर्षकी अवस्थामें आपका उपनयनसंस्कार हुआ और सोलह वर्षकी अवस्थामें श्रीरुक्मिणीदेवीसे आपका विवाह हो गया। पिता-माताके गोलोकवासी हो जानेके बाद आप सब कुछ त्यागकर श्रीवृन्दावनके लिये विदा हो गये। श्रीनवरंगीलालजीकी सेवा भी आपने अपने पुत्रोंको सौंप दी।

देववनसे आप चिड़यावल आये। यहाँ आत्मदेव नामक एक भक्त ब्राह्मणके घर ठाकुरजी श्रीराधावल्लभजी विराजमान थे। आत्मदेवजीको स्वप्नादेश हुआ कि तुम्हारी जो दोनों पुत्रियाँ (श्रीकृष्णदासी और मनोहरी) हैं, उनका हितहरिवंशजीसे विवाह कर दो और दहेजरूपमें मुझे दे देना। यदि वे विवाहके लिये न मानें तो उन्हें मेरी आज्ञा बता देना तब वे प्रस्तुत हो जायँगे। आत्मदेवजीने ऐसा ही किया और उसीके अनुसार श्रीराधावल्लभजी महाराजको हरिवंशजी वृन्दावन ले आये।

श्रीप्रियादासजी इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

आये घर त्यागि राग बाढ्यौ प्रिया प्रियतमसों विप्र बड़भाग हरि आज्ञा दई जानियै।
तेरी उभै सुता ब्याह देवौ लेवौ नाम मेरो इनकौ जो बंस सो प्रसंस जग मानियै॥
ताही द्वार सेवा विसतार निज भक्तनकी अगतिन गति सो प्रसिद्ध पहिचानियै।
मानि प्रिय बात गहगह्यौ सुख लह्यौ सब कह्यौ कैसे जात यह मत मन आनियै॥ ३६५॥

वृन्दावनमें मदन-टेर नामक स्थानमें श्रीराधावल्लभजीने प्रथम निवास किया। इसके पश्चात् इन्होंने भ्रमण करके श्रीवृन्दावनके दर्शन किये और प्राचीन एवं गुप्त सेवाकुंज, रासमण्डल, वंशीवट एवं मानसरोवर नामक चार पुण्यस्थलोंको प्रकट किया। तदनन्तर आप सेवाकुंजके समीप ही कुटियोंमें रहने लगे तथा श्रीराधावल्लभजीका प्रथम प्रतिष्ठा-उत्सव इसी स्थानपर हुआ।

श्रीराधावल्लभजीकी आज्ञासे श्रीहितहरिवंशजीने श्रीश्यामाश्याम युगल-सरकारकी निकुंजलीलाका क्रिया और काव्यद्वारा प्रचार-प्रसार किया।

श्रीप्रियादासजी श्रीराधावल्लभ प्रभुद्वारा दी गयी हितहरिवंशजीको आज्ञाका वर्णन अपने कवित्तमें इस प्रकार करते हैं—

राधिका वल्लभलाल आज्ञा सो रसाल दई सेवा मो प्रकास औ विलास कुंज धामकौ।
सोई विसतार सुखसार दृग रूप पियौ दियौ रसिकनि जिन लियौ पच्छ बामकौ॥
निसि दिन गान रस माधुरी कौ पान उर अन्तर सिहान एक काम स्यामास्यामकौ।
गुन सो अनूप कहि कैसे कै सरूप कहै लहै मन मोद जैसे और नहीं नामकौ॥ ३६६॥

स्वामी श्रीहरिदासजीसे आपका अभिन्न प्रेमका सम्बन्ध था और ओरछेके राजपुरोहित एवं गुरु प्रसिद्ध भक्त श्रीहरिरामजी व्यासने भी आकर श्रीहिताचार्य प्रभुजीसे ही दीक्षा ग्रहण की थी। 'श्रीवृन्दावन-महिमामृतम्' के निर्माता महाप्रभु श्रीचैतन्यके प्रसिद्ध भक्त स्वामी श्रीप्रबोधानन्दजीकी भी आपके प्रति बड़ी निष्ठा और प्रीति थी।

श्रीभगवान्‌की सेवामें किस प्रकार अपनेको लगाये रखना चाहिये और कैसे अपने हाथों सारी सेवा करनी चाहिये, इसकी शिक्षा श्रीहितहरिवंश प्रभुजीके जीवनकी एक घटनासे बहुत सुन्दर मिलती है। श्रीहितहरिवंशजी

एक दिन मानसरोवरपर अपने कोमल करकमलोंसे सूखी लकड़ियाँ तोड़ रहे थे। इसी समय आपके प्रिय शिष्य दीवान श्रीनाहरमलजी दर्शनार्थ वहाँ आ पहुँचे। नाहरमलजीने प्रभुको लकड़ियाँ तोड़ते देख दुखी होकर कहा—'प्रभो! आप स्वयं लकड़ी तोड़नेका इतना बड़ा कष्ट क्यों उठा रहे हैं, यह काम तो किसी कहारसे भी कराया जा सकता है।......यदि ऐसा ही है तो फिर हम सेवकोंका तो जीवन ही व्यर्थ है।'

नाहरमलके आन्तरिक प्रेमसे तो प्रभुका मन प्रसन्न था, परंतु सेवाकी महत्ता बतलानेके लिये उन्होंने कठोर स्वरमें कहा—'नाहरमल! तुम-जैसे राजसी पुरुषोंको धनका बड़ा मद रहता है, तभी तो तुम श्रीठाकुरजीकी सेवा कहारोंके द्वारा करवानेकी बात कहते हो। तुम्हारी इस भेद-बुद्धिसे मुझे बड़ा कष्ट हुआ।' कहते हैं कि श्रीहितहरिवंश प्रभुजीने उनको अपने पास आनेतकसे रोक दिया। आखिर जब नाहरमलजीने दुखी होकर अनशन किया—पूरे तीन दिन बीत गये, तब वे कृपा करके नाहरमलजीके पास गये और प्रेमपूर्ण शब्दोंमें बोले—'भैया! प्रभुसेवाका स्वरूप बड़ा विलक्षण है। प्रभुसेवामें हेयोपादेय बुद्धि करनेसे जीवका अकल्याण हो जाता है। ऐसा विरोधी भाव मनमें नहीं लाना चाहिये। प्रभु-सेवा ही जीवका एकमात्र धर्म है। मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। तुम अन्न-जल ग्रहण करो।' यों कहकर उन्होंने स्वयं अपने हाथोंसे प्रसाद दिया और भरपेट भोजन कराया।

श्रीहितहरिवंशजी महाराज राधावल्लभ-सम्प्रदायके मेरुदण्ड हैं, इन्हें श्रीकृष्णकी वंशीका अवतार माना जाता है। अड़तालीस वर्षोंतक इस धराधामको पावन करनेके पश्चात् सं० १६०९ वि० की शारदीय पूर्णिमाके दिन आपने निकुंजलीलामें प्रवेश किया।

श्रीस्वामी हरिदासजी

जुगल नाम सों नेम जपत नित कुंजबिहारी।
अवलोकत रहैं केलि सखी सुख के अधिकारी॥
गान कला गंधर्ब स्याम स्यामा कों तोषैं।
उत्तम भोग लगाय मोर मरकट तिमि पोषैं॥
नृपति द्वार ठाढ़े रहैं दरसन आसा जास की।
आसधीर उद्योत कर रसिक छाप हरिदास की॥ ९१॥

श्रीस्वामी हरिदासजी श्रीआशुधीरजीके सुयशको जगमें प्रकाशित करनेवाले हुए। आप वैष्णव समाजमें 'श्रीरसिकजी' इस नामसे विख्यात थे। आपका श्रीकुंजविहारिणी-विहारी श्रीश्यामाश्याम प्रियाप्रियतम-युगलके नामके प्रति बड़ा नेम-प्रेम था। आप निरन्तर प्रेमपूर्वक श्रीयुगलनामका जप किया करते थे तथा नित्य श्रीप्रिया-प्रियतमकी केलि-विलास-लीलाका दर्शन करते रहते थे। आप सखी-सुखके परम अधिकारी थे तथा संगीत विद्यामें ऐसे निपुण थे कि आपके समक्ष गन्धर्व भी एक कलामात्र प्रतीत होते थे। अपने रसमय संगीतसे आप श्रीश्यामाश्यामको सदा रिझाते थे। आप अपने परमाराध्य श्रीश्यामाश्यामको परमोत्तम भोग अर्पित करते थे और सन्तसे अवशिष्ट भोग-प्रसादद्वारा मयूर, बन्दर एवं मछलियोंका भी पोषण करते थे। बड़े-बड़े राजा-महाराजा आपके दर्शनोंकी आशामें कुंजद्वारपर खड़े रहते थे॥ ९१॥

स्वामी श्रीहरिदासजी महाराजके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

लगभग पाँच सौ साल पहलेकी बात है, वृन्दावनसे आधे कोसकी दूरीपर राजपुर गाँवमें सं० १५३७

वि० के लगभग स्वामी हरिदासजीका जन्म हुआ। उनके पिताका नाम गंगाधर और माताका चित्रादेवी था। वे ब्राह्मण थे। बाल्यावस्थासे ही उन्हें भगवान्‌की लीलाके अनुकरणके प्रति प्रेम था और वे खेलमें भी विहारीजीकी सेवायुक्त क्रीड़ामें ही तत्पर रहते थे। माता-पिता भगवान्‌के सीधे-सादे भक्त थे, हरिदासके चरित्र-विकासपर उनके सम्पर्क एवं संग तथा शिक्षा-दीक्षा और रीति-नीतिका विशेष प्रभाव पड़ा। हरिदासका मन घर-गृहस्थीमें बहुत ही कम लगता था, वे उपवनोंमें, सर-सरिताके तटपर और एकान्त स्थानोंमें विचरण किया करते थे। एक दिन अवसर पाकर पचीस वर्षकी अवस्थामें एक विरक्त वैष्णवकी तरह वे घरसे अचानक निकल पड़े। वे घरसे सीधे वृन्दावन आये, अपने उपास्यदेवता विहारीजीके दर्शन किये और उन्हींके शरणागत होकर निधिवनमें रहने लगे। आशुधीरजी उनके दीक्षा-गुरु थे। धीरे-धीरे उनके त्याग, निस्पृहता, रसोपासना और संगीतदक्षताकी प्रसिद्धि चारों ओर भक्त, सन्त तथा संगीतज्ञ-मण्डलीमें व्याप्त हो गयी और उनके शिष्योंकी संख्या उत्तरोत्तर बढ़ने लगी।

भावावेशमें सदा उनकी सहज समाधि-सी लगी रहती थी। प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-कृष्णके सौन्दर्य और माधुर्यके महासागरमें वे रात-दिन डूबे रहते थे। उनका वही अचल धन था। उन्होंने बड़ी सरलतासे भगवान्‌का स्तवन करते हुए कहा—'हरि! तुम जिस तरह हमें रखना चाहते हो, उसी तरह रहनेमें हमें सन्तोष है।' उनका पूर्ण विश्वास था कि सब कुछ विहारी-विहारिनिजीकी कृपासे ही होता है। हरिदास निम्बार्क-सम्प्रदायके सन्त आशुधीरजीके शिष्य थे। स्वामी हरिदासजीकी उपासना सखीभावकी थी और भक्ति श्रृंगारमूलक रासेश्वरकी सौन्दर्य-निष्ठाकी प्रतीक थी। उनके सिद्धान्तसे भोक्ता केवल भगवान् हैं और समस्त चराचर उनका भोग्य है। उनकी कुटीके सामने दर्शनके लिये बड़े-बड़े राजा-महाराजाओंकी भीड़ लगी रहती थी, पर उन्होंने कभी किसीकी मुँहदेखी नहीं की। करका करवा ही उनका एकमात्र सामान था।

एक बार एक भक्तने स्वामीजीको अत्यन्त मूल्यवान् इत्र भेंट किया। वे भगवती यमुनाकी रेतीमें बैठे हुए थे। वसन्त-ऋतुका यौवन अपनी पराकाष्ठापर था। वृन्दावनके मन्दिरोंमें धमारकी धूम थी। रसिक हरिदासका मन डोल उठा। उनके प्राणप्रिय रासविहारी और उनकी रासेश्वरी श्रीराधारानीकी कृपादृष्टिकी मनोरम दिव्यता उनके नयनोंमें समा गयी, वृन्दावनकी चिन्मयताकी आरसीमें अपने उपास्यकी झाँकी करके वे ध्यानस्थ हो गये। उन्हें तनिक भी बाह्य ज्ञान नहीं था, वे मानस-जगत्‌की सीमामें भगवदीय कान्तिका दर्शन करने लगे। भगवान् राधारमण रंगोत्सवमें प्रमत्त होकर राधारानीके अंग-अंगको करमें कनक-पिचकारी लेकर सराबोर कर रहे थे। ललिता, विशाखा आदि रासेश्वरीकी ओरसे नन्दनन्दनपर गुलाल और अबीर फेंक रही थीं, यमुना-जल रंगसे लाल हो चला था, बालुकाओंमें गुलाल और बुक्केके कण चमक रहे थे। भगवान् होली खेल रहे थे। हरिदासके प्राणोंमें रंगीन चेतनाएँ लहराने लगीं। नन्दनन्दनके हाथकी पिचकारी छूट ही तो गयी, हरिदासके तन-मन भगवान्‌के रंगमें शीतल हो गये, उनका अन्तर्देश गहगहे रंगमें सराबोर था। भगवान्‌ने भक्तको ललकारा। हरिदासने भगवान्‌के पीताम्बरपर इत्रकी शीशी उड़ेल दी। इत्रकी शीशी जिसने भेंट की थी, वह तो उनके इस चरित्रसे आश्चर्यचकित हो गया। जिस वस्तुको उसने इतने प्रेमसे प्रदान किया था, उसे उन्होंने रेतीमें छिड़ककर अपार आनन्दका अनुभव किया। रसिक हरिदासकी आँखें खुलीं, उन्होंने उस व्यक्तिकी मानसिक वेदनाकी बात जान ली और शिष्योंके साथ श्रीबिहारीजीके दर्शनके लिये भेजा। उस व्यक्तिने विहारीजीका वस्त्र इत्रसे सराबोर देखा और देखा, पूरा मन्दिर विलक्षण सुगन्धसे परिपूर्ण था। वह बहुत लज्जित हुआ; पर भगवान्‌ने उसकी परम प्यारी भेंट स्वीकार कर ली, यह सोचकर उसने अपने सौभाग्यकी सराहना की।

एक बार एक धनी तथा कुलीन व्यक्तिने हरिदाससे दीक्षित होनेकी इच्छा प्रकट की और उन्हें पारस भेंटस्वरूप दिया। हरिदासने पारसको पत्थर कहकर यमुनाजीमें फेंक दिया और उसे शिष्य बना लिया।

श्रीप्रियादासजी महाराज इन घटनाओंका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

स्वामी हरिदास रसरासको बखान सकै रसिकता छाप जोई जाप मधि पाइयै।
ल्यायौ कोऊ चोवा वाकौ अति मन भोवा वामै, डार्‌यौ लै पुलिन यह खोवा हिये आइयै॥
जानिकै सुजान कही लै दिखावौ लाल प्यारे, नैसुकु उघारे पट सुगंध बुड़ाइयै।
पारस पषान करि जल डरवाय दियौ कियौ तब शिष्य ऐसे नाना विधि गाइयै॥ ३६७॥

अपने दरबारी गायक भक्तवर तानसेनसे एक बार सम्राट् अकबरने पूछा था—'क्या तुमसे बढ़कर भी कोई गानेवाले व्यक्ति हैं?' तानसेनने विनम्रतापूर्वक स्वामी हरिदासजीका नाम लिया। अकबरने उन्हें राजसभामें आमन्त्रित करना चाहा; पर तानसेनने निवेदन किया कि वे कहीं आते-जाते नहीं। निधिवन जानेका निश्चय हुआ। हरिदासजी तानसेनके संगीतगुरु थे, उनके सामने जानेमें तानसेनके लिये कुछ भी अड़चन नहीं थी। रही अकबरकी बात, सो उन्होंने वेष बदलकर एक साधारण नागरिकके रूपमें उनका दर्शन किया। तानसेनने जान-बूझकर एक गीत गलत रागमें गाया। स्वामी हरिदासने उसे परिमार्जित और शुद्ध करके कोकिलकण्ठसे जब अलाप भरना आरम्भ किया, तब सम्राट् अकबरने संगीतकी दिव्यताका अनुभव किया। तानसेनने कहा—'स्वामीजी सम्राटोंके सम्राट् भगवान् श्रीकृष्णके गायक हैं।'

स्वामी हरिदासजी निम्बार्क-सम्प्रदायके अन्तर्गत 'टट्टी-संस्थान'* के संस्थापक थे। संवत् १६३२ वि० तक वे निधिवनमें विद्यमान थे। वृन्दावनकी नित्य नवीन भगवल्लीलामयी चिन्मयताके सौन्दर्यमें उनकी रसोपासनाने विशेष अभिवृद्धि की।

श्रीहरिराम व्यासजी

काहू के आराध्य मच्छ कछ नरहरि सूकर।
बामन फरसाधरन सेतबंधन जु सैल कर॥
एकन के यह रीति नेम नवधा सों लाएँ।
सुकुल सुमोखन सुवन अच्युत गोत्री जु लड़ाएँ॥
नै गुन तोरि नूपुर गुह्यो महत सभा मधि रास कें।
उतकर्ष तिलक अरु दाम को भक्त इष्ट अति ब्यास कें॥ ९२॥ भक्तोंको अपना परम इष्ट मानते थे। इन्होंने

श्रीहरिराम व्यासजी (श्रीयुगलकिशोरजीको इष्ट और) कोई-कोई तो श्रीमत्स्य, कच्छप, नृसिंह, ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक तथा तुलसी कण्ठी-मालाकी बड़ी महिमा गायी है। आराधना करते हैं। एक समुदाय ऐसा है जो नवधा वाराह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण आदि अवतारोंकी भक्तिमें निष्ठा रखता है। परंतु श्रीसुमोखन शुक्लजीके पुत्र श्रीहरिराम व्यासजीने तो वैष्णवोंको ही प्रेमपूर्वक दुलराया। आपने रासलीलाके समय महत्पुरुषोंकी सभामें श्रीप्रियाजीके पाँवका नूपुर गूथा था॥ ९२॥

श्रीहरिराम व्यासजीके विषयमें कुछ विवरण इस प्रकार है—

श्रीहरिराम व्यासजी ओरछानरेश महाराज मधुकरशाहजीके राजगुरु थे। सम्प्रदाय-ग्रन्थोंमें आपको

* इनके सम्प्रदायको 'सखी सम्प्रदाय' एवं 'हरिदासी सम्प्रदाय' के नामसे भी जाना जाता है।

विशाखा सखीका अवतार माना जाता है। आपका जन्म ओरछामें मार्गशीर्ष कृष्ण ५, सं० १५६७ वि० को हुआ था। आपके पिताका नाम श्रीसुमोखनजी शुक्ल और माताका नाम पद्मावती देवी था। आप वेदशास्त्रपुराणादिके पारंगत विद्वान् थे और आपको श्रीसरस्वतीजीकी सिद्धि थी। आप शास्त्रार्थमें दिग्विजय करते हुए काशी आये और वहाँके पण्डितोंसे शास्त्रार्थ किया। आपके अलौकिक पाण्डित्यके समक्ष उन सबको पराजयका मुँह देखना पड़ा। अन्तमें सभी पण्डित भगवान् विश्वनाथजीकी शरणमें गये और उनसे काशीपुरीकी मर्यादाकी रक्षा करनेकी प्रार्थना की। ब्राह्मणोंकी प्रार्थना स्वीकारकर भगवान् विश्वनाथ साधुका वेष धारणकर सायंकाल श्रीव्यासजीके पास गये और बोले—'मैंने आपकी विद्वत्ताके विषयमें बहुत सुना है, अत: अपनी एक जिज्ञासाका समाधान करानेके लिये आपके पास आया हूँ, आप कृपा करके उसका समाधान कर दें तो बहुत अच्छा होगा।' आपने जिज्ञासा व्यक्त करनेको कहा। अनुमति मिलनेपर साधुवेशधारी श्रीविश्वनाथजीने पूछा—'विद्याका फल क्या है?' आपने उत्तर दिया—'विवेककी प्राप्ति।' शिवजीने पुन: प्रश्न किया—'क्या आपने विद्या पढ़कर विवेक प्राप्त कर लिया है? क्या विद्याका फल शास्त्रार्थ करके साधु-ब्राह्मणोंको हराना, उन्हें अपमानित करना ही है? आप तो भगवान् श्रीकृष्णकी प्रिय सखी श्रीविशाखाजीके अवतार हैं, आपको तो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका भजन करके अपना जीवन सफल करना चाहिये, आप इन व्यर्थके विवादोंमें क्यों फँसे हैं?'

साधुवेशधारी भगवान् विश्वनाथजीके इस प्रबोधनसे आपके ज्ञान-चक्षु खुल गये और आप दिग्विजयका विचार त्यागकर तत्काल घर लौट आये और वैष्णवी दीक्षा लेनेका विचार करने लगे, परंतु यह समझमें नहीं आ रहा था कि गुरु किसे बनायें। भगवत्कृपासे इसी बीच श्रीवृन्दावनसे श्रीहितहरिवंश महाप्रभुजीके कृपापात्र श्रीनवलदासजी महाराज विचरण करते हुए ओरछा आये और आपके अतिथि हुए। उनसे श्रीहितहरिवंश महाप्रभुजीके बारे सुनकर आप बहुत प्रभावित हुए और मन-ही-मन उन्हें ही गुरु बनानेका निश्चय कर लिया। अब आपका मन घरपर न लगता और श्रीवृन्दावनके कुंजोंके दर्शनकी लालसा दिनोंदिन बढ़ती गयी। एक दिन आपने घर-द्वार सब कुछ छोड़कर श्रीवृन्दावनधामकी राह ली और श्रीनवलदासजीके पास पहुँच गये तथा उनके माध्यमसे श्रीहितहरिवंश महाप्रभुके चरणोंमें जा पहुँचे। आपको अधिकारी जानकर महाप्रभुने सम्प्रदायकी दीक्षा दी और श्रीयुगलकिशोरकी उपासनाका रहस्य समझाया।

आपके वृन्दावन चले आनेपर आपके घर-परिवारके लोग आपको वापस बुलाने आ गये और किसी भी प्रकार पीछा ही नहीं छोड़ रहे थे। परिवारीजनोंके साथ विचार-विमर्शमें उस दिन बहुत समय बीत गया, अत: आप सन्तोंकी सीथ-प्रसादी भी न पा सके थे। आपकी भगवत्प्रसादमें अनन्य निष्ठा थी, प्रसाद न पानेके कारण आपको बहुत ही पश्चात्ताप हो रहा था। सहसा आपने देखा कि झाड़ू लगानेवाली महिला अपनी टोकरीमें सन्तोंकी सीथ-प्रसादी लिये हुए जा रही है, आप उसके पास गये और बोले—'माताजी! आज मैं सन्तोंकी सीथ-प्रसादी नहीं पा सका, अगर आप कहें तो थोड़ा-सा सीथ-प्रसादी मैं आपकी टोकरीसे ले लूँ।' वह अपनी हीनताका विचारकर संकुचित होती हुई बोली—'महाराज! आप इतने बड़े महापुरुष होकर यह कैसी बात कह रहे हैं, फिर भी यदि आपकी ऐसी ही इच्छा हो तो ले लीजिये।' फिर तो आपने सब कुटुम्बियोंके समक्ष ही उस महिलाकी टोकरीसे एक पकौड़ी निकाल ली और भगवत्प्रसाद एवं सन्तोंकी सीथ-प्रसादीकी महिमाका स्मरण करते हुए उसे पा लिया। फिर तो इनके परिवारीजन भी नाक-भौं सिकोड़ते हुए यह कहने लगे कि ये तो सबका छुआ खा लेते हैं, अत: अब ये हम लोगोंकी पंक्तिमें बैठनेलायक नहीं रह गये, इस प्रकार किसी तरह उस समय भगवत्प्रसादकी कृपासे आप परिवारजनोंके चंगुलसे छूट सके।

जब परिवारके लोग आपको वापस घर लानेमें सफल नहीं हुए तो स्वयं ओरछानरेश महाराज मधुकरशाहजी इन्हें लिवाने आये। महाराज सीधे आपके गुरु श्रीहितहरिवंश महाप्रभुसे मिले और उनसे निवेदन किया कि हमारे गुरुदेव श्रीव्यासजी यदि यहाँ रहते हैं तो केवल आत्मश्रेयका सम्पादन करेंगे और यदि ओरछामें विराजते हैं तो इनके साथ-साथ सम्पूर्ण देशवासियोंका कल्याण होगा; अतः आप कृपा करके इन्हें आज्ञा दीजिये कि ये वहीं चलकर स्वयं भक्ति-साधन करते हुए अपने सदुपदेशोंसे लोकका भी कल्याण करें। श्रीहरिवंशजीने महाराजके निवेदनपर हामी भर ली। जब इस बातका ज्ञान श्रीव्यासजी महाराजको हुआ तो वे श्रीधामवृन्दावनके वियोगमें व्याकुल हो गये और वहाँके सभी वृक्षों और लताओंसे लिपट-लिपटकर करुण विलाप करने लगे। आपकी इस प्रेम-विह्वलताका ज्ञान होनेपर श्रीहितमहाप्रभुजी बड़े प्रसन्न हुए और आपको बुलवाकर आशीर्वाद दिया कि 'तुम अविचल श्रीवृन्दावनवास करोगे।' श्रीमधुकरशाहजी महाराज भी इनकी वृन्दावन-निष्ठा देखकर दोनों महापुरुषोंका चरण वन्दनकर ओरछा वापस लौट आये। जब आपके पत्नी-पुत्रोंको यह विश्वास हो गया कि अब आप ओरछा नहीं आयेंगे, तो वे लोग स्वयं ही वृन्दावन आ गये और श्रीहितहरिवंश महाप्रभुकी आज्ञासे वहीं रहकर सन्त-भगवन्तकी सेवा करने लगे। यहाँतक कि आपकी धर्मपत्नीने तो अपने आभूषणतक बेचकर सन्तसेवामें लगा दिये। आपके तीन पुत्रोंमें सबसे छोटे श्रीकिशोरदासजी श्रीस्वामी हरिदासजी महाराजके कृपापात्र थे। आपकी पुत्री भी परम भगवद्भक्ता थी, विवाह होनेके बावजूद भी उन्होंने श्रीवृन्दावनधाममें वास करने और भगवत्सेवा करनेको लौकिक सुखोंसे श्रेयस्कर माना और आजीवन इसी व्रतमें सन्नद्ध रहीं।

आपका श्रीवृन्दावनधामके प्रति अनन्यप्रेम था, अतः आपने स्वयं तो आजीवन वृन्दावनवास किया ही, दूसरोंको भी श्रीवृन्दावनवासकी प्रेरणा की। एक बारकी बात है, एक सन्त तीर्थयात्रा करते हुए श्रीधाम वृन्दावन आये और आपके पास ठहरे। उन सन्त भगवान्‌की कीर्तन-शैली ऐसी अद्भुत थी कि मानो आनन्दकी रस- धारा बरस रही हो, उस रसधारमें सिक्त होकर आपका मन उस आनन्दको छोड़नेके लिये तैयार नहीं था। आपकी इच्छा थी कि ऐसे सन्तको तो श्रीधाम वृन्दावनमें ही वास करते हुए अपने गायनसे श्रीठाकुरजीकी सेवाकर अपना जीवन सफल करना चाहिये, अतः आपने उन्हें आग्रहपूर्वक रोक लिया, परंतु तीर्थ-पर्यटनकी इच्छासे निकले सन्त महानुभाव अधिक समयतक रुकनेके लिये तैयार नहीं थे। उन्होंने अपना ठाकुर बटुआ माँगा और चलनेके लिये प्रतिबद्ध हो गये। जब आपको लगा कि ये सन्त महोदय रुक सकेंगे नहीं, चले ही जायँगे तो आपने उनके ठाकुर बटुएसे श्रीठाकुरजीको तो निकाल लिया और कुंजसे एक चिड़िया पकड़कर उसमें रख दिया और उन्हें दे दिया। उन्होंने आगे जाकर स्नान आदिसे निवृत्त होकर श्रीठाकुरजीकी सेवा करनेके लिये जैसे ही ठाकुर बटुआ खोला, वैसे ही उसमें बन्द चिड़िया फुर्रसे श्रीवृन्दावनकी ओर उड़ चली। सन्तजीने यह कौतुक देखा तो उन्हें लगा कि श्रीठाकुरजी वृन्दावनसे नहीं जाना चाहते, इसीलिये वे चिड़िया बनकर पुनः वृन्दावन लौट गये। अब उन्हें बड़ा पश्चाताप हुआ कि मैंने इतने बड़े सन्त महापुरुषका आग्रह नहीं माना, जरूर मुझसे भगवदापराध हो गया, अतः मुझे भी वृन्दावन लौट चलना चाहिये। यह सोचकर वे पुनः आपके पास लौट आये। आपने भी उन्हें हृदयसे स्वीकार कर लिया। जब सन्त महानुभावने वृन्दावनवासका संकल्प ले लिया तो आपने उनको रोकनेके लिये किये गये इस प्रयासको उनसे बता दिया। इस प्रकार आपकी वृन्दावनके प्रति अनन्य निष्ठाके दर्शन होते हैं। आप कहा करते थे—

किशोरी तेरे चरनन की रज पाऊँ।
बैठि रहौं कुंजन के कोने स्याम राधिका गाऊँ॥

या रज शिव सनकादिकलोचन सो रज सीस चढ़ाऊँ।
व्यास स्वामिनि की छवि निरखत विमल विमल जस गाऊँ॥

एकबार आप श्रीठाकुरजीका शृंगार कर रहे थे। श्रीठाकुरजीके सिरपर पाग बाँध रहे थे, परंतु वह अत्यन्त चिकनी होनेके कारण सिरसे बार-बार फिसल-फिसल जाती थी। जब कई बार बाँधनेपर भी ठीकसे नहीं बँधी तो आपने झुँझलाकर कहा—अजी देखो, या तो मुझसे अच्छी तरहसे पाग बँधा लीजिये या फिर मेरा बाँधना आपको पसन्द नहीं हो तो स्वयं ही बढ़िया-से-बढ़िया बाँध लीजिये। यह कहकर आप शृंगार छोड़कर कुंजोंमें जाकर कीर्तन करने लगे। तब श्रीठाकुरजीने ही पाग बाँध ली। किसीने आपसे आकर कहा कि आज तो आपने श्रीठाकुरजीको बढ़िया पाग बाँधी है। यह सुनकर आपको श्रीठाकुरजीकी याद आयी तो तुरंत ही आकर देखा। सचमुच बहुत बढ़िया पाग बँधी थी। तब मुसकराकर बोले—'अहो! जब आप स्वयं इतनी बढ़िया पाग बाँधना जानते हैं तो मेरे द्वारा बाँधी पाग आपको कैसे पसन्द आ सकती है'।

श्रीप्रियादासजी महाराजने ठाकुरजीकी इस लीलाका वर्णन अपने एक कवित्तमें इस प्रकार किया है—

आये गृह त्यागि वृन्दावन अनुराग करि गयौ हियौ पागि होय न्यारो तासौं खीझियै।
राजा लैन आयौ ऐपै जायबौ न भायौ श्रीकिशोर उरझायो मन सेवा मति भीजियै॥
चीरा जरकसी सीस चिकनो खिसिल जाय, लेहु जू बँधाय, नहीं आप बाँधि लीजियै।
गये उठि कुंज, सुधि आई सुखपुंज, आये देख्यौ बँध्यो मंजु, कही कैसे मोपै रीझियै॥ ३६८॥

एक बार श्रीव्यासजी सन्तोंके आग्रहपर उनके साथ ही प्रसाद पाने बैठे। आपकी पत्नी परोस रही थीं। दूध परोसते समय उन्होंने मलाई अपने पतिके कटोरेमें गिरा दी। इससे श्रीव्यासजी बड़े ही नाराज हुए। आप समझ गये कि यह मुझमें पतिबुद्धि करके मेरा पोषण कर रही है। फिर तो श्रीव्यासजीने पत्नीको सेवासे अलग कर दिया। इससे वे बहुत उदास एवं खिन्न हो गयीं। तीन दिन बिना खाये-पीये व्यतीत हो गये। शरीर अत्यन्त क्षीण हो गया। सब सन्तोंने श्रीव्यासजीको समझाया, तब आपने पत्नीके लिये यह दण्ड निश्चित किया कि यदि वह अपने समस्त आभूषण बेचकर सन्तोंका भण्डारा कर दे, तब तो सेवामें आ सकती है अन्यथा नहीं। पत्नीने ऐसा ही किया, तब उन्हें पुनः सेवा प्राप्त हो गयी।

श्रीप्रियादासजी इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

सन्त सुख दैन बैठे संग ही प्रसाद लैन परोसति तिया सब भाँतिन प्रवीन है।
दूध बरताई लै मलाई छिटकाई निज खीझि उठे जानि पति पोषति नवीन है॥
सेवा सों छुटाय दई अति अनमनी भई गई भूख बीते दिन तीन तन छीन है।
सब समझावैं तब दण्ड को मनावैं अंग आभरन बेंचि साधु जेंवैं यों अधीन है॥ ३६९॥

जब आपकी पुत्री रत्नाबाईका विवाह हुआ, उस समय घरवालों (पत्नी-पुत्रों)-ने बड़े उत्साहके साथ सब कार्य किया। बारातियोंके स्वागतार्थ अनेकानेक प्रकारके पक्वान्न बने थे। सुन्दर सामान देखकर श्रीहरिराम व्यासजीकी बुद्धि विकल हो गयी कि इसे कैसे वैष्णवोंको पवाया जाय। फिर तो इन्होंने भावनामें ही उन वस्तुओंका भगवान्‌को अच्छी तरह भोग लगाया और अपने किसी अन्तरंग अनुचरद्वारा सन्तोंको बुलवाया। जब सन्त आ गये तो इन्होंने उन्हें सामानोंकी पोटली बँधवा दी और कहा कि अपनी-अपनी कुंजोंमें जाकर पाओ। इस प्रकार सन्तोंको सामान देकर कुंजोंमें भेजा। आपने श्रीठाकुरजीको वंशी धारण करायी, एक ब्राह्मणको भक्तिमें दृढ़ किया। एक सन्तके सम्पुटमें श्रीठाकुरजीकी जगह चिड़िया बन्द करके दे दी, फिर आनेपर सुखपूर्वक उन्हें श्रीवृन्दावनमें बसाया।

श्रीप्रियादासजीने श्रीव्यासजीके इस सन्त-प्रेमका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

सुता कौ विवाह भयौ बड़ौ उत्साह कियौ नाना पकवान सब नीके बनि आये हैं।
भक्तनि की सुधि करी खरी अरबरी मति भावना करत भोग सुखद लगाये हैं॥
आय गये साधु सो बुलाय कही पावैं जाय पोटनि बधाय चाय कुंजनि पठाये हैं।
बंसी पहिराई द्विज भक्ति लै दृढ़ाई सन्त संपुट मैं चिरैया दै हित सों बसाये हैं॥ ३७०॥

एक बार शरत्पूर्णिमाकी प्रकाशमयी रात्रिके समय श्रीप्रियाप्रियतमने रास रचाया। नृत्यके प्रसंगमें जब श्रीप्रियाजीने भावावेशमें आकर गति ली तो रासमण्डलमें मानो बिजली-सी चमक गयी तथा रासमण्डलमें परम शोभा छा गयी। तबतक श्रीप्रियाजीके पाँवका नूपुर टूट गया, उसके घुँघरू बिखर गये। यह देखकर रसिकोंका मन बेचैन हो गया, परंतु उसी क्षण श्रीव्यासजीने नूपुरको पुनः पूर्ववत् पोहकर बड़ी सावधानीपूर्वक श्रीप्रियाजीके श्रीचरणोंमें बाँध दिया, जिससे कि नृत्यमें कोई भी व्यवधान नहीं आने पाया। श्रीव्यासजीका यह कार्य सबके मनको अत्यन्त भाया।

श्रीप्रियादासजी महाराज इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

सरद उज्यारी रास रच्यौ पिया प्यारी तामें रंग बढ़्यौ भारी कैसे कहिकै सुनाइयै।
प्रिया अति गति लई बीजुरीसी कौंधि गई चकचौंधी भई छबि मण्डलमें छाइयै॥
नूपुर सो टूटि छूटि पर्‍यौ अरबर्‍यौ मन तोरिकै जनेऊ कर्‍यौ वाही भाँति भाइयै।
सकल समाज मैं यौं कह्यौ आज काम आयौ ढोयो हौं जनम ताकी बात जिय आइयै॥ ३७१॥

'भक्त ही श्रीव्यासजीके परम इष्ट हैं'—यह सुनकर एक महन्त श्रीव्यासजीके इस भावकी परीक्षा लेने आये। उनके संग सन्तोंकी बहुत बड़ी जमात थी। महन्तजीने आते ही भूखका संकेत किया, वे श्रीव्यासजीको सुना-सुनाकर अपने भूखे होनेकी बात कहने लगे, उसे सुनकर श्रीव्यासजीने कहा—'आपलोग तनिक धैर्य धारण करें, श्रीठाकुरजीको भोग जा चुका है, अभी-अभी प्रसादी थाल आता है, फिर पूर्ण होकर पाइये।' यह सुनकर महन्तजीने मनमें सोचा कि मालूम पड़ता है कि हृदयसे तो श्रीभगवान्‌को ही परम इष्ट मानते हैं, परंतु ऊपरसे कहते हैं कि सन्त ही हमारे परम इष्ट हैं। उन्होंने मनमें श्रीव्यासजीके भावपर शंका की। इतनेमें भगवत्प्रसाद आ गया। श्रीव्यासजीने बड़े ही भावपूर्वक उनको प्रसाद परोसा। परंतु श्रीमहन्तजी दो-चार ग्रास ही प्रसाद पाकर ऐसे उठ गये, मानो उनके पेटमें पीड़ा हो गयी हो। तब श्रीव्यासजीने उनकी पत्तल समेट ली और बोले—'अहो! सन्त कितने कृपालु होते हैं। आपने कृपा करके मेरे लिये सीथ—प्रसादी छोड़ दी है। अच्छा अब आप और पाइये, हम आपके लिये अभी-अभी अमनिया ही मँगवाते हैं।' यह सुनकर श्रीव्यासजीके भावको सच्चा जानकर श्रीमहन्तजी आपके चरणोंमें पड़ गये। उनकी आँखोंसे आँसुओंका प्रवाह बह चला।

श्रीव्यासजीकी इस सन्त-भगवन्त-निष्ठाका वर्णन श्रीप्रियादासजीने एक कवित्तमें इस प्रकार किया है—

गायो भक्त इष्ट अति सुनिकै महन्त एक लैन कौं परिच्छा आयो संग संत भीर है।
भूख को जतावैं बानी व्यासको सुनावैं सुनि कही भोग आवैं इहाँ मानें हरि धीर है॥
तब न प्रमान करी सङ्क धरी लै प्रसाद ग्रास दोय चार उठे मानो भई पीर है।
पातर समेटि लई सीत करि मोकों दई पावौ तुम और पाँव लिये दृग नीर है॥ ३७२॥

श्रीव्यासजीके तीन पुत्र थे। इन्होंने अपने पुत्रोंमें अपनी सम्पत्तिका बँटवारा नितान्त ही नवीन ढंगसे

किया। एक हिस्सेमें तो श्रीठाकुरजीकी सेवा-पूजाको रखा, दूसरे हिस्सेमें धन इत्यादि और तीसरे हिस्सेमें श्याम-बंदनी और छापको रखा। आपने तीनों पुत्रोंको छूट दे दी कि वे स्वेच्छानुसार जो चाहें, ले लें। तब ज्येष्ठ पुत्र श्रीरासदासने धन लिया, मँझले पुत्र श्रीविलासदासने श्रीठाकुर युगलकिशोरजीकी सेवा ली और तीसरे पुत्र श्रीकिशोरदासजीने श्याम-बंदनी और छाप ली एवं तुरंत ही उन्होंने ललाटपर तिलक कर लिया तथा गलेमें माला धारण कर ली। श्रीव्यासजीके अनुरोधपर श्रीस्वामी हरिदासजीने श्रीकिशोरदासजीको छाप दी, अपना शिष्य बनाया। एक दिन श्रीस्वामीजीके आदेशसे श्रीकिशोरदासजी कुछ रात रहते ही श्रीयमुनाजीसे जल लेने गये तो वहाँ उन्होंने श्रीयमुनापुलिनपर श्रीप्रियाप्रियतमका दिव्य रास देखा। भावकी उमंगमें श्रीकिशोरदासजीने उसी समय स्वरचित एक पद गाया। जिसे ललिता आदि सखियोंने तत्काल सीख लिया और फिर जब भावनामें श्रीस्वामी हरिदासजी रास-क्रीड़ाका ध्यान कर रहे थे तो रासमें वही पद श्रीललिता आदि सखियोंको गाते हुए सुना, जिसे सुनकर श्रीस्वामी हरिदासजीका मन हर गया।

श्रीप्रियादासजी इस घटनाका वर्णन इस प्रकार करते हैं—

भये सुत तीन बाँट निपट नवीन कियौ एक ओर सेवा एक ओर धन धर्‌यौ है।
तीसरी जु ठौर स्याम बंदनी और छाप धरी करी ऐसी रीति देखि बड़ौ सोच पर्‌यौ है॥
एकने रुपैया लिये एकने किशोर जू कों श्रीकिशोरदास भाल तिलक लै कर्‌यौ है।
छापे दिये स्वामी हरिदास निसि रास कीनौ वही रास ललितादि गायो मन हर्‌यौ है॥ ३७३॥

श्रीजीवगोस्वामीजी

बेला भजन सुपक्व कषाय न कबहूँ लागी।
बृंदाबन दृढ़ बास जुगल चरननि अनुरागी॥
पोथी लेखन पान अघट अच्छर चित दीनो।
सदग्रंथनि को सार सबै हस्तामल कीनो॥
संदेह ग्रंथि छेदन समर्थ (रस) रास उपासक परम धिर।
(श्री) रूप सनातन भक्ति जल जीव गुसाईं सर गँभिर॥ ९३॥

श्रीरूपगोस्वामीजी एवं श्रीसनातनगोस्वामीजीके भक्तिरूपी जलको धारण करनेके लिये श्रीजीवगोस्वामीजी गम्भीर सरोवरके समान हुए। दृढ़ नियमपूर्वक भजन-साधन ही इस सरोवरका सुदृढ़ तट है। इसमें कभी भी मायिक विकाररूप काई नहीं लगी। आपने अखण्ड वृन्दावनवास किया। श्रीप्रियाप्रियतमयुगलके श्रीचरण-कमलोंमें आपका परमानुराग था। ग्रन्थ लिखनेमें आप प्रत्येक पत्रोंपर न्यूनाधिक्य दोषरहित समान अक्षर लिखते थे। समस्त सद्ग्रन्थोंके सार-सिद्धान्तका आपको सम्यक् बोध था। जिज्ञासुजनोंकी सन्देहरूपी गाँठोंको खोलनेमें आप परम समर्थ थे। रामरस अर्थात् परमोज्ज्वल शृंगाररसके आप उपासक थे तथा परम शान्त, दान्त एवं विवेकवान् थे॥ ९३॥

श्रीजीवगोस्वामीजीके विषयमें कुछ विवरण इस प्रकार है—

चार सौ साल पहलेकी बात है, बंगालके महामहिम शासक हुसेनशाहके प्रधान अधिकारी दबिर और शाकिर (सनातन और रूप)-की श्रद्धा और भक्तिसे प्रसन्न होकर श्रीचैतन्य महाप्रभुने रामकेलि ग्रामकी यात्रा की। गंगातटपर तारोंभरी रातमें चन्दनवनकी वायुसे सम्पन्न नीरव उपवनमें कदम्बके झुरमुटमें जिस समय

रूप और सनातनको महाप्रभु चैतन्य हरिनाम-ध्वनिसे कृतार्थ कर रहे थे, उसी समय उनके छोटे भाई अनूप अथवा वल्लभके पुत्र जीव गोस्वामीने उनके दर्शन किये और उनके चरणारविन्द-मकरन्दकी अमृतवारुणीसे प्रमत्त होकर अपने-आपको पूर्णरूपसे समर्पित कर दिया। उनकी अवस्था अल्प थी, पर भक्ति-माधुरीने उनके जीवनको बदल दिया।

वृन्दावनसे अनूप नीलाचल आये, वहीं उनकी मृत्यु हो गयी। पिताकी मृत्युने जीव गोस्वामीके हृदयको बड़ा आघात पहुँचाया। वे आनन्दकन्द नन्दनन्दनकी राजधानी—वृन्दावनमें आनेके लिये विकल हो उठे। एक रातको उन्होंने स्वप्नमें श्रीचैतन्य और नित्यानन्द महाप्रभुके दर्शन किये, वे नवद्वीप चले आये। नित्यानन्दने उनको काशी तपनमिश्रके आश्रममें शास्त्र-अध्ययनके लिये भेजा। जीव गोस्वामीने मधुसूदन वाचस्पतिसे वेदान्त, न्याय आदिकी शिक्षा पायी। वे शास्त्रमें पूर्णरूपसे निष्णात होकर परम विरक्त सनातन और रूपके पास वृन्दावन चले आये। जीवनके शेष पैंसठ वर्ष उन्होंने वृन्दावनमें ही बिताये। श्रीभगवान्के स्वरूप तथा तत्त्वविचारमें उन्होंने अपने पाण्डित्यका सदुपयोग किया। रूपने उनको मन्त्र दिया और समस्त शास्त्र पढ़ाये।'''''जीव गोस्वामी पूर्ण विरक्त हो उठे। वे भगवती कालिन्दीके परम पवित्र तटपर निवास करने लगे। वे भगवान्की उपासना माधुर्य-भावसे करते थे। उनके चरित्र और लीलाको परम तत्त्वका सार समझते थे। रूप गोस्वामीकी महती कृपासे वे धीरे-धीरे न्याय, दर्शन और व्याकरणमें पूर्ण पारंगत हो गये। उन्होंने जीवनपर्यन्त ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन किया। उन्होंने वृन्दावननिवासकालमें श्रीरूपगोस्वामिकृत भक्तिरसामृतसिन्धु एवं उज्ज्वलनीलमणिकी टीकाएँ, क्रमसन्दर्भ नामक भागवतकी टीका, भक्तिसिद्धान्त, उपदेशामृत, षट्सन्दर्भ, गोपालचम्पू, गोविन्दविरुदावली, हरिनामामृत-व्याकरण आदि भक्ति-सम्प्रदायके ग्रन्थोंकी रचना की। श्रीजीव गोस्वामीके ये सभी ग्रन्थ 'अचिन्त्यभेदाभेद' मतके अनुसार लिखे गये हैं, जो कि जीवकी कठिन हृदय-ग्रन्थियोंको दृढ़तापूर्वक छेदन करनेमें समर्थ हैं।

एक बार वल्लभभट्ट नामक एक दिग्विजयी पण्डितने श्रीरूपगोस्वामीकी किसी कृतिमें दोष निकाला और घोषणा कर दी कि रूपने जयपत्र लिख दिया। जीवके लिये यह बात असह्य हो गयी, उन्होंने शास्त्रार्थमें वल्लभको पराजित किया। रूपको जब यह बात विदित हुई, तब उन्होंने जीवको अपने पाससे अलग कर दिया। वे सात-आठ दिनतक एक निर्जन स्थानमें पड़े रहे। सनातनने रूपसे पूछा कि 'जीवके प्रति वैष्णवका कैसा व्यवहार होना चाहिये?' रूपने कहा—'दयापूर्ण!' सनातनने कहा—'तुम जीव गोस्वामीके प्रति इतना कठोर व्यवहार क्यों करते हो?' रूपके हृदयपर बड़े भाईके कथनका बड़ा प्रभाव पड़ा। उन्होंने जीवको बुलाकर गले लगाया और अपने पास रख लिया। रूप और सनातनके बाद जीव ही वृन्दावनके वैष्णवोंके सिरमौर घोषित किये गये।

आपकी सेवामें चारों ओरसे अपार धन आता, परंतु आप उस धनको श्रीयमुनाजीमें फेंक देते थे। शिष्य-सेवकोंने कई बार अनुरोध किया कि धनको श्रीयमुनाजीमें न फेंककर उससे साधुसेवा की जाय तो उसका अच्छा सदुपयोग होगा। आपने कहा—मैं किसी भी शिष्य अथवा सेवकमें साधुसेवा करनेकी योग्यता नहीं देखता हूँ। एक शिष्यने कहा—मैं अच्छी प्रकारसे साधुसेवा करूँगा। उसने कहनेको तो कह दिया, परंतु एक बार उसने एक साधुके आनेपर झुँझलाकर क्रोधपूर्वक जोरसे कटु वचन बोल दिया; तब श्रीजीवगोस्वामीजीने उसे समझाया तथा सन्तोंकी महिमाका बखान किया। फिर आपने समस्त शिष्य-सेवकोंको शिक्षा दी कि तुम सब लोग सुबहसे लेकर शामतक मधुर बोला करो। आपके अपार चरित्र हैं। आपकी भक्ति-भावनाका पार नहीं है। आपने परम वैराग्यको धारण किया था, उसका ओर-छोर वर्णन कोई नहीं कर सकता है।

इस घटनाका वर्णन भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजीने इस प्रकार किया है—

किये नाना ग्रन्थ हदै ग्रन्थि दृढ़ छेदि डारैं डारैं धन यमुनामें आवै चहुँ ओर ते।
कही दास 'साधु सेवा कीजै' कहैं 'पात्रता न' करौ नीके, करी बोल्यो कटु कोप जोर ते॥
तब समझायौ सन्त गौरव बढ़ायौ यह सबकों सिखायौ बोलैं मीठो निसि भोर ते।
चरित अपार भाव भक्ति कौ न पारावार कियोऊ बैराग सार कहै कौन छोर ते॥ ३७४॥

जीव गोस्वामीने भक्तिको रस माना है। वे रसोपासक और विरक्त महात्मा थे। भक्तिसे ही भगवत्स्वरूपका साक्षात्कार होता है। जीव गोस्वामीकी मान्यता थी कि भजनानन्द स्वरूपानन्दसे विशिष्ट है। भजनानन्दसे भगवान्‌की भक्ति मिलती है, स्वरूपानन्द ब्रह्मत्वका परिचायक है। उन्होंने भक्तिको ज्ञानसे श्रेष्ठ स्वीकार किया है। भक्ति भगवान्‌की ओर ले जाती है, ज्ञान ब्रह्मानुभूति प्रदान करता है। श्रीमद्भागवतको उन्होंने सर्वश्रेष्ठ भक्ति-शास्त्र माना है।

आश्विन शुक्ल तृतीयाको शाके १५४० में पचासी सालकी अवस्थामें उन्होंने देह-त्याग किया। वे महान् दार्शनिक पण्डित और भक्तियोगके पूर्ण मर्मज्ञ थे। महात्मा, योगी, विरक्त, भक्त—सबके सहज समन्वय थे।

श्रीराधारमणके भक्त

सर्बस राधारमन भट्ट गोपाल उजागर।
हृषीकेस भगवान बिपुल बीठल रस सागर॥
थानेस्वरि जग (नाथ) लोकनाथ महमुनि मधु श्रीरँग।
कृष्नदास पंडित्त उभै अधिकारी हरि अँग॥
घमँडी जुगलकिसोर भृत (भू) गर्भ जीव दृढ़ ब्रत लियो।
बृंदाबन की माधुरी इन मिलि आस्वादन कियो॥ ९४॥

श्रीधाम श्रीवृन्दावनकी माधुरीका इन महाभागवतोंने मिलकर अर्थात् परस्पर सत्संगद्वारा खूब आस्वादन किया। इनके नाम ये हैं—परम विख्यात श्रीगोपालभट्टजी, जिनके सर्वस्व ठाकुर श्रीराधारमणजी थे। श्रीहृषीकेशजी, श्रीअलिभगवान्‌जी, माधुर्यरससागर श्रीविट्ठलविपुलजी, श्रीजगन्नाथजी थानेश्वरी, श्रीलोकनाथगोस्वामीजी, महामुनि श्रीमधुगोस्वामीजी, श्रीरंगजी, ब्रह्मचारी श्रीकृष्णदासजी और पण्डित श्रीकृष्णदासजी—ये दोनों श्रीहरिरसके अधिकारी एवं भगवान्‌के परमप्रिय थे, श्रीयुगलकिशोरजीके सेवक श्रीउद्धवघमण्डदेवाचार्यजी, श्रीभूगर्भगोस्वामीजी, श्रीजीवगोस्वामीजी—इन महानुभावोंने श्रीश्रीधामवासका दृढ़ व्रत ले रखा था॥ ९४॥

श्रीराधारमणजीके इन भक्तोंका चरित्र संक्षेपमें इस प्रकार वर्णित है—

श्रीगोपालभट्टजी

श्रीगोपालभट्टजीका जन्म श्रीरंगम् क्षेत्रस्थ बेलगुंड ग्राममें माघ कृष्ण ३ सं० १५५७ वि० को हुआ था। आपके पिताका नाम श्रीवेंकटभट्ट और माताका नाम श्रीसदाम्बाजी था। श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतीजी आपके चाचा थे, जो श्रीचैतन्य महाप्रभुके प्रिय पार्षद और अपने समयके उद्भट विद्वान् थे। आपने न्याय, वेदान्त, व्याकरण, साहित्य आदिकी शिक्षा इन्हींसे प्राप्त की। श्रीचैतन्य महाप्रभुने दक्षिण भारतकी यात्रा करते समय चातुर्मास्य आपके यहाँ ही बिताया था, उस समय आप मात्र एकादश वर्षके थे, अतः आपको महाप्रभुकी

गोदमें बैठकर व्रजलीलाके निगूढ़तम रहस्योंका उस अल्प अवस्थामें ही श्रवण करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। चातुर्मास्यकी समाप्तिके बाद जब महाप्रभु पुनः तीर्थाटनपर जाने लगे तो आपने भी साथ चलनेका आग्रह किया। इसपर महाप्रभुजीने आपको समझाते हुए कहा कि अभी तुम्हारा कार्य माता-पिताकी सेवा करना है, समयपर प्रभुकी सेवा भी तुम्हें प्राप्त हो जायगी। माता-पिताकी सेवा पूरी करके तुम श्रीधाम वृन्दावन चले जाना, वहाँ तुम्हें रूप-सनातन मिलेंगे। उनसे तुम्हें प्रभु-सेवा प्राप्त हो जायगी। आपने महाप्रभुजीके आदेशका अक्षरशः पालन किया। जब माता-पिताका परमधामगमन हो गया तो आपने श्रीब्रज-वृन्दावनकी राह पकड़ी और वहाँ पहुँचकर श्रीरूप-सनातनके दर्शन किये तथा उनकी सन्निधिमें रहते हुए अनेक भक्ति-ग्रन्थोंका अध्ययन, व्रजके तीर्थोंका उद्धार, वैष्णव-ग्रन्थोंका प्रणयन और भक्तिका प्रचार किया। रूप-सनातनके द्वारा आपके वृन्दावन-आगमनकी सूचना जब महाप्रभुको मिली तो वे बहुत प्रसन्न हुए और एक वैष्णवके हाथ आशीर्वादरूपमें श्रीजगन्नाथभगवान्‌की प्रसादी तुलसी-माला, अपना वहिर्वास तथा योगपट्ट आपके लिये भेजा।

आप एक बार श्रीमुक्तिनाथजीकी यात्रापर गये थे तो गण्डकीनदीसे एक शालग्रामशिला लाये और उसीकी सेवा करते थे। एक बार एक भगवद्भक्त सेठ वृन्दावन आये और उन्होंने क्षेत्रस्थ सभी ठाकुरजीके लिये वस्त्र-आभूषण दिया। इसी क्रमसे वे आपके भी पास आये और श्रीठाकुरजीके लिये वस्त्र-आभूषण देने लगे। आपने सोचा कि हमारे श्रीठाकुरजी तो शालग्रामभगवान् ही हैं, उनको हम कैसे वस्त्राभूषण धारण करायें? आपने अपनी विवशता सेठको बतायी तो वह भी बहुत दुखी हुआ और अनमने भावसे जाने लगा। भक्तवांछाकल्पतरु श्रीभगवान्‌से अपने भक्तकी पीड़ा और विवशता न देखी गयी। जब आप सेठको तुलसीदल प्रसादके रूपमें देनेके लिये श्रीठाकुरजीके पास आये तो देखा कि प्रभु मोरमुकुट और वंशी धारण किये हुए हैं। यह आश्चर्य देख आप भगवत्कृपासे गद्‌गद हो उठे और उन भगवद्भक्त सेठको श्रीविग्रहका दर्शन कराते हुए कहा कि प्रभु आपके भावको स्वीकारकर शालग्रामसे श्रीकृष्णरूपमें आ गये हैं, अब आप इन्हें वस्त्राभूषण समर्पित कर दें। सेठजी भी प्रभुकी अहैतुकी कृपासे धन्य हो गये और आपका गुणगान करते चले गये।

इसी प्रकार आपपर प्रभुकी कृपाका एक अन्य उदाहरण है। एक बार आपने एक बहुत बड़े महोत्सवका आयोजन किया, जिसके कारण आपपर कुछ कर्ज भी हो गया। धनके अभावमें आप यथासमय कर्ज चुका न सके, तब दुकानदारने निश्चय किया कि मैं कल प्रातःकाल ही इनके घरपर पहुँचकर चाहे जैसे हो अपना कर्ज वसूल करूँगा। भगवान्‌ने सोचा कि प्रातःकाल तो आप मेरी सेवा-पूजामें मगन रहते हैं, अगर यह दुकानदार प्रातःकाल पहुँच जायगा तो मेरे भक्तके आनन्दमें विघ्न आ जायगा। यह सोचकर उन्होंने आपका रूप धारण किया और प्रातःकाल बहुत जल्दी ही जाकर दुकानदारको सारे कर्जका भुगतान कर आये। संयोगसे उसी दिन किसी भक्तने आपको प्रचुर धनराशि भेंट की, अतः आपने सोचा कि जाकर पहले दुकानदारका कर्ज उतार आऊँ। यह सोचकर जब आप दुकानदारके पास जाकर उसे कर्जके रुपये देने लगे तो वह आश्चर्यचकित होकर कहने लगा—'पण्डितजी! यह आप क्या कर रहे हैं? आप तो बहुत सबेरे ही आकर हिसाब चुकता कर गये हैं, फिर दुबारा क्यों देने आये हैं?' पहले तो उसकी बात सुनकर आपको आश्चर्य हुआ, फिर समझ गये कि यह मेरे आराध्य श्रीराधारमणजीकी ही कृपा है, वे ही मेरा वेश धारण करके इसे पैसे दे गये हैं। मन-ही-मन प्रभुकी कृपाका विचार करते हुए आप गद्‌गद-हृदयसे वापस लौट आये।

श्रीगोपालभट्टजीको सम्प्रदायमें गुणमंजरी सखीका अवतार माना जाता है, जिनके जिम्मे श्रीप्रिया-प्रियतमको जल पिलाने तथा चँवर डुलानेकी सेवा है। श्रीगोपालभट्टजी अपने परमाराध्य श्रीराधारमणलालजीको अत्यन्त अनुरागमें पगकर अनेक प्रकारके राग-भोग सेवामें प्रस्तुत करते थे। भक्तिके प्रभावसे आप जगद्विख्यात हुए। आपके अनुपम प्रेममय अनेकों चरित्र हैं। आपने आजीवन श्रीवृन्दावनकी अगाध माधुरीका रसास्वादन किया तथा जिसने आपकी सीथ—प्रसादी पायी, वह भी दिव्य जीवन पाकर रसस्वरूप हो गया। आप जीवमात्रके गुणको ही ग्रहण करते थे, अवगुणोंको ध्यानमें नहीं लाते थे। आप बड़े ही करुणाधाम, धर्मके सेतु (पुल) तथा भक्तराज थे।

श्रीप्रियादासजीने श्रीगोपालभट्टजीके वृन्दावन और कृष्ण-प्रेमका इस प्रकार निरूपण किया है—

श्रीगोपालभट्टजू के हिये वै रसाल बसे लसे यों प्रगट राधारवन सरूप हैं।
नाना भोग राग करैं अति अनुराग पगे जगे जग माहिं हित कौतुक अनूप हैं॥
वृन्दावन माधुरी अगाधकौ सवाद लियौ जियौ जिन पायौ सीथ भये रस रूप हैं।
गुन ही को लेत जीव अवगुनको त्यागि देत करुनानिकेत धर्मसेत भक्तभूप हैं॥ ३७५॥

श्रीगोपालभट्टने अनेक नवीन ग्रन्थोंका प्रणयन किया, अनेक ग्रन्थोंपर टीकाएँ लिखीं। आषाढ़ शुक्ल ५, शक सं० १५०७ में आप नित्यलीलालीन हो गये।

श्रीअलिभगवान्

भक्तमालके आधारपर श्रीअलिभगवान्‌का काल सं० १६५० के आस-पास प्रतीत होता है। आप प्रारम्भमें भगवान् श्रीराघवेन्द्रसरकारके अनन्य भक्त थे, परंतु बादमें युगलकिशोरने आपके मनको ऐसा मोहा कि आप सदा-सदाके लिये श्रीधामवृन्दावनमें बस गये और आजीवन श्रीप्रिया-प्रियतमकी सेवामें संलग्न रहे। आपके आराध्य-परिवर्तनकी कथा भी बहुत अद्भुत है। एक बारकी बात है, आप श्रीरामलीला देख रहे थे, उसमें जब श्रीराम-वनवास और रामवनगमनके करुण प्रसंग आये तो आपका धैर्य छूट गया और आप 'हा राम! हा रघुनाथ!' कहते हुए विलाप करने लगे। अनेक लोगोंने समझानेका प्रयास किया, परंतु किसी प्रकारसे आपको शान्ति ही नहीं मिलती थी। इसी अवस्थामें आपके कई दिन बीत गये, शरीर जर्जर हो गया। भगवत्कृपासे इनकी एक सन्तसे भेंट हो गयी, उन्होंने इनकी स्थिति देखकर ही इनकी मनःस्थिति समझ ली। आपने भी उचित पात्र समझकर उनसे अपनी सारी मनोव्यथा कह सुनायी। सन्तने पूछा—'आप कभी श्रीवृन्दावन गये हैं?' आपके 'नहीं' कहनेपर वे आपको लेकर श्रीधामवृन्दावन आये और भगवान् श्रीकृष्णके श्रीरासलीलानुकरणका दर्शन कराया। भगवान् श्रीकृष्णने भी अधिकारी जानकर आपको लीलास्वरूपमें ही अपनी दिव्य झाँकीका दर्शन कराया। भगवान्‌का साक्षात्कार होते ही आपका विरह दूर हो गया और मनमें एक नयी उमंग आ गयी। आपने निश्चय कर लिया कि अब मैं इन्हीं रासबिहारी भगवान्‌की सेवा करता हुआ यहीं वृन्दावनमें ही रहूँगा; परंतु दूसरे ही क्षण आपको ध्यान आया कि श्रीगुरुदेवजीने तो मुझे श्रीसीतारामजीकी सेवा सौंपी है; ऐसेमें उनकी सेवा छोड़कर श्रीरासबिहारीजीकी सेवा करनेसे कहीं भगवदपराध न बन जाय! अन्तमें आपने निश्चय किया कि अब मैं श्रीसीतारामजीकी ही श्रीरासबिहारी-विहारिणीके रूपमें सेवा करूँगा। इस प्रकार श्रीरासबिहारीजीकी सेवामें रहते हुए भी आपकी श्रीसीतारामजीके प्रति अनन्यता बनी रही।'

श्रीप्रियादासजीने इष्ट-परिवर्तनकी इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

अलि भगवान् राम सेवा सावधान मन वृन्दावन आये कछु औरै रीति भई है।
देखे रास मण्डलमें बिहरत रसरास बाढ़ी छबि प्यास दृग सुधि बुधि गई है॥
नाम धरि रास औ बिहारी सेवा प्यारी लागी खगी हिय माँझ गुरु सुनी बात नई है।
बिपिन पधारे आप जाय पग धारे सीस 'ईस मेरे तुम' सुख पायो कहि दई है॥ ३७६॥

श्रीविट्ठलविपुलदेव

श्रीविट्ठलविपुलदेवजीका जन्म मार्गशीर्ष शु० ५, सं० १५३२ वि० को हुआ था। आपके पिताका नाम श्रीगुरुजनजी और माताका नाम कौशल्या देवी था। महात्मा विट्ठलविपुलदेव बड़े भगवद्भक्त और रसिक थे। उनके नेत्र, कान और अधर आदि भगवान्‌की रूप-रस-माधुरीसे सदा संप्लावित रहते थे। वे रसिकराज स्वामी हरिदासजीके शिष्य थे, समकालीन थे। उनकी अनन्य गुरुनिष्ठा थी। स्वामीजीके वे विशेष कृपापात्र थे।

विट्ठलविपुलदेव हरिदासजीके ममेरे भाई थे। उनसे अवस्थामें कई वर्ष बड़े थे। वे कभी-कभी हरिदासजीके साथ उनकी बाल्यावस्थाके समय भगवल्लीलानुकरणमें सम्मिलित हो जाया करते थे, उनके संस्कार पहलेसे ही पवित्र और शुद्ध थे। तीस वर्षकी अवस्थामें विट्ठलविपुलदेव वृन्दावन गये, उन्हें कुंज-कुंजमें भगवान् श्रीकृष्णकी लीलामाधुरीकी सरस अनुभूति होने लगी। साथ-ही-साथ स्वामी हरिदासके सम्पर्क और सत्संगका भी उनपर विशेष प्रभाव पड़ा। अपने गुरु आशुधीरजी महाराजकी आज्ञासे हरिदासजीने उन्हें दीक्षित कर लिया। वे उनकी कृपासे वृन्दावनके मुख्य रसिकोंमें गिने जाने लगे। वे परमोत्कृष्ट त्यागी और सुदृढ़ रसोपासक थे।

दीक्षित होनेके बाद उन्होंने वृन्दावनको ही अपना स्थायी निवासस्थान चुना। सं० १६३१ में स्वामी हरिदासके नित्यधाम पधारनेपर सन्तों और महन्तोंने उन्हें उनकी गद्दी सौंपी, बड़े आग्रह और अनुनय-विनयके बाद उन्होंने उत्तराधिकारी होना स्वीकार किया। गुरुविरहके दुःखसे कातर होकर उन्होंने आँखोंमें पट्टी बाँध ली थी। जिन नेत्रोंने रसिकराजेश्वर हरिदासके दिव्य अंगोंका माधुर्य-पान किया था, उनसे संसारका दर्शन करना उनके लिये सर्वथा असह्य था।

वे बड़े भावुक और सहृदय थे। एक बार वृन्दावनकी सन्त-मण्डलीने रासलीलाका आयोजन किया। सर्वसम्मतिसे महात्मा विट्ठलविपुलदेवको बुलानेका निश्चय किया गया। रसिकप्रवर व्यासजीके विशेष आग्रहपर वे रास-दर्शनके लिये उपस्थित हुए। उनके नेत्रोंसे अश्रुओंकी धारा बह रही थी, शरीर वशमें नहीं था, रास आरम्भ हुआ। प्रिया-प्रियतमकी अद्भुत पदनूपुरध्वनिपर उनका मन नाच उठा। दिव्य-दर्शनके लिये उनके हृदयमें तीव्र लालसा जाग उठी। विलम्ब असह्य हो गया। भगवान्‌से भक्तकी विरह-पीड़ा न सही गयी। उनकी आह्लादिनी शक्ति रसमयी रासस्थित श्रीरासेश्वरीने कहा—'मेरे दर्शन करो! मैं राधा हूँ।' नित्यकेलिके साहचर्य-रसके स्मरणमात्रने भावावेशमें उन्हें दर्शनके लिये विवश किया। उन्होंने पट्टी हटा दी। नेत्रोंने रासरसिक-शेखर नन्दनन्दन और राधारानीका रूप देखा। वे खुले तो खुले ही रह गये, पट्टी अपने स्थानपर पड़ी रह गयी। विट्ठलविपुलदेवने रासस्थ भगवान् और उनकी भगवत्ता-स्वरूपा साक्षात् राधारानीके दर्शन किये। उनके अधरोंपर स्फुरण था—'हे रासेश्वरी! तुम करुणा करके मुझे अपनी नित्यलीलामें स्थान दो। अब मेरे प्राण संसारमें नहीं रहना चाहते हैं।' बस वे नित्यलीलामें सदाके लिये सम्मिलित हो गये। उनकी रसोपासनाने पूर्ण सिद्धि अपनायी। वे भगवान्‌के रासरसके सच्चे अधिकारी थे, रसिक सन्त और विरक्त महात्मा थे। भगवान्‌ने उन्हें अपना लिया, कितना बड़ा सौभाग्य था उनका!

श्रीप्रियादासजीने विट्ठलविपुलदेवजीके नित्यलीलाप्रवेशकी घटनाका वर्णन इस प्रकार किया है—

स्वामी हरिदास जू के दास दास बीठल हैं गुरुसे वियोग दाह उपज्यो अपार है।
रासके समाजमें विराज सब भक्तराज बोलिकै पठाये आये आज्ञा बड़ो भार है॥
युगल सरूप अवलोकि नाना नृत्य भेद गान तान कान सुनि रही न सँभार है।
मिलि गये वाही ठौर पायौ भावतन और कहे रससागर जो ताको यों विचार है॥ ३७७॥

श्रीजगन्नाथ थानेश्वरीजी

श्रीजगन्नाथ थानेश्वरीजी महाराज श्रीगौरांग महाप्रभुके शिष्य थे। आप बड़े ही सन्तसेवी महात्मा थे और सन्तोंको भगवान्‌का ही प्रतिरूप मानते थे। एक बार आपके मनमें श्रीजगन्नाथपुरी जाकर महाप्रभु श्रीजगन्नाथजीके दर्शनकी अभिलाषा हुई, परंतु फिर मनमें आया कि मेरे घरपर न रहनेसे सन्तोंका ठीकसे सत्कार न हो पायेगा; अतः सन्तसेवा छोड़कर भगवान्‌का दर्शन करने जाना उचित नहीं। भगवान्‌का दर्शन करनेसे मेरा व्यक्तिगत कल्याण तो होगा, परंतु यहाँ सन्तोंको कष्ट होगा—ऐसा सोचकर आपने पुरी जानेका कार्यक्रम स्थगित कर दिया। तब आपके एक शिष्यने सलाह दी—'महाराज! आप तीन दिनके लिये श्रीजगन्नाथपुरीकी यात्रापर चलिये, उतने दिनतक अन्य लोग यहाँ काम सँभाले रहेंगे।' शिष्यकी बात आपको ठीक लगी और आपने पुनः चलनेका मन बना लिया। भगवान् जगन्नाथजीने आपका अपने प्रति प्रगाढ़ प्रेम और सन्तोंके प्रति अनन्य निष्ठा एवं सेवा-भावना देखी तो गद्‌गद हो गये तथा लगातार तीन दिनोंतक उन्होंने घरपर ही आपको दर्शन दिया। सन्तसेवाके इस तरहके प्रताप और भगवत्कृपाको देखकर आपने पुनः यात्रा स्थगित कर दी और सन्तसेवामें ही लगे रहे।

श्रीप्रियादासजी श्रीथानेश्वरीजीपर श्रीजगन्नाथस्वामीकी कृपाका वर्णन इस प्रकार करते हैं—

महाप्रभु पारषद थानेश्वरी जगन्नाथ नाथकौ प्रकाश घर दिना तीन देख्यो है।
भए शिष्य जान आप नाम कृष्णदास धर्‌यौ, कृष्णजू कहत सबै आदर विसेख्यो है॥
सेवा 'मनमोहनजू' कूपमें जनाइ दई, बाहर निकासि करी लाड़ उर लेख्यो है।
सुत रघुनाथजूकों स्वप्नमें श्लोकदान दयाके निधान पुत्र दियो प्रेम पेख्यो है॥ ३७८॥

श्रीभगवान्‌ने गीतामें कहा है कि जो मुझे जिस भावसे भजता है, मैं भी उसका उसी भावसे भजन करता हूँ। महाभारतमें एक उदाहरण आता है कि भीष्म पितामह शरशय्यापर पड़े हुए भगवान् श्रीकृष्णका ध्यान करते थे और इधर भगवान् श्रीकृष्ण भी ध्यानावस्थामें अपने भक्त भीष्मका ध्यान करते थे। भगवान्‌का वैसा ही भाव श्रीजगन्नाथ थानेश्वरीजीके प्रति भी था। एक बार श्रीथानेश्वरीजी महाराजने अपने आराध्य श्रीठाकुर मनमोहनजीका वसन्त शृंगार किया, उस समय प्रभुकी अद्भुत सौन्दर्यमयी छविका अवलोकनकर आप भाव-विभोर हो गये और आपकी ध्यान-समाधि लग गयी। उस अवस्थामें भी आप प्रभुकी उसी मनमोहनी छविका दर्शन कर रहे थे। आपकी इस तन्मयताको देखकर भगवान् भी मुग्ध हो गये और आपकी भावदशाका दर्शन करनेमें तन्मय हो गये। उस समय भगवान् कीट-भृंग न्यायसे थानेश्वरीजीका दर्शन करते हुए थानेश्वरीजीके ही स्वरूप हो गये। यहाँतक कि उसी समय थानेश्वरीजीका एक शिष्य उनका दर्शन करने आया तो उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि गुरुदेव ही आज भगवद्विग्रहके स्थानपर विराजमान हैं, वस्तुतः भगवान्‌की तन्मयताके कारण उनके विग्रहका स्वरूप थानेश्वरीजीका ही स्वरूप हो गया था। धन्य हैं ऐसे भक्त और धन्य है भगवान्‌की भक्तवत्सलता!

श्रीलोकनाथजी

बंगालके जैसोर जिलेमें तालखड़ी नामका एक छोटा-सा मामूली गाँव है। लगभग पाँच सौ वर्ष पूर्व

इस गाँवमें एक बहुत ही सम्भ्रान्त कुलके पद्मनाभ चक्रवर्ती नामक ब्राह्मण रहते थे। इनकी पत्नीका नाम था सीतादेवी। इस धर्मप्राण ब्राह्मण-दम्पतीका एकमात्र पुत्र था लोकनाथ। घरमें वैष्णव-उपासना परम्परासे चली आ रही थी। स्वयं पद्मनाभ चक्रवर्ती श्रीअद्वैतप्रभुके शिष्य थे और सदा उन्हींकी सेवा-शुश्रूषामें लगे रहते थे। इन सब कारणोंसे लोकनाथको बहुत ही दिव्य संस्कार प्राप्त हुए।

प्रेमावतार महाप्रभु श्रीचैतन्यदेवका नाम और यश बंगालके कोने-कोनेमें शुक्ल पक्षके चन्द्रमाकी तरह बढ़ रहा था। लोकनाथके कानोंतक भी यह बात पहुँची और वे उनके दर्शनोंके लिये तड़फड़ाने लगे। उनका मन किसी भी वस्तुमें नहीं लगता। माता-पिताको भय था कि महाप्रभुके संगमें पड़ जानेपर यह लड़का बेहाथ हो जायगा, अतः उन्होंने बहुत प्रयत्न किया कि वह घरमें ही रहे, किंतु लोकनाथ नहीं रुके एवं एक दिन रात्रिमें चुपचाप चल पड़े।

रातभर लोकनाथ चलते रहे। दूसरे दिन सन्ध्यासमय वे नवद्वीप पहुँचे। नवद्वीप पहुँचनेपर देखा कि महाप्रभु एक उच्च आसनपर विराजमान हैं और श्रीवासादि भक्तोंकी टोली उन्हें चारों ओरसे घेरे हुए है। लोकनाथकी वाणी मूक थी। दृष्टि गड़ी सो गड़ ही गयी। एकटक महाप्रभुकी ओर देखते ही रह गये। आँगनमें प्रतिमाकी तरह खड़े इस सुकुमार बालकपर महाप्रभुकी दृष्टि गयी। वे दौड़े—दोनों बाँहें फैलाये और लोकनाथको उन्होंने अपनी भुजाओंके पाशमें बाँध लिया। भावावेशसे वे प्रभुके वक्षःस्थलपर मूर्छित हो गये। लोकनाथको कुछ पता नहीं। चेतना आनेपर लोकनाथ अब पहलेके लोकनाथ नहीं रहे। उनके रोम-रोमसे कृष्ण-कृष्णकी मधुर ध्वनि आ रही थी। उनका अंग-अंग हरि-हरि पुकार रहा था। प्राण-प्राणसे प्रभुकी प्रीति छलक रही थी।

लगातार पाँच दिनोंतक वे इस अपूर्व पागलपनमें रहे। छठे दिन महाप्रभुने लोकनाथको वृन्दावन जानेका आदेश दिया। वे कहने लगे—'भाई! वृक्षोंके नीचे जहाँ स्थान पाओ, वहीं पड़ रहो। आसपाससे मधुकरी माँग लाओ और ओढ़नेके लिये चिथड़ोंकी गुदड़ी बना लो। श्रीयमुनाजीका जल भरपेट पीओ। सम्मानको कराल विष समझो एवं नीचोंके द्वारा अपमानको अमृत। श्रीराधा-माधवका भजन करो। किंतु मित्र! वृन्दावनको मत छोड़ना।'

महाप्रभुकी आज्ञाको लोकनाथ टाल नहीं सके और रोते-रोते उनसे विदा हुए। इनके साथ गदाधर पण्डितके शिष्य भूगर्भ भी तैयार हो गये।

श्रीलोकनाथजी श्रीमहाप्रभु कृष्णचैतन्यजीके एक पार्षद थे, इनकी श्रीराधाकृष्णके प्रति अहर्निश एकरस प्रीति थी। रसरूप श्रीमद्भागवत-महापुराणका गान, कीर्तन, पारायण इनको प्राणके समान प्रिय था। ये इसमें अत्यन्त सुख मानते थे और कहा करते थे कि जो कोई भी श्रीमद्भागवतका गान करते हैं, वे मेरे मित्र हैं। इस रसभावनामें प्रवीण श्रीलोकनाथजी एक बार मार्गमें जाते हुए एक महानुभावको श्रीमद्भागवतका पाठ करते हुए देखकर उनके चरणोंपर पड़ गये।

श्रीप्रियादासजीने श्रीलोकनाथजीके इस भागवत-प्रेमका इस प्रकार वर्णन किया है—

महाप्रभु कृष्ण चैतन्यजूके पारषद लोकनाथ नाम अभिराम सब रीति है।
राधाकृष्ण लीला सौं रंगीनमें नवीन मन जैसे जल मीन तैसें निसि दिन प्रीति है॥
भागवत गान रसखान सो तौ प्राण तुल्य अति सुख मान कहैं गावैं जोइ मीति है।
रसिक प्रवीन मग चलत चरण लागि कृपा कै जनाय दई जैसी नेह नीति है॥ ३७९॥

वृन्दावनकी दशा उन दिनों विचित्र थी। घने जंगलों एवं भूमिशायी अस्त-व्यस्त खँडहरोंके सिवा वहाँ

कुछ भी नहीं था। वृन्दावनके निवासी भी उस पावन भूमिके महत्त्वको भुला बैठे थे। उन्हें वहाँ न तो चीरघाट मिला न वंशीवट; न निधिवन, भाण्डीर-वन, न श्याम और राधाकुण्ड ही। क्या करें, कहाँ जायँ, पता लगायें तो कैसे? अन्ततोगत्वा निराश हो सर्वतोभावसे वे श्रीराधारानीकी शरण होकर ***'गोविन्द-गोविन्द हरे मुरारे, राधाकृष्ण, गोपीकृष्ण, श्रीकृष्ण प्यारे'*** का कीर्तन करने लगे। सहसा एक दिन उन्हें चीरघाटका पता लग गया। ये वहाँ अत्यन्त प्रेमावेशका जीवन बिताने लगे। लोगोंमें इनकी प्रसिद्धि भी हुई, लोगोंने इनके लिये कुटिया भी बनानी चाही। परंतु इनके लिये तो निश्चय किया हुआ था कि रहना किसी पेड़के नीचे ही। यदृच्छासे जो कुछ मिल जाता, उसीसे पेटभर यमुनाका जल पीकर मस्त रहते।

कुछ दिनों पश्चात् लोकनाथने महाप्रभुके संन्यासकी बात सुनी। साथमें यह भी सुना कि वे दक्षिण भारतमें तीर्थयात्राके लिये गये हैं। ये अत्यन्त उत्कण्ठावश इनसे मिलने दक्षिण भारत पहुँचे तो वहाँ पता चला कि वे वृन्दावनके लिये चल पड़े। ये वृन्दावन पहुँचे तो पुनः पता चला कि वे वृन्दावनसे पुरीके लिये चल पड़े। लोकनाथका हृदय बैठ गया। परंतु स्वप्नमें श्रीमहाप्रभुने इन्हें समझाया कि 'तुम निराश मत होओ, मैं अब राहका भिखारी हूँ। तुम मुझे इस वेषमें देखकर बहुत दुःख पाते, इसीलिये मैं तुमसे नहीं मिला।'

अब लोकनाथ और भूगर्भने चीरघाटपर अपना डेरा जमा लिया और अन्तकालतक वे वहीं बने रहे। रात-दिन कृष्ण-कृष्णकी रट लगाये रहते और रातको बस एक-दो घण्टे सो लेते। न कभी किसीसे मिलते न बात करते। लोकनाथने अपने शेष जीवनके दिन वृन्दावनमें भगवान्‌के भजनका आश्रय लेकर एक आदर्श प्रेमी एवं आदर्श विरहीके रूपमें व्यतीत किये।

'श्रीचैतन्य-चरितामृत'के रचयिता श्रीकृष्णदास कविराज अपने ग्रन्थके प्रणयनके पूर्व लोकनाथ गोस्वामीके चरणोंमें आशीर्वाद लेने आये। लोकनाथने उसके लिये सहर्ष हाँ भरी, परंतु अपनी एक शर्त रखी—वह यह कि इस ग्रन्थमें उनकी कहीं भी न तो चर्चा आये, न उनसे महाप्रभुके सम्बन्धकी ही बात लिखी जाय।

इतनी मूक और निरीह उपासना थी लोकनाथगोस्वामीकी!

श्रीमधुगोस्वामीजी

मधुगोस्वामीका जन्म बंगदेशमें हुआ था। बचपनमें भी खेल खेलते समय उन्हें भगवान्‌की लीलाका सरस स्मरण हो जाया करता था। उनके नयन श्यामसुन्दरकी अभिराम और मोहिनी झाँकी देखनेके लिये विकल हो उठते थे। यौवनके प्रथम कक्षमें चरण रखते ही भगवान् और उनके व्रजका विरह वे बहुत दिनोंतक नहीं सह सके। वृन्दावनके लिये चल पड़े। मधुगोस्वामी वृन्दावन पहुँच गये। यहाँ आनेपर इनके मनमें यह चाह बढ़ी कि इन नेत्रोंसे श्रीश्यामसुन्दरके त्रिभुवनमोहनस्वरूपको देखना चाहिये तथा यह देखना चाहिये कि भगवान्‌का वह अचिन्त्यानन्त सौन्दर्यस्वरूप कैसा है? इसी लालसासे ये श्रीवृन्दावनके वन-वन, वृक्ष-लता-कुंजोंमें भगवान्‌को ढूँढ़ते-फिरते। दर्शनकी चटपटीमें इनकी भूख-प्यास मिट गयी। ऐसे बेसुध हुए कि इन्हें छाया-धूपका भी किंचित् भान नहीं रहा। इन्होंने श्यामवर्णवाली कालिन्दीके जलमें खड़े होकर नियम लिया कि 'जबतक वंशीवट-तटपर नित्य रास करनेवाले प्राणदेवता मदनमोहन दर्शन नहीं देंगे, तबतक अन्न-जल कुछ भी नहीं ग्रहण करूँगा।' वृन्दावनके कुंज झूम उठे, उनमें मस्ती छा गयी। नागरिकों, सन्तों और भक्तोंने मस्तकपर उनकी चरण-धूलि चढ़ायी। विहारीजीका सिंहासन हिल उठा, वंशीवटकी पवित्र रेतीमें राधारमणने मधुगोस्वामीको दर्शन दिये। सामने श्यामसुन्दर खड़े हैं। मयूरपिच्छका मुकुट लोक-लोकान्तरका वैभव समेटकर उनके पीताम्बरपर जो ऐश्वर्य बिखेर रहा था, ब्रह्माकी लेखनी उसकी कल्पना भी नहीं कर

पाती। उनके श्याम-अंगका प्रतिबिम्ब यमुनाने अपने अंकमें भर लिया। समीर मन्द-मन्द गतिसे प्रवाहित होकर सलोनी और कोमल लताओंकी नमनशीलतासे उनके चरण-स्पर्श करने लगा। प्रभु वंशी बजा रहे हैं। मधु गोस्वामी निहाल हो गये, भक्तने अपनेको उनके सुरमुनिदुर्लभ पदपंकजपर निछावर कर दिया। व्रज मधु गोस्वामीकी जयध्वनिसे धन्य हो उठा।

एक बार ये वंशीवटके निकट श्रीयमुनातटपर (पीठ देकर) बैठे हुए थे। उस समय श्रीयमुनाजीमें बाढ़ आयी हुई थी, वे ऊपर चढ़ रही थीं। उनका तीव्रवेग बड़े वेगसे करारोंको काट-काटकर गिरा रहा था। उस समय इन्हें श्रीवंशीवटके समीप अनूप रूपसिन्धु श्रीठाकुरजीके दर्शन हुए। इन्होंने दौड़कर श्रीठाकुरजीको गोदमें भर लिया। आज भी वे शिरमौर श्रीठाकुरजी श्रीगोपीनाथजीके रूपमें जयपुरमें विराजमान हैं। बड़भागी जन आज भी उनका दर्शनकर कृतार्थ होते हैं।

श्रीप्रियादासजीने श्रीमधुगोस्वामीजीके वृन्दावन-प्रेमका इस प्रकार वर्णन किया है—

श्रीमधुगोसाईं आये वृन्दावन चाह बढ़ी देखैं इन नैननिसों कैसोधौं सरूप है।
ढूँढ़त फिरत बन बन कुंज लता द्रुम मिटी भूख प्यास नहीं जानै छाँह धूप है॥
जमुना चढ़त काट करत करारे जहाँ बंसीबट तट डीठ परो सो अनूप है।
अंक भरि लिये दौर अजहूँ लौं सिरमौर चाहै भाग भाल साथ गोपीनाथ रूप है॥ ३८०॥

श्रीकृष्णदास ब्रह्मचारीजी

श्रीकृष्णदास ब्रह्मचारीजी श्रीसनातनगोस्वामीपादजीके शिष्य थे। श्रीसनातनगोस्वामीजीने ठाकुर श्रीमदनमोहनजीको नवनिर्मित मन्दिरमें पधराकर उनकी सेवाका भार इन्हींको सौंप दिया और कहा कि भली प्रकारसे श्रीठाकुरजीकी सेवा करना। श्रीकृष्णदासजी ब्रह्मचारी भी गुरुकी आज्ञा शिरोधार्यकर बड़ी कुशलतापूर्वक श्रीठाकुरजीकी सेवा करते। आगे चलकर यही अधिकारी श्रीकृष्णदास ब्रह्मचारीके नामसे प्रसिद्ध हुए। आपने श्रीनारायणभट्टजीकी भक्तिपर रीझकर उनको अपना शिष्य बनाया। आप जब श्रीठाकुरजीका परम सुन्दर शृंगार करके स्वयं छबिका दर्शन करते तो शरीरकी सुधि-बुधि भूल जाती। आपकी बुद्धि भावसागरमें डूब जाती। आप अत्यन्त भावसे श्रीठाकुरजीको उत्तम राग-भोग अर्पण करते। इनके सेवित ठाकुर श्रीमदनमोहनजी वर्तमानमें करौली राजस्थानमें विराजमान हैं।

श्रीप्रियादासजीने श्रीकृष्णदास ब्रह्मचारीजीके भक्ति-भावका इस प्रकार वर्णन किया है—

गुसाईं श्रीसनातनजू मदनमोहन रूप, माथे पधराये कही सेवा नीके कीजियै।
जानौ कृष्णदास ब्रह्मचारी अधिकारी भये, भट्ट श्रीनारायणजू शिष्य किये रीझियै॥
करिकै सिंगार चारु आप ही निहारि रहै, गहे नहीं चेत भाव माँझ मति भीजियै।
कहाँ लौं बखान करौं राग भोग रीति भाँति, अब लौ विराजमान देखि देखि जीजियै॥ ३८१॥

श्रीकृष्णदास पण्डित

पण्डित श्रीकृष्णदासजी महाराज बड़े ही सन्तसेवी महात्मा थे, आप ठाकुर श्रीगोविन्दचन्द्रजीको अपना आराध्य और उपास्य मानते थे। साथ ही भगवद्भक्तोंमें भी आपकी बड़ी प्रीति थी।

श्रीप्रियादासजीने इनके इस भगवत्सेवानुरागका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

श्रीगोविन्दचन्द रूपरासि रसरासि दास, कृष्णदास पण्डित ये दूसरे यों जानिलै।
सेवा अनुराग अङ्ग अङ्ग मति पागि रही पाग रही मति जो पै तो पै यह मानिलै॥
प्रीति हरिदासनसों विविध प्रसाद देत हिये लाय लेत देखि पद्धति प्रमानिलै।
सहजकी रीतिमें प्रतीतसों बिनीत करै ढरैं वाही ओर मन अनुभव आनिलै॥ ३८२॥

आप श्रीठाकुरजीको श्लोक सुनानेकी सेवा करते थे, इसके लिये आप नित्य प्रति सौ नवीन श्लोकोंकी रचना करते और उन्हें प्रभुको सुनाते थे। एक दिन जब आप श्रीठाकुरजीको श्लोक सुना रहे थे, उसी समय कोई सन्त आपसे मिलने आ गये। आप सन्तसेवाको गरीयसी मानकर भगवान्‌को श्लोक सुनाना छोड़ उनसे मिलने चले गये। वार्तालापके क्रममें देर होने लगी, इधर भगवान्‌का भी धैर्य जवाब दे गया, उन्होंने आपको सचेत करनेके लिये भीतरसे एक थाल बाहर फेंका। थालकी झनझनाहटसे आपका वार्तालापका क्रम टूटा और आप पुनः श्रीठाकुरजीको श्लोक सुनाने गये तो वे उलाहना देते हुए बोले—'पण्डितजी! आप तो मेरी उपेक्षा करके दूसरोंसे मिलने चल देते हैं।' आपने कहा—'प्रभो! आपकी उपेक्षा तो की जा सकती है, क्या किसी सन्तकी उपेक्षा आपको सह्य होगी?' ठाकुरजी इनकी सन्तनिष्ठा देखकर बहुत प्रसन्न हुए और बोले—'अच्छा, पण्डितजी! अब श्लोक सुनाओ।' आप भी प्रभुकी श्रवणोत्कण्ठा विचारकर गद्‌गद हो गये और प्रतिदिन सौ श्लोक सुनानेका नियम दृढ़ कर लिया।

श्रीभूगर्भगोसाईंजी

श्रीभूगर्भगोसाईंजी श्रीचैतन्य महाप्रभुजीके कृपापात्र शिष्य श्रीगदाधर पण्डितजीके शिष्य थे। आप श्रीलोकनाथ गोस्वामीजीके साथ वृन्दावन आये थे और फिर वृन्दावनमें ही रह गये, वृन्दावनसे बाहर कहीं नहीं गये। ये संसारसे परम विरक्त एवं भगवान्‌की रूपमाधुरीमें अत्यन्त अनुरक्त थे। रसिक भक्तजनोंके साथ मिलकर आप उसी रूपमाधुरीका आस्वादन करते रहते। भगवान्‌का मानसी चिन्तन, मानसी अर्चन-वन्दन ही आपके जीवनका आधार था। भगवान्‌की मानसी मूर्तिको निरन्तर निहारा करते थे। आपके मनकी वृत्ति सदा उसी युगलस्वरूपके चिन्तनमें लगी रहती थी।

श्रीप्रियादासजीने श्रीभूगर्भगोसाईंजीकी युगलसरकारकी इस भक्तिका इस प्रकार वर्णन किया है—

गुसाईं भूगर्भ वृन्दावन दृढ़ बास कियो लियो सुख बैठि कुंज गोविन्द अनूप हैं।
बड़ेई विरक्त अनुरक्त रूप माधुरी में ताही कौ सवाद लेत मिले भक्तभूप हैं॥
मानसी विचार ही अहार सो निहारि रहैं गहैं मन वृत्ति वेई युगल सरूप हैं।
बुद्धिके प्रमान उनमानि मैं बखान कर्‌यौ भर्‌यौ बहु रंग जाहि जानैं रसरूप हैं॥ ३८३॥

श्रीगोवर्धनजी महाराजकी नित्यप्रति परिक्रमा करना आपकी दैनिकचर्याका अंग था। एक दिन आप प्रेममें बेसुध हुए परिक्रमा कर रहे थे कि एक शिलासे आपका पैर टकरा गया। ठोकर जोरकी लगी थी, अतः 'हा कृष्ण' कहकर बैठ गये। पैरसे रक्तकी धारा बहने लगी थी, पीड़ा अधिक होनेसे चलना दूभर हो गया था। आपको अपने शारीरिक कष्टसे अधिक इस बातकी मानसिक पीड़ा थी कि श्रीगोवर्धन महाराजकी परिक्रमा तो हो नहीं सकी, अब कुटीतक नहीं पहुँच सकूँगा तो वहाँ प्रतिष्ठित श्रीठाकुरजीकी भी सेवा-पूजा नहीं हो सकेगी। किसी प्रकार 'हा कृष्ण-हा कृष्ण' करते दिन कटा, शाम होनेको आयी, अब आपको और क्लेश होने लगा कि ठाकुरजीकी सायं पूजा-आरती कैसे होगी? भक्तवत्सल भगवान्‌से अपने भक्तका कष्ट न देखा गया, वे एक बलिष्ठ शरीरवाले साधुके रूपमें आपके पास आये और आपके मना करनेके बावजूद आपको कन्धेपर बिठाकर कुटीतक छोड़ गये। जब आपने उन्हें धन्यवाद देना चाहा तो वे अन्तर्धान हो चुके थे। अब आपको यह समझनेमें देर न लगी कि मेरे आराध्य श्रीठाकुरजी ही साधुके वेशमें मुझे कन्धेपर बैठाकर यहाँतक लाये थे। अब तो आपके दुःखका पारावार न रहा। आप यह सोच-सोचकर रोने लगे कि मुझसे तो श्रीठाकुरजीकी सेवा हो न सकी, उल्टे मैंने ही उनसे सेवा करा ली। उनकी इस व्याकुलताको देखकर श्रीठाकुरजीने उनसे स्वप्नमें कहा—'गुसाईंजी! भक्तोंका दुःख मुझसे देखा नहीं

जाता। जबतक मैं उनका दुःख दूरकर उन्हें सुखी नहीं कर देता, तबतक मेरे मनको विश्राम नहीं मिलता, अतः आप व्यर्थ संकुचित न हों।' भगवान्‌की इस प्रकारकी अमृतमयी वाणी सुनकर और उनकी भक्तवत्सलता देखकर आप गद्‌गद हो उठे। ऐसे भगवत्कृपापात्र थे श्रीभूगर्भगोसाईंजी!

श्रीहृषीकेश देवाचार्यजी

श्रीहृषीकेश देवाचार्यजी महाराज श्रीनिम्बार्कसम्प्रदायानुयायी वैष्णव सन्त थे। आप श्रीहरिव्यास देवाचार्यजी महाराजके द्वादश प्रधान शिष्योंमेंसे एक थे। श्रीवृन्दावनधाम आपकी साधना-स्थली थी। आप श्रीप्रिया-प्रियतमजीकी मानसीसेवा करते थे और सदा उनके ही ध्यानमें मग्न रहते थे।

अपनी मानसी सेवामें प्रिया-प्रियतमके स्वरूपका वर्णन करते हुए श्रीहृषीकेश देवाचार्यजी कहते हैं—

मन मन्दिर में राधा मोहन।
नित्य किसोर किसोरी दोऊ करत विहार निरन्तर निसि दिन।
दिव्य धाम व्रज मण्डल सगरौ झगरौ नहिं पैठत तहँ नैकुन।
ता मधि राजत परम मनोहर सूक्षिम ते सूक्षिम वृन्दावन।
नव निकुंज नव लता भवन में अष्ट कमल दल मृदुल सिंहासन।
प्रमुदित राजत जुगल चन्द तहँ सेवत ललितादिक ललना गन।
सेवा सौंज सँवारि लिये कर अरपित करि निज निज तन मन धन।
हृषीकेश निरखत अति हरषत निवछावर बलि जाऊँ छिनहि छिन॥

श्रीरंगजी

श्रीरंगजी महाराज सिद्ध वैष्णव सन्त थे, आपकी सन्तसेवामें बड़ी निष्ठा थी। आपके यहाँ प्रायः सन्तोंका सत्संग चलता ही रहता। एक बार आपने सन्तोंका एक विशाल भण्डारा किया। सन्तोंकी पंक्ति प्रसाद पाने बैठ गयी और प्रसाद परोसा जाने लगा; इतनेमें जितने सन्त प्रसाद पाने बैठे थे, उसके दूने और आ गये। परोसनेवाले, रसोइया आदि घबरा गये कि इतने लोगोंको खिलानेभरका सामान तो है नहीं, फिर व्यवस्था कहाँसे होगी? एक सन्त महोदयने रंगजी महाराजको सलाह दी कि जितने सन्त निमन्त्रित हैं, उन्हें तो पूरा पवाया जाय और जो अभी-अभी बिना निमन्त्रणके ही आ गये हैं, उनमें थोड़ा-थोड़ा प्रसाद सबको वितरित करा दिया जाय। श्रीरंगजी महाराजने कहा—'आप लोग धैर्य रखिये, भगवत्कृपासे किंचिन्मात्र भी कमी नहीं होगी; आप लोग सबको बैठाकर पवाइये।' रसोइयेने आपकी आज्ञाके अनुसार सबको बैठाकर प्रसाद वितरण किया, आश्चर्य! उतना ही प्रसाद आये हुए समस्त सन्तजनोंकी पूर्णताके लिये पर्याप्त था। होता भी क्यों न! जिन प्रभुने द्रौपदीकी बटलोईके एक सागके पत्तेसे समस्त ब्रह्माण्डको तृप्त कर दिया था, उसके भक्तकी प्रतिष्ठा भला कैसे जा सकती थी!

श्रीघमण्डीजी

श्रीयुगलकिशोर श्यामाश्यामके अनन्य भक्त परम वैष्णव सन्त श्रीघमण्डीजी महाराजका जन्म राजस्थानके जयपुर राज्यान्तर्गत टोड़ाभीमके सन्निकट दूबरदू नामक ग्राममें हुआ था। छोटी अवस्थामें ही आपने निम्बार्क-सम्प्रदायके आचार्य श्रीहरिव्यासदेवजीसे शिक्षा-दीक्षा प्राप्त कर ली और भगवद्भजनमें लग गये। श्रीगुरुदेवजीने आपका नाम श्रीउद्धवदेवजी रखा। आप अपने परमाराध्य श्रीयुगलकिशोरजीपर गर्व करते थे और पाखण्डियों तथा भगवद्विमुखोंको कुछ भी नहीं गिनते थे, अतः वे लोग आपको घमण्डीजी कहने लगे और सन्त-समाजमें आपकी 'श्रीउद्धवघमण्डदेवाचार्यजी' के नामसे प्रतिष्ठा हो गयी। आपके जीवनका

अधिकांश समय व्रजमें ही बीता, वहीं करहला ग्राममें रहते हुए आप श्रीराधामाधवजीकी भक्तिपूर्ण सेवा किया करते थे। कहते हैं कि आपकी भक्तिसे प्रसन्न होकर श्रीप्रियाप्रियतम युगलकिशोरने आपको दर्शन दिये साथ ही श्रीठाकुरजीने अपना मुकुट और श्रीराधाजीने अपनी चन्द्रिका भी इन्हें दी। श्रीराधाजीने आपसे कहा कि व्रजवासी ब्राह्मण बालकोंको मेरा और मेरी सखियोंका प्रतिरूप बनाकर रासलीलाका अनुकरण कराओ। तबसे लेकर आजतक उस ग्राममें और व्रजके अन्य क्षेत्रोंमें भी रासलीलानुकरणकी परम्परा चली आ रही है। करहला ग्राममें श्रीठाकुरजीके मुकुट और श्रीराधाजीकी चन्द्रिकाके आज भी दर्शन होते हैं, जो श्रीघमण्डीजी महाराजपर उनके आराध्यदेवकी कृपाके साक्षात् प्रतीक हैं।

श्रीरसिकमुरारिजी

तन मन धन परिवार सहित सेवत संतन कहँ।
दिब्य भोग आरती अधिक हरि हू ते हिय महँ॥
श्रीबृंदाबनचंद स्याम स्यामा रँग भीने।
मगन प्रेम पीयूष पयधि परचै बहु दीने॥
(श्री) हरिप्रिय स्यामानंद बर भजन भूमि उद्धार कियो।
(श्री) रसिक मुरारि उदार अति मत्त गजहि उपदेस दियो॥ ९५॥

श्रीरसिकमुरारिजी परमोदार सन्त थे। इन्होंने मतवाले हाथीको भी श्रीकृष्णनामका उपदेश दिया। ये (शिष्य परिकर एवं) सपरिवार तन, मन, धनसे सन्तोंकी सेवा करते थे। सन्तोंको दिव्य भोग अर्पित करते, विधिपूर्वक पूजा-आरती करते। कहाँतक कहा जाय, ये अपने हृदयमें श्रीहरिसे भी अधिक श्रीहरिभक्तोंको मानते थे। श्रीवृन्दावनचन्द श्रीश्यामा-श्यामके प्रेमरंगमें रँगे रहते थे तथा सर्वदा प्रेमामृतसिन्धुमें डूबे रहते थे। इन्होंने बहुत-से चमत्कार दिखाये हैं। श्रीभगवान्‌के परम प्यारे, श्रीसद्‌गुरुदेववर्य श्रीश्यामानन्दजीकी सन्तसेवाकी साधनभूत भूमिको यवन नवाबके चंगुलसे मुक्तकर आपने अपनी अद्भुत भक्ति-शक्तिका परिचय दिया॥ ९५॥

श्रीरसिकमुरारिजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीरसिकमुरारिजीका जन्म उड़ीसा मल्लभूमिमें रोहिणीनगरमें शक सं० १५१२ में कार्तिक शुक्ल प्रतिपदाको प्रातःकालकी मंगल वेलामें हुआ था। आपके पिता श्रीअच्युतपटनायक जमींदार होते हुए भी बड़े भगवद्भक्त थे तथा माता भवानीदेवी पतिव्रता सद्‌गृहिणी थीं। आपका नामकरण करते समय पण्डितोंने ज्योतिष-गणनाके आधारपर आपका नाम 'रसिक' रखा और महापुरुषके लक्षण बताये, परंतु आपके पिताजी आपका नाम 'मुरारि' रखना चाहते थे; अतः दोनों नाम मिलाकर आपका नाम 'रसिकमुरारि' रखा गया। अन्नप्राशनके अवसरपर प्रवृत्ति-परीक्षण हेतु रखे गये द्रव्योंपर जब हाथ रखना हुआ तो आपने ग्रन्थरत्न श्रीमद्भागवतपर अपना हाथ रखा। उसी समय उपस्थित जनों और कुटुम्बियोंको यह दृढ़ निश्चय हो गया कि यह बालक परम भागवत और महान् भगवद्भक्त होगा। बाल्यकालसे ही आपका सन्तोंके प्रति सहज आकर्षण था। उनकी 'जय जगदीश' की ध्वनि सुनते ही आप-अपने नन्हें-नन्हें हाथोंमें जो कुछ मिलता भरकर लाते और भिक्षा देते। बड़े होनेपर भी अध्ययनकालमें आप पढ़ाईके साथ-साथ बच्चोंको लेकर नगर-कीर्तन करते। एक बार आपके यहाँ श्रीमद्भागवतका सप्ताह पाठ चल रहा था, जब उसमें गोपीगीतका प्रसंग

आया तो आप मूर्च्छित हो गये। श्रीमद्भागवत-ग्रन्थपर आपका विशेष अनुराग था, अतः आपने पिताकी अनुमति लेकर पं० श्रीजगन्नाथाचार्यजीसे श्रीधरीटीकासहित श्रीमद्भागवतका अध्ययन किया। आप श्रीगौरांग महाप्रभुसे विशेष प्रभावित थे, अतः चाहते थे कि किसी गौरांग पार्षदसे मुझे दीक्षा प्राप्त हो जाय। कहते हैं कि आपकी इस अदम्य उत्कण्ठा और भक्ति-भावको देखकर भगवान् श्रीकृष्णने स्वप्नमें दर्शन दिया और कहा कि तुम धारेन्दा चले जाओ, वहाँ तुम्हें मेरे भक्त श्रीश्यामानन्दजी मिलेंगे, तुम उनका आश्रय ग्रहण करो, इससे तुम्हारे सभी मनोरथ पूर्ण हो जायँगे। प्रभुकी आज्ञानुसार आपने श्रीश्यामानन्दजीके दर्शन किये और उनसे श्रीयुगल-मन्त्रकी दीक्षा प्राप्त की। उन्हींसे आपको व्रजतत्त्व और सम्प्रदाय-रहस्यका ज्ञान हुआ। श्रीगुरुदेवजीके साथ आपने व्रजके तीर्थोंकी यात्राकर उनके तात्त्विक दर्शन किये। तत्पश्चात् उन्हींके साथ आप उत्कलदेश चले गये, वहाँ अनेक विमुखोंको भक्त बनाया और अन्तिम समयतक भगवान् श्रीजगन्नाथजीकी सेवामें रत रहे।

श्रीरसिकमुरारिजी बड़े समारोहपूर्वक सन्त-सेवा करते थे। आपकी सेवाकी पद्धति कुछ विलक्षण ही थी, वह यह कि सन्तोंके चरणोदकसे भरे हुए मटके घरपर धरे रहते थे। आप उसीको प्रणाम करते, उसीकी पूजा करते और उसीका हृदयमें ध्यान धरते थे। आपके यहाँ जो भी सन्त-वैष्णव आते, उन्हें अपार सुख देते थे। आप बड़े समारोहसे श्रीगुरु-उत्सव मनाया करते थे। उसमें पूरे दिन कथा-कीर्तन-सत्संग, भोज-भण्डारे होते रहते थे, जिससे सब लोग बहुत सुख पाते थे। यह उत्सव बारह दिन तक लगातार चलता रहता था। बारहों दिनतक भक्तोंकी भीड़ लगी रहती थी, जो देखनेमें अत्यन्त ही प्रिय लगती थी।

श्रीप्रियादासजी महाराजने श्रीरसिकमुरारिजीकी इस सन्तसेवाका इस प्रकार वर्णन किया है—

रसिकमुरारि साधुसेवा बिसतार कियौ पावै कौन पार रीति भाँति कछु न्यारियै।
सन्त चरणामृत के माट गृह भरे रहै ताहीकौ प्रनाम पूजा करि उर धारियै॥
आवैं हरिदास तिन्हैं देत सुखराशि जीभ एक न प्रकाशि सकै थकै सो विचारियै।
करैं गुरु उत्सव लै दिनमान सबैं कोऊ द्वादस दिवस जन घटा लागी प्यारियै॥ ३८४॥

एक दिन श्रीरसिकमुरारिजीके यहाँ भण्डारेमें बहुतसे सन्त प्रसाद पा रहे थे। आपने एक शिष्यका सन्तोंके प्रति हृदयका भाव जाननेके लिये उसे आज्ञा देकर भेजा कि जाकर सन्तोंका चरणामृत अच्छी प्रकारसे ले आओ। उसने लाकर कहा कि सब साधुओंका चरणामृत ले आया। श्रीरसिकमुरारिजीने चरणामृत पानकर कहा कि 'क्या कारण है कि चरणामृतमें पहले-जैसा स्वाद नहीं आया।' आपने निश्चय करके जान लिया कि यह किसी सन्तका चरणामृत लेनेसे छोड़ आया है, अतः जोर देकर पूछा कि 'सही बताओ तुमने किसी सन्तको छोड़ा तो नहीं है?' तब शिष्यने कहा कि 'एक कोढ़ी सन्त थे, मैंने उन्हींका चरणामृत नहीं लिया।' आपने कहा—'जाओ, उनका चरणामृत भी ले आओ। तब शिष्य उनका भी चरणामृत ले आया।' उसे आपने स्वयं पान किया और दूसरोंको भी दिया। आपको वह चरणामृत पीनेसे अपार सुख मिला। आपके नेत्रोंसे प्रेमाश्रु बह चले।

श्रीप्रियादासजीने श्रीरसिकमुरारिजीकी इस सन्तचरणामृतनिष्ठाका इस प्रकार वर्णन किया है—

सन्त चरणामृतको ल्यावो जाय नीकी भाँति जीकी भाँति जानिबेको दास लै पठायौ है।
आनिकै बखान कियौ लियौ सब साधुनकौ पान कर बोले 'सो सवाद नहिं आयौ है'॥
जिते सभाजन कही चाखौ देहु मन, कोऊ महिमा न जानैं कन जानी छोड़ि आयौ है।
पूछी, कही 'कोढ़ी एक रह्यौ,' आनो, ल्यायो, पीयो, दियो सुख पाय नैन नीर ढरकायौ है॥ ३८५॥

एक बार भक्तराज श्रीरसिकमुरारिजी राजाओंके समाजमें विराजमान होकर ज्ञानोपदेश कर रहे थे। सभी लोग बड़े ही मनोयोगपूर्वक आपका उपदेश श्रवण कर रहे थे; वहीं पासमें ही एक स्थलपर सब सन्त बैठे भोजन कर रहे थे। उन्हीं सन्तोंमें एक सन्त अपने अतिरिक्त अपने सोंटेका भी दूसरा परसा माँग रहे थे। परंतु रसोइया उन्हें सोंटेका परसा नहीं दे रहा था। परसा न देनेपर वह सन्त शोरगुल मचा रहे थे। अन्ततोगत्वा उन सन्तने अपनी परसी-परसाई पत्तल उठायी और गोस्वामी श्रीरसिकमुरारिजीके ऊपर डाल दी और बहुतेरी गालियाँ भी दीं। प्रवचन करते समय मुँह खुला होनेके कारण एक लड्डू गोस्वामीजीके मुखमें चला गया। श्रीरसिकमुरारिजी शान्तिपूर्वक गालियाँ सुनते रहे। फिर उन्होंने अवसर देखकर कहा—'अहो! मैं सन्तोंकी सीथ—प्रसादीसे विमुख था तो सन्तने स्वयं कृपा करके लाकर मेरे मुखमें ही डाल दिया।' तत्पश्चात् आपने उस सेवकको, यह कहकर कि तुम्हारा सन्त-सेवामें भाव नहीं है, सेवासे अलग कर दिया और सोंटेका परसा दिलाया।

श्रीप्रियादासजी महाराज इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

नृपति समाज मैं विराजमान भक्तराज कहैं वे विवेक कोऊ कहनि प्रभाव है।
तहाँ एक ठौर साधु भोजन करत रौर देवौ दूजी सोंटा संग कैसे आवै भाव है॥
पातरि उठाय श्रीगुसाईं पर डारि दई दई गारी सुनि आप बोले देख्यौ दाव है।
सीथ सों विमुख मैं तो आनि मुखमध्य दियौ कियौ दास दूर सन्तसेवामें न चाव है॥ ३८६॥

एक दिनकी बात है। श्रीरसिकमुरारिजीके बागमें सन्तोंकी जमात टिकी हुई थी। आप सन्तोंका दर्शन करने चले। उस समय एक सन्त हुक्का पी रहे थे। उन्होंने आपको आते हुए देखा तो सकुचाकर हुक्काको कहीं छिपा दिया। अपने आनेसे सन्तोंको संकोच हुआ जानकर इसके प्रायश्चित्तके लिये आपने उन साधुका सम्मान करना चाहा। फिर तो उसी क्षण चक्कर खाकर पेट पकड़कर बैठ गये और बोले—'मेरे पेटमें बड़े जोरका दर्द हो रहा है, देखो तो किसी संतके पास हुक्का रखा है क्या?' आपके एक सेवकने सन्तोंकी जमातमें जाकर सबको सुनाकर पूछा कि 'किसीके पास हुक्का-तम्बाकू है', यह सुनकर हुक्का पीनेवाले सन्तको बड़ा उल्लास हुआ और उन्होंने तत्काल ही हुक्का लाकर सामने कर दिया। आपने झूठ-मूठकी लम्बी श्वास खींचकर हुक्का पीनेका स्वाँग किया और तुरंत स्वस्थ हो गये। इस प्रकार आपने झूठे स्वाँगसे सन्तकी शंका और दुःखको दूर कर दिया।

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

बागमें समाज सन्त चले आप देखिबेको देखत दुरायो जन हुक्का सोच पर्यौ है।
बड़ौ अपराध मानि साधु सनमान चाहैं, घूमितन बैठि कही देखौ कहूँ धर्यौ है॥
जायकै सुनाई दास काहूके तमाखू पास सुनिकै हुलास बढ्यौ आगे आनि कर्यौ है।
झूठे ही उसाँस भरि साँचे प्रेम पाय लिये किये मन भाये ऐसे संका दुःख हर्यौ है॥ ३८७॥

श्रीरसिकमुरारिजीके गुरुदेव 'धारेन्दा' नामक स्थानमें रहते थे। उनके स्थानसे सम्बन्धित कुछ जमीन बानपुर नामक ग्राममें थी। वहाँ खेती होती थी। जो अन्न उत्पन्न होता, वह साधुसेवा निमित्त धारेन्दा स्थानपर आता। उन्हीं दिनों बानपुरमें एक नया नवाब आया। वह बड़ा ही दुष्ट था। उसने आकर साधुओंको बहुत अवाच्य वचन कहा और उस ग्रामकी समस्त भूमि अपहरण कर ली। श्रीश्यामानन्दजीने विचार किया कि सन्तसेवाकी इस जमीनको कैसे छुड़ाया जाय? फिर विचारकर उन्होंने श्रीरसिकमुरारिजीको पत्र लिख दिया कि तुम जिस स्थितिमें हो, उसी स्थितिमें यहाँ चले आओ। श्रीरसिकमुरारिजी उस समय भोजन कर रहे थे। पत्र पाते ही बिना आचमन किये ही हाथ जोड़े हुए चले आये। श्रीरसिकमुरारिजीने हाथ और मुँह जूठा होनेसे पीछेसे ही गुरुजीको साष्टांग

दण्डवत् प्रणाम किया। पुनः निवेदन किया कि मैं भोजन कर रहा था, उसी समय आपका पत्र मिला, अतः बिना आचमन किये, ज्यों-का-त्यों चला आया। इनकी यह गुरुभक्ति देखकर श्रीश्यामानन्दजीका हृदय प्रेमसे भीग गया।

श्रीरसिकमुरारिजीकी गुरुभक्तिकी इस घटनाका वर्णन श्रीप्रियादासजीने इस प्रकार किया है—

उपजत अन्न गाँव आवै साधुसेवा ठांव नयो नृपदुष्ट आय काँव काँव कियो है।
ग्रामसो जबत कर्‌यौ कर्‌यौ लै विचार आप स्यामानन्दजू मुरारि पत्र लिखि दियो है॥
जाही भाँति होहु ताही भाँति उठि आवौ इहाँ आये हाथ बाँधि करि अँचैहू न लियो है।
पाछे साष्टांग करी करी लै निवेदन सो भोजनमें कही चले आये भीज्यो हियो है॥ ३८८॥

श्रीगुरुदेव श्रीश्यामानन्दजीकी आज्ञा पाकर श्रीरसिकमुरारिजीने आचमन किया। तत्पश्चात् श्रीश्यामानन्दजीने इन्हें उसी स्थानपर भेजा, जहाँ दुष्टोंमें शिरोमणि नवाब रहता था। आप वहाँ गये। वहाँपर आपके शिष्यगण मिले, जो नवाबके यहाँ मुन्शी, मुनीम आदि थे। उन सबोंने आपको नवाबकी बात सुनायी कि वह बड़ा नीच है, अतः आप तो यहाँसे प्रातःकाल ही चले जायँ। हम सब उसको समझा-बुझाकर काम करा लेंगे। श्रीरसिकमुरारिजी बोले—'चिन्ता मत करो। हृदयमें निश्चिन्तताको धारण करो।' तीन दिनतक नवाबके कर्मचारी लोग अपने गुरुदेव श्रीरसिकमुरारिजीकी ही सेवामें रहे। तीसरे दिन नवाबका ध्यान इस ओर गया तो उन लोगोंको दरबारमें बुलवाया और पूछा कि तीन दिनतक कहाँ रहे?

जब नवाबने कर्मचारियोंके मुखसे यह सुना कि उनके गुरुवर्य आये हैं तो कहा कि उन्हें मेरे घर लिवा लाओ, मैं उनकी करामात देखूँगा। नवाबने जब यह बात सुनायी तो कर्मचारियोंने आकर श्रीरसिकमुरारिजीसे प्रार्थना की कि अब भी आप यहाँसे चले जाइये। आपने कहा कि चलो, जरा उसको देखें तो क्या कहता-करता है। उसकी कितनी सामर्थ्य है? यह कहकर आप नवाबके द्वारा भेजी हुई पालकीपर बैठकर चले। मार्गमें आये तो देखा कि चारों ओर मतवाले हाथीकी धूम छायी हुई है। हाथीके डरसे कहार इनकी पालकी छोड़कर भाग गये। परंतु आप किंचिन्मात्र भी विचलित नहीं हुए। बल्कि शास्त्रोंमें जैसी वाणी बोलनेको कहा गया है, हाथीसे आप वैसी ही परमरसमयी वाणी बोले—'हे गज! हरे कृष्ण हरे कृष्ण कहो, अपने तामसी शरीरके तमोगुणी स्वभावको छोड़ो।' आपके ये वचन सुनते ही हाथीके हृदयमें प्रेम-भाव भर गया। उसने आपके श्रीचरणोंमें अपने शरीरको झुकाकर प्रणाम किया।

श्रीरसिकमुरारिजीका मंगलमय दर्शन करके और अमृतमय वचनोंको श्रवण करके हाथीके नेत्रोंसे प्रेमाश्रु बहने लगे। तब आपने कृपा करके उसे धैर्य बँधाया और भक्ति-भाव प्रदान दिया। उसके कानमें श्रीकृष्णनाम सुनाया, गलेमें तुलसीकी माला पहिनायी और उसका नाम गोपालदास रखा। इस प्रकार ऐसे मतवाले हाथीको शिष्य बनानेसे श्रीरसिकमुरारिजीका महान् प्रभाव प्रकटित हुआ, जिसे देखकर दुष्टशिरोमणि नवाब दौड़कर उसी स्थानपर आया और आपके श्रीचरणोंमें लिपट गया। जो जमीन जब्त की थी, वह तो लौटा ही दी और भी कितने नवीन गाँव एवं हाथी भेंटमें दिया। पुनः हाथ जोड़कर बोला कि आज मेरे किसी बड़े भाग्यका उदय हुआ, जो आपका दर्शन हुआ।

भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजी इस घटनाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

आज्ञा पाइ अँचयो लै दै पठाए वाही ठौर दुष्ट सिर मौर जहाँ तहाँ आप आये हैं।
मिले मुतसद्दी शिष्य आइकै सुनाई बात 'जावो उठि प्रात' यह नीच जैसे गाये हैं॥
हमहीं पठावैं, काम करि समझावैं सब मनमें न आवै जानी नेह डरपाये हैं।
चिन्ता जिनि करौ हिये धरौ निहचिंतताई भूप सुधि आई दिना तीन कहाँ छाये हैं॥ ३८९॥

सुनि आये गुरुवर कही ल्यावो मेरे घर देखौं करामात बात यह लै सुनाई है।
कह्यौ आनि अभूं जावौ चलौ उनमान देखै, चले सुख मानि आयौ हाथी धूम छाई है॥
छोड़िकै कहार भाजि गये न निहारि सके आप रससार बानी बोले जैसी गाई है।
बोलौ हरे कृष्ण कृष्ण छाड़ौ गज तम तन सुनि गयौ हिये भाव देह सो नवाई है॥ ३९०॥
बहै दृग नीर देखि है गयौ अधीर आप कृपा करि धीर कियौ दियौ भक्ति भाव है।
कान में सुनायौ नाम नाम दै 'गुपालदास' माल पहिराई गरें प्रगट्यौ प्रभाव है॥
दुष्ट सिरमौर भूप लखि लहि ठौर आयौ पाँय लपटायौ भयौ हिये अति चाव है।
निपट अधीन गाँव केतिक नवीन दिये लिये करजोरि मेरौ फल्यौ भागदाव है॥ ३९१॥

श्रीरसिकमुरारिजीकी कृपासे वह गजराज गोपालदास भक्तराज हो गया। वह खूब सन्तसेवा करता था। सन्त समाजको देखकर प्रणाम करता था। वह हाथी बनजारोंके यहाँसे बोरे-के-बोरे चावल-दाल आदि लाकर सन्तोंकी जमातमें पटक देता था। एक बार सभी बनजारोंने मिलकर गजराज गोपालदासजीके गुरुदेव श्रीरसिकमुरारिजीके स्थानपर आकर पुकार की कि 'आपके शिष्य गजगोपालदास हमलोगोंका सब माल-मत्ता उठा लाते हैं।' गजगोपालदासजीका नियम था कि जब कभी स्थानमें कोई विशेष महोत्सव, भोज-भण्डारा होता तो जब सन्तोंकी पंक्ति भोजन करके उठ जाती, तब वे आते और सन्तोंकी सीथ—प्रसादी पाते। एक दिन ऐसे ही समयपर आये तो श्रीरसिकमुरारिजीने समझाया कि बलात्कारपूर्वक बनजारोंका सामान मत उठा लाया करो। यह काम निन्द्य है। तबसे गजगोपालदासजीने वह काम छोड़ दिया। सन्तोंसे उनका ऐसा प्रेम बढ़ा कि उनके संग सन्तोंका समूह चलता था। इससे गजगोपालदासजीकी बड़ी ख्याति फैली।

इनका चमत्कार सुनकर बंगालके नवाब शाहशुजाको चाह हुई कि ऐसे हाथीको हम अपने पास रखें। अतः पकड़वानेके लिये उसने बहुतसे आदमी नियुक्त किये, परंतु यह किसीके भी हाथ नहीं आये, तब सूबेदारने यह घोषणा की कि जो भी हाथीको पकड़कर लायेगा, उसे बहुत पुरस्कार दिया जायगा। यह सुनकर उस सन्तवेषनिष्ठ हाथीको एक साधुवेषधारी, जो नाममात्रका साधु था, पकड़ लाया। श्रीगजगोपालदासजीका नियम था कि बिना सन्तोंकी सीथ—प्रसादी लिये जल भी नहीं पीते थे। सूबेदारके यहाँ सन्तोंकी सीथ-प्रसादी न मिलनेसे तीन-चार दिनतक इन्होंने कुछ भी खाया-पिया नहीं। तब सूबेदारके कहनेसे नौकर-चाकर इन्हें जल पिलानेके लिये श्रीगंगाजीकी धारामें ले गये। श्रीगंगाजीका दर्शन करके इन्होंने बीच धारामें प्रवेश करके अपना शरीर छोड़ दिया।

श्रीप्रियादासजी गजगोपालदासजीकी इस सन्तनिष्ठाका अपने कवित्तोंमें वर्णन करते हुए कहते हैं—

भयौ गजराज भक्तराज साधुसेवा साज सन्तनि समाज देखि करत प्रनाम है।
आनि डारै गोनि बनजारनि की बारन सों आयेई पुकारन वे जहाँ गुरुधाम है॥
आवत महोच्छौ मध्य पावत प्रसाद सीथ बोले आप हाथी सौं यौं निन्द्य वह काम है।
छोड़ि दई रीति तब भक्तनसौं प्रीति बढ़ी संगही समूह फिरै फैलि गयौ नाम है॥ ३९२॥
सन्त सत पाँच सात संग जित जात तित लोग उठि धावै ल्यावै सीधे बहु भीर है।
चहूँ दिसि परी हई सूबा सुनि चाह भई हाथ पै न आवत सो आनै कोऊ धीर है॥
साधु एक गयौ गहि लयौ भेष दास तन मन में प्रसाद नेम पीवै नहिं नीर है।
बीते दिन तीन चार जल लै पिवावैं धार गंगा जू निहारि मधि तज्यौ यों सरीर है॥ ३९३॥

भवसागरसे पार करानेवाले भगवद्भक्त

सोझा सींव अधार धीर हरिनाभ त्रिलोचन।
आसाधर द्योराजनीर सधना दुखमोचन॥
कासीस्वर अवधूत कृष्न किंकर कटहरिया।
सोभू ऊदाराम, नाम डूँगर ब्रतधरिया॥
पदम पदारथ रामदास बिमलानंद अमृत श्रए।
भव प्रबाह निस्तार हित अवलंबन ये जन भए॥ ९६॥

आवागमनरूप संसारके प्रवाहमें पड़े हुए जीवोंके उद्धारके लिये ये भगवद्भक्त अवलम्बस्वरूप हुए। श्रीसोझाजी, श्रीसींवाजी, धैर्यवान् श्रीअधारजी, श्रीहरिनाभजी, श्रीत्रिलोचनजी, श्रीआसाधरजी, श्रीद्यौराजनीरजी, श्रीसदनजी —ये सब भक्त जीवोंको संसार-दुःखसे छुड़ानेवाले हुए। अवधूत काशीश्वरजी, श्रीकृष्णकिंकरजी, श्रीकटहरियाजी, श्रीस्वभूरामदेवाचार्यजी, श्रीऊदारामजी, श्रीडूँगरजी—ये श्रीहरिनामका व्रत धारण करनेवाले हुए। श्रीपद्मजी, श्रीपदारथजी, श्रीरामदासजी, श्रीविमलानन्दजी—ये भक्त श्रीहरिभक्तिरसामृतकी वर्षा करनेवाले हुए॥ ९६॥

इनमेंसे कतिपय भक्तोंके विषयमें विवरण इस प्रकार है—

सदन कसाई

प्राचीन समयमें सदन नामक कसाई जातिके एक भक्त हो गये हैं। यद्यपि ये जातिसे कसाई थे, फिर भी इनका हृदय दयासे पूर्ण था। आजीविकाके लिये और कोई उपाय न होनेसे दूसरोंके यहाँसे मांस लाकर बेचा करते थे, स्वयं अपने हाथसे पशु-वध नहीं करते थे। इस काममें भी इनका मन लगता नहीं था, पर मन मारकर जाति-व्यवसाय होनेसे करते थे। सदनका मन तो श्रीहरिके चरणोंमें रम गया था। रात-दिन वे केवल 'हरि-हरि' करते रहते थे।

भगवान् अपने भक्तसे दूर नहीं रहा करते। सदनके घरमें वे शालग्रामरूपसे विराजमान थे। सदनको इसका पता नहीं था। वे तो शालग्रामको पत्थरका एक बाट समझते थे और उससे मांस तौला करते थे। एक दिन एक साधु सदनकी दूकानके सामनेसे जा रहे थे। दृष्टि पड़ते ही वे शालग्रामजीको पहचान गये। मांस-विक्रेता कसाईके यहाँ अपवित्र स्थलमें शालग्रामजीको देखकर साधुको बड़ा क्लेश हुआ। सदनसे माँगकर वे शालग्रामको ले गये। सदनने भी प्रसन्नतापूर्वक साधुको अपना वह चमकीला बाट दे दिया।

साधु बाबा कुटियापर पहुँचे। उन्होंने विधिपूर्वक शालग्रामजीकी पूजा की; परंतु भगवान्को उससे प्रसन्नता न हुई। रातमें उन साधुको स्वप्नमें भगवान्ने कहा—'तुम मुझे यहाँ क्यों ले आये? मुझे तो अपने भक्त सदनके घरमें ही बड़ा सुख मिलता था। जब वह मांस तौलनेके लिये मुझे उठाता था, तब उसके शीतल स्पर्शसे मुझे अत्यन्त आनन्द मिलता था। मुझे सदनके बिना एक क्षण कल नहीं पड़ती।'

साधु महाराज जगे। उन्होंने शालग्रामजीको उठाया और सदनके घर जाकर उसे दे आये। साथ ही उसको भगवत्कृपाका महत्त्व भी बता आये। सदनको जब पता लगा कि उनका यह बटखरा तो भगवान् शालग्राम हैं, तब उन्हें बड़ा पश्चात्ताप हुआ। अपने व्यवसायसे घृणा हो गयी। वे शालग्रामजीको लेकर पुरुषोत्तमक्षेत्र श्रीजगन्नाथपुरीको चल पड़े।

श्रीप्रियादासजीने सदनके प्रति भगवान्‌की इस भक्तवत्सलताका इस प्रकार वर्णन किया है—

सदना कसाई ताकी नीकी कस आई जैसे बारा बानी सोनेकी कसौटी कस आई है।
जीवको न बध करैं ऐपै कुलाचार ढरैं बेंचैं मांस लाय प्रीति हरिसों लगाई है॥
गंडकीकौ सुत बिन जाने तासों तोल्यौ करैं भरै दृग साधु आनि पूजे पै न भाई है।
कही निसि सुपने मैं वाही ठौर मोकों देवौ सुनौ गुनगान रीझौं हियेकी सचाई है॥ ३९४॥
लै कै आयो साधु मैं तो बड़ो अपराध कियौ कियौ अभिषेक सेवा करी पै न भाई है।
ये तौ प्रभु रीझे तोपै जोई चाहौ सोई करौ गरो भरि आयौ सुनि मति बिसराई है॥
वे ई हरि उर धारि डारि दियो कुलाचार चले जगन्नाथ देव चाह उपजाई है।
मिल्यौ एक संग संग जात वे सुगात सब तब आप दूर दूर रहैं जानि पाई है॥ ३९५॥

मार्गमें सन्ध्या-समय सदनजी एक गाँवमें एक गृहस्थके घर ठहरे। उस घरमें स्त्री-पुरुष दो ही व्यक्ति थे। स्त्रीका आचरण अच्छा नहीं था। वह अपने घर ठहरे हुए इस स्वस्थ, सुन्दर, सबल पुरुषपर मोहित हो गयी। आधी रातके समय सदनजीके पास आकर वह अनेक प्रकारकी अशिष्ट चेष्टाएँ करने लगी। यह देख वे हाथ जोड़कर बोले—'तुम तो मेरी माता हो! अपने बच्चेकी परीक्षा मत लो, माँ! मुझे तुम आशीर्वाद दो।'

उस स्त्रीने समझा कि मेरे पतिके भयसे ही यह मेरी बात नहीं मानता। वह गयी और तलवार लेकर सोते हुए अपने पतिका सिर उसने काट दिया और कहने लगी—'प्यारे! अब डरो मत। मैंने अपने पतिका सिर काट डाला है। अब तुम मुझे स्वीकार करो।'

सदन भयसे काँप उठे। स्त्रीने अनुनय-विनय करके जब देख लिया कि उसकी प्रार्थना स्वीकार नहीं हो सकती, तब द्वारपर आकर छाती पीट-पीटकर रोने लगी। लोग उसका रुदन सुनकर एकत्र हो गये। उसने कहा—'इस यात्रीने मेरे पतिको मार डाला है और यह मेरे साथ बलात्कार करना चाहता था।' लोगोंने सदनको खूब भला-बुरा कहा, कुछने मारा भी; पर सदनने कोई सफाई नहीं दी। मामला न्यायाधीशके पास गया। सदन तो अपने प्रभुकी लीला देख रहे थे, अतः अपराध न करनेपर भी अपराध स्वीकार कर लिया। न्यायाधीशकी आज्ञासे उनके दोनों हाथ काट लिये गये।

सदनके हाथ कट गये, रुधिरकी धारा चलने लगी; उन्होंने इसे अपने प्रभुकी कृपा ही माना। उनके मनमें भगवान्‌के प्रति तनिक भी रोष नहीं आया। भगवान्‌के सच्चे भक्त इस प्रकार निरपराध कष्ट पानेपर भी अपने स्वामीकी दया ही मानते हैं। भगवन्नामका कीर्तन करते हुए सदन जगन्नाथपुरीको चल पड़े। उधर पुरीमें प्रभुने पुजारीको स्वप्नमें आदेश दिया—'मेरा भक्त सदन मेरे पास आ रहा है। उसके हाथ कट गये हैं। पालकी लेकर जाओ और उसे आदरपूर्वक ले आओ।' पुजारी पालकी लिवाकर गये और आग्रहपूर्वक सदनको उसमें बैठाकर ले आये। सदनने जैसे ही श्रीजगन्नाथजीको दण्डवत् करके कीर्तनके लिये भुजाएँ उठायीं, उनके दोनों हाथ पूर्ववत् ठीक हो गये।

श्रीप्रियादासजीने इन घटनाओंका अपने दो कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

आयौ मग गाँव भिक्षा लेन इक ठाँव गयौ नयो रूप देखि कोऊ तिया रीझि परी है।
बैठो याही ठौर करो भोजन निहोरि कह्यौ रह्यौ निसि सोय आई मेरी मति हरी है॥
लेवो मोको संग गरौ काटौ तौ न होय रंग बूझी और काटी पति ग्रीव पै न डरी है।
कही अब पागो मोसों नातो कौन तोसों मोसों सोर करि उठी इन मार्‌यो भीर करी है॥ ३९६॥

हाकिम पकरि पूछै कहैं हँसि मार्‍यो हम, डार्‍यौ सोच भारी कही हाथ काटि डारियै।
कट्यो कर चले हरिरंग माँझ झिले मानी जानी कछु चूक मेरी यहै उर धारियै॥
जगन्नाथदेव आगे पालकी पठाई लेन, सधनासो भक्त कहाँ? चढ़ैं न विचारियै।
चढ़ि आये प्रभु पास सुपनोसो मिट्यौ त्रास बोले दै कसौटी हूँ पै भक्ति विसतारियै॥ ३९७॥

प्रभुकी कृपासे हाथ ठीक तो हुए, पर मनमें शंका बनी ही रही कि वे क्यों काटे गये? रातमें स्वप्नमें भगवान्‌ने सदनजीको बताया—'तुम पूर्वजन्ममें काशीमें सदाचारी विद्वान् ब्राह्मण थे। एक दिन एक गाय कसाईके घेरेसे भागी जा रही थी। उसने तुम्हें पुकारा। तुमने कसाईको जानते हुए भी गायके गलेमें दोनों हाथ डालकर उसे भागनेसे रोक लिया। वही गाय वह स्त्री थी और कसाई उसका पति था। पूर्वजन्मका बदला लेनेके लिये उसने उसका गला काटा। तुमने भयातुरा गायको दोनों हाथोंसे पकड़कर कसाईको सौंपा था, इस पापसे तुम्हारे हाथ काटे गये। इस दण्डसे तुम्हारे पापका नाश हो गया।'

सदनने भगवान्‌की असीम कृपाका परिचय पाया। वे भगवत्प्रेममें विह्वल हो गये। बहुत कालतक नाम-कीर्तन, गुण-गान तथा भगवान्‌के ध्यानमें तल्लीन रहते हुए उन्होंने पुरुषोत्तमक्षेत्रमें निवास किया और अन्तमें श्रीजगन्नाथजीके चरणोंमें देह त्यागकर वे परम-धाम पधारे।

गुसाईं श्रीकाशीश्वरजी

गोस्वामी श्रीकाशीश्वरजी श्रीचैतन्य महाप्रभुके गुरु श्रीईश्वरपुरीजीके शिष्य थे। पहले आप अवधूत संन्यासी थे। उस समय आप प्रायः विचरण किया करते थे। एक बार मार्गमें आपको एक भूत मिला, वह आपको डराने लगा तो आपने पूछा कि आखिर मुझसे क्या चाहते हो? भूतने कहा—'मैं तुम्हें मारकर भूत बनाना चाहता हूँ।' आपने पूछा—'ऐसा क्यों?' भूतने कहा—'इसलिये कि तुम श्रीहरिसे विमुख हो।' यह सुनकर आपने मन-ही-मन भगवान् श्रीहरिकी शरण ली। मनमें शरणागतिका संकल्प करते ही भूत पलायन कर गया।

गुसाईं श्रीकाशीश्वरजीको श्रीनीलाचल (श्रीजगन्नाथपुरी)-का वास अच्छा लगता था, अतः अनुरागपूर्वक वहीं बस गये। कालान्तरमें महाप्रभु श्रीकृष्णचैतन्यजीके आदेशानुसार आप श्रीवृन्दावन चले आये। श्रीवृन्दावनका दर्शन करके आपके हृदयकी अभिलाषा पूरी हो गयी। यहाँ आपको रसिकेन्द्रचूड़ामणि श्रीराधा गोविन्दचन्द्रजीकी सेवाका अधिकार प्राप्त हुआ।

श्रीप्रियादासजीने गुसाईं काशीश्वरजीकी भाव-दशाका वर्णन इस प्रकार किया है—

श्रीगुसाईं काशीश्वर आगे अवधूत बर करि प्रीति नीलाचल रहे लाग्यो नीको है।
महाप्रभु कृष्ण चैतन्यजूकी आज्ञा पाय आये वृन्दावन देखि भायौ भयौ हीको है॥
सेवा अधिकार पायौ रसिक गोविन्दचन्द चाहत मुखारविन्द जीवनि जो जीको है।
नित ही लड़ावैं भाव सागर बढ़ावैं कौन पारावार पावैं सुनै लागै जग फीको है॥ ३९८॥

परमधामगमनके समय आपके श्रीगुरुदेव श्रीईश्वरपुरीजी महाराजने आपको आज्ञा दी कि तुम श्रीगौरांगकी सेवामें जाकर रहो। आपका तो श्रीगौरांग महाप्रभुसे पहलेसे ही अनुराग भाव था, अतः सहर्ष श्रीजगन्नाथपुरी आकर श्रीगौरांग महाप्रभुकी सेवा और सन्निधि प्राप्त की। श्रीमहाप्रभु आपको गुरुभाई मानकर अपनी सेवा देने में संकोच करते थे, पर गुरु-आज्ञा और आपके प्रेम-भावको देखकर सेवा देना स्वीकार कर लिया। आप शरीरसे बड़े ही हृष्ट-पुष्ट थे। श्रीमहाप्रभुजी जब श्रीजगन्नाथस्वामीके सम्मुख प्रेम-विभोर होकर नृत्य करते तो उनके दर्शनार्थ जनसमुदाय उमड़ पड़ता था, उस समय आप ही भीड़को सँभालते थे।

कालान्तरमें आप महाप्रभुके आज्ञानुसार श्रीधाम वृन्दावन चले आये और श्रीगोविन्ददेवजीकी सेवा करते हुए अपने जीवनको धन्य कर दिया।

श्रीसोझाजी

श्रीसोझाजी दम्पती भगवद्भक्त गृहस्थ थे। धीरे-धीरे जगत्की असारता, सांसारिक सुखोंकी असत्यता और श्रीहरिभजनकी सत्यताका सम्यक् बोध हो जानेपर आपके मनमें तीव्र वैराग्य उत्पन्न हो गया। आपने अपनी धर्मपत्नीके समक्ष अपने गृहत्यागका प्रस्ताव रखा तो उस साध्वीने न केवल सहर्ष प्रस्तावका समर्थन किया, बल्कि स्वयं भी साथ चलनेको तैयार हो गयीं। इसपर आपने कहा कि यदि तुम्हारे हृदयसे समस्त सांसारिक आसक्तियाँ समाप्त हो गयी हों तो तुम भी अवश्य चल सकती हो। अन्ततोगत्वा अर्धरात्रिके समय आप दोनोंने घर-द्वार, बन्धु-बान्धव, कुटुम्ब-परिवार—सबकी ममताका त्याग कर दिया और घर छोड़कर चल दिये। आपकी तो प्रभुकृपापर अनन्य निष्ठा थी, इसलिये साथ कुछ नहीं लिया, परंतु आपकी पत्नी अपने दस माहके शिशुके प्रति वात्सल्यभावको न त्याग सकी और उसको भी अपनी गोदमें लेते आयी। रातभर पैदल चलनेके उपरान्त प्रात:कालके उजालेमें आपने जब पत्नीकी गोदमें शिशुको देखा तो बहुत नाराज हुए और बोले—'अभी तुम्हारे मनमें संसारके प्रति बहुत राग है, यदि तुम मेरे साथ चलना चाहती हो तो इस शिशुको यहीं छोड़ दो।' पत्नीने बड़े ही करुण स्वरमें कहा—'नाथ! यहाँ इसका लालन-पालन कौन करेगा?' आपने पृथ्वीपर रेंगते हुए जीव-जन्तुओंको दिखाकर कहा—'जो इनका पालन करता है, वही इस बालकका भी पालन करेगा।' आपकी आज्ञाका पालन करते हुए आपकी पत्नीने बालकको वहीं छोड़ दिया और दोनों लोग आगे बढ़ गये। उधर परिवारके लोगोंने आप दोनोंकी खोज की तो आप लोग तो मिले नहीं, पर आपका बालक उन लोगोंको मिल गया, जिसे आगे चलकर उस देशके राजाने संतानहीन होनेके कारण गोद ले लिया और वह आगे चलकर राजा बना। इधर आप लोगोंको चलते-चलते पूरा दिन बीत गया, परंतु कहींसे भोजन तो क्या, अन्नका एक दाना भी नसीब नहीं हुआ। आपने सोचा कि हम लोग तो अब प्रभुके ही आश्रित हैं, ऐसेमें प्रभु हमें अपने प्रसादसे क्यों वंचित कर रहे हैं; मेरे पास तो कुछ है नहीं, लगता है कि मेरी पत्नीके पास कुछ धन है, इसीलिये हम प्रभुकृपासे वंचित हो रहे हैं। आपने पत्नीसे पूछा तो उन्होंने सोनेकी एक मुहर दिखाते हुए कहा कि बस यही एक मुहर मेरे पास है। आपने कहा—'जब घर त्याग दिया, धन-सम्पत्ति त्याग दी, तो इस एक बाधाको क्यों अपने साथ लगाये हो, इसे भी फेंको तभी प्रभुकी कृपाका प्रसाद मिल सकेगा।' पत्नीने तुरंत मुहर फेंक दी और आप लोग आगे बढ़ गये। इन दम्पतीकी वार्ता और इस घटनाको देख रहे लोगोंको बड़ा आश्चर्य हुआ और उन लोगोंने मान लिया कि ये लोग सच्चे और सिद्ध सन्त हैं, अत: इनके नगरमें पहुँचनेसे पहले ही इनकी कीर्ति वहाँ फैल गयी। फिर तो लोगोंने इनकी खूब आवभगत की और आदर-सत्कार किया। कुछ दिनतक उस नगरमें निवास करनेके बाद आप लोग श्रीद्वारकापुरीकी यात्रापर चल दिये। कहते हैं कि मार्गमें कुछ दुष्टोंने इनकी पत्नीका हरण कर लिया। इसपर अपने धर्मकी रक्षाके लिये पतिव्रता पत्नीने भगवान्को पुकारा। अपने अनन्य भक्तके कष्टको भगवान् अनदेखा कैसे कर सकते थे! उन्होंने तुरंत हनुमान्‌जीको आदेश दिया और हनुमान्‌जीने प्रकट होकर उन दुष्टोंको यथोचित दण्ड दिया और आपकी पत्नीको आपके पास वापस लाये, साथ ही भगवान्‌ने आकाशवाणीसे उनकी पवित्रता भी प्रमाणित कर दी।'

बारह वर्ष बाद अचानक एक दिन आपकी पत्नीको अपने उस दुधमुँहे शिशुकी याद आयी, जिसे वे आपके कहनेपर रास्तेमें ही छोड़कर चली आयी थीं। उन्होंने इस बातको आपसे कहा। प्रभुकृपासे आप

तो सब जानते ही थे, फिर भी पत्नीको भगवत्कृपाके दर्शन करानेके लिये उन्हें लेकर अपने देश वापस लौटे। वहाँ वे एक बागमें रुके और मालीसे पूछा—'यहाँका राजा कौन है?' मालीने बताया—'यहाँके राजाको कोई संतान नहीं थी; अतः उन्होंने भक्त सोझाजीके पुत्रको गोद ले लिया था, जिसे उसके माता-पिता जंगलमें छोड़ गये थे, अब वही लड़का यहाँका राजा है।' सोझाजीकी पत्नी इस भगवत्कृपासे गद्‌गद हो गयीं, उन्हें विश्वास हो गया कि जो अनन्य भावसे प्रभुकी शरणमें जाते हैं, उनके योग-क्षेमका वहन स्वयं श्रीभगवान् करते हैं।

श्रीसींवाजी

श्रीसींवाजी भगवद्भक्त सद्‌गृहस्थ थे। आपकी सन्तसेवामें बड़ी निष्ठा थी। आपके दरवाजेपर सन्त-मण्डली प्रायः आती रहती थी, इससे समाजमें आपका सम्मान भी बहुत था। आपकी यह प्रतिष्ठा अनेक लोगोंकी ईर्ष्याका कारण बनी। उन लोगोंने राजासे आपकी शिकायत कर दी। अविवेकी राजाने भी बिना कोई विचार किये आपको कारागारमें डाल दिया। आपकी सन्त प्रकृति थी, अतः आपके लिये सुख-दुःख, मान-अपमान सब समान ही थे; परंतु आपको इस बातका विशेष क्लेश था कि अब मेरी सन्तसेवा छूट गयी है। एक दिन एक सन्तमण्डली आपके घरपर आयी, जब आपको इस बातका पता चला तो आपको बहुत दुःख हुआ। आपने भगवान्से प्रार्थना की कि 'प्रभो! यदि मेरे पंख होते तो मैं उड़कर सन्तोंके पास चला जाता और उनकी सेवा करता, पर क्या करूँ, यहाँ तो मैं लाचार हूँ।' सर्वसमर्थ प्रभुसे अपने भक्तकी सच्ची तड़पन और उसकी मानसिक पीड़ा देखी न गयी। उसी समय चमत्कार हुआ और आपकी हथकड़ी-बेड़ी टूटकर जमीनपर गिर पड़ी, जेलके फाटक भी अपने-आप खुल गये। आप सन्तोंके पास पहुँच गये और भावपूर्वक उनकी सेवा की। उधर राजकर्मचारियोंने देखा कि जेलका फाटक खुला है और इनके कमरेमें हथकड़ी-बेड़ी टूटी हुई जमीनपर पड़ी है तो उनके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। उन्होंने इस बातकी खबर राजाको दी। अविवेकी राजाको इस घटनामें भगवत्कृपाके दर्शन होनेके स्थानपर जेलसे भागनेका अपराध ही दृष्टिगोचर हुआ और उसने पुनः आपको पकड़कर लानेका आदेश दिया। आप कहीं भागे तो थे नहीं, घर जाकर सन्तसेवा ही कर रहे थे। राजाके सिपाही वहाँ पहुँचकर आपको फिरसे हथकड़ी-बेड़ीमें जकड़ने लगे, परंतु प्रभुकृपासे आपके शरीरका स्पर्श होते ही वे हथकड़ियाँ भी टूटकर जमीनपर गिर पड़ीं। जब राजाको इस बातकी सूचना दी गयी तो उस मूर्खने कहा कि यह कोई जादूगर है, जो इन्द्रजाल कर रहा है, अतः इसे पकड़कर प्राणदण्ड दे दो। राजाकी आज्ञाके अनुसार जल्लादोंने आपको तलवारके घाट उतारना चाहा, परंतु ***'सीम कि चाँपि सकइ कोउ तासू। बड़ रखवार रमापति जासू॥'*** भला, उसको कौन मार सकता है, जिसकी रक्षा स्वयं भगवान् कर रहे हों। जल्लादोंके उठे हाथ उठेके उठे रह गये, मानो वे जीवित प्राणी न होकर चित्रलिखित हों। राजाको जब यह वृत्तान्त सुनाया गया तो भगवत्कृपासे उसके ज्ञानचक्षु खुल गये। वह नंगे पैर भागकर आया और आपके चरणोंमें गिरकर क्षमा-प्रार्थना करने लगा। आपके मनमें कोई विकार भाव तो था ही नहीं, अतः तुरंत ही क्षमा कर दिया। अब राजाको उन ईर्ष्यालु व्यक्तियोंका ध्यान आया, जिनकी शिकायतपर राजाने आपको कारागारमें निरुद्ध कराया था। उसने उन लोगोंको तुरंत प्राणदण्ड दे देनेका आदेश दिया। यह देखकर आपका मन बड़ा दुखी हुआ और हृदय अपार करुणासे भर गया। आपने राजासे कहकर तुरंत उन सबको भी मुक्त करा दिया। इस प्रकार श्रीसींवाजी गृहस्थमें रहते हुए भी आदर्श सन्त थे।

श्रीअधारजी

श्रीअधारजी बड़े उच्च कोटिके सन्त थे। भगवान् श्रीहरिके नाममें आपकी बड़ी निष्ठा थी। आपने श्रीहरि नामको ही अपना अधार बना लिया और उसीके बलपर असंख्य जनोंको भवसागरसे पार किया। श्रीहरि नामको आधार बना लेनेके कारण आपका नाम श्रीअधारजी पड़ गया।

श्रीहरिनाभजी

श्रीहरिनाभजी भगवत्कृपाप्राप्त सन्त थे। आपका जन्म ब्राह्मण-कुलमें हुआ था और आपकी सन्त-सेवामें बड़ी ही निष्ठा थी। आपके यहाँ प्रायः सन्तोंकी मण्डली आया करती थी और आप अत्यन्त निष्ठाके साथ उनकी सेवा किया करते थे। एक बार संन्यासियोंकी एक बड़ी मण्डली आपके गाँवमें आयी। गाँववालोंने उन्हें आपके यहाँ भेज दिया। संयोगसे उस दिन आपके यहाँ तनिक भी सीधा नहीं था और न ही घरमें रुपया-पैसा या आभूषण ही था, जिसे देकर दूकानसे सौदा आ सकता। ऐसेमें आपके समक्ष धर्मसंकटकी स्थिति आ गयी, सन्त-सेवामें आपकी निष्ठा ऐसी थी कि उन्हें अपने दरवाजेसे निराश जाने नहीं दे सकते थे। ऐसेमें आपने अपनी विवाहयोग्य कन्याको एक सगोत्री ब्राह्मणके यहाँ छोड़ दिया कि पैसेकी व्यवस्था होनेपर छुड़ा लेंगे। इस प्रकार पैसोंकी व्यवस्था करके आप सीधा-सामान लाये और सन्त-सेवा की। कुछ समय बाद जब आपके पास पैसे इकट्ठे हो गये तो आपने ब्राह्मणके पैसे लौटा दिये, परंतु फिर भी वह कन्याको वापस करनेमें आनाकानी करता रहा। आपकी सन्त-सेवाके प्रति निष्ठा और ब्राह्मणकी कुटिलताने सन्तोंके परम आराध्य भगवान् श्रीहरिको उद्वेलित कर दिया। वे स्वयं चुपचाप कन्याको आपके यहाँ पहुँचा आये। अब वह ब्राह्मण आपसे झगड़ा-तकरार करने लगा। इसपर भगवान्ने रात्रिमें स्वप्नमें उससे कहा कि कन्याको मैंने उसके पिताके घर पहुँचाया है, यदि तुम इसके लिये तकरार करोगे तो मैं तुम्हारा सर्वनाश कर दूँगा। अब ब्राह्मणको अपनी गलती और आपपर भगवत्कृपाका बोध हुआ। वह दूसरे दिन प्रातःकाल ही आकर आपके चरणोंमें गिरकर प्रार्थना करने लगा। आपके मनमें उसके प्रति तनिक भी क्रोध नहीं था, अतः उसे क्षमा तो कर ही दिया साथ ही उसे भी सन्त-सेवी बना दिया। उसने सन्त-सेवाका व्रत तो लिया ही साथ ही आपकी पुत्रीको अपनी पुत्री मानकर उसके विवाहमें पूर्ण सहयोग दिया।

इस प्रकार श्रीहरिनाभजी अद्भुत सन्त-सेवी गृहस्थ साधु थे।

श्रीस्वभूरामदेवाचार्यजी

श्रीस्वभूरामदेवाचार्यजी महाराजका जन्म ब्राह्मण-कुलमें हुआ था। आपके पिताका नाम श्रीकृष्णदत्त और माताका नाम श्रीराधादेवी था। श्रीकृष्णदत्त एवं राधादेवीको जब दीर्घकालतक संतानकी प्राप्ति नहीं हुई तो एक सन्तकी प्रेरणासे दोनों निम्बार्क-सम्प्रदायाचार्य श्रीहरिदेव व्यासजीके पास गये। उन्होंने आपलोगोंको गो-सेवा करनेकी आज्ञा दी। अब आप लोग गायोंको चराते, उनकी सार-सँभाल करते और हर प्रकारकी सेवा करते। इस प्रकार सेवा करते-करते गोपाष्टमीका दिन आया। आप दोनों लोग गोशालामें गये, वहाँ देखा तो चारों ओर प्रकाश फैला था और उस प्रकाशपुंजके मध्यमें एक सुन्दर शिशु लेटा था। उसे देखते ही दम्पतीका वात्सल्यभाव जाग्रत् हो गया और राधादेवीने उसे अपनी गोदमें उठा लिया। इस प्रकार स्वयं प्रकट होनेके कारण शिशुका नाम स्वभूराम पड़ा। आठ वर्षकी अवस्थामें बालक स्वभूरामको उनके माता-पिता श्रीहरिदेव व्यासजीके पास ले गये और उसका यज्ञोपवीत कराकर वैष्णव दीक्षा दिलायी, तत्पश्चात् सब लोग पुनः घर आ गये। श्रीस्वभूरामजी घर आ तो गये, पर उनका मन घरमें न लगता। एक दिन उन्होंने अपने माता-पितासे संन्यास लेनेकी बात कही और उनसे आज्ञा एवं आशीर्वाद माँगा। इसपर आपके माता-

पिता वात्सल्यस्नेहवश बिलखने लगे और रोते हुए बोले—'बेटा! हम वृद्धोंके तुम्हीं एकमात्र प्राणाधार हो, यदि तुम भी वैराग्य-धारण कर लोगे तो हम लोग किसके आधारपर जीवन धारण करेंगे?' माता-पिताकी इस परेशानीको देखकर आपने कहा कि यदि मेरे दो भाई और हो जायँ तो क्या आप लोग मुझे विरक्त हो जानेकी आज्ञा दे देंगे? यह सुनकर माता-पिता हँस पड़े; क्योंकि तबतक उनकी पर्याप्त अवस्था हो चुकी थी। परंतु आपकी वाणी सत्य सिद्ध हुई। कुछ दिनों बाद भगवत्कृपासे सन्तदास और माधवदास नामक दो भाइयोंका जन्म हुआ। उनके कुछ बड़े हो जानेपर आपने पुनः माता-पितासे संन्यासकी अनुमति माँगी और मौन स्वीकृति प्राप्तकर श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजीकी शरणमें चले गये। आपने श्रीगुरुदेवजीसे विरक्त दीक्षा ली और भजन-साधन करने लगे।

एक बारकी बात है, श्रीयमुनाजीकी बाढ़से आपके आश्रम-ग्राम बुड़ियाके डूब जानेकी आशंका हो गयी। सभी गाँववाले बचावके लिये गाँवके चारों ओर ऊँची दीवाल बनाने लगे, परंतु जब उससे भी बाढ़ रोकनेमें सफलता न मिली तो 'त्राहि माम् त्राहि माम्' करते आपके पास आये। आपने मनमें विचार किया कि श्रीयमुना महारानी तो स्वामिनीजी हैं, मेरे आराध्यकी प्राणप्रिया हैं, यदि वे कृपाकर पधार रही हैं तो यह तो हर्षका विषय है, ऐसेमें भला उनके मार्गमें अवरोध खड़ा करना कहाँ उचित है—ऐसा सोचकर आपने फावड़ा उठाया और श्रीयमुनाजीसे गाँवतक मार्ग बना दिया। सब लोग उनके इस क्रियाकलापको आश्चर्यभावसे देखते रहे, परंतु यमुनामैया उनके दिव्य भावको जान गयीं और एक पतली-सी धाराके रूपमें आश्रमतक आकर फिर वापस चली गयीं। आपके इस अलौकिक प्रभावसे आज भी बुड़िया ग्राममें आपका सुयश गाया जाता है।

आपका एक ब्राह्मण शिष्य था, सम्पत्ति तो उसके पास बहुत थी, पर संतान कोई न थी। एक-एक करके उसने तीन विवाह किये, पर संतानकी प्राप्ति न हुई। गाँववाले उसे निपूता कहते। एक दिन वह आपके पास आया और आपसे अपना दुःख निवेदन किया। आपने कहा चिन्ता न करो, तुम्हारी तीसरी पत्नीसे तुम्हें एक पुत्ररत्नकी प्राप्ति होगी, जो बड़ा ही भक्त और सन्त-सेवी होगा। यथासमय ब्राह्मणके घर पुत्रका जन्म हुआ। इसके बाद तो उसकी सन्तसेवामें और निष्ठा बढ़ गयी। कालान्तरमें उस ब्राह्मणकी मृत्यु हो गयी और उसके कुछ ही दिनों बाद पुत्रको भी एक विषधरने डँस लिया। रोती-बिलखती बालककी माँ उस मृतप्राय बालकको लेकर आपके पास आयी। आपने श्रीभगवान्‌का चरणामृत उस बालकके मुखमें डाल दिया। बालक तत्काल वैसे ही उठ बैठा, जैसे कोई नींदसे जगकर उठ बैठे। यही बालक आगे चलकर श्रीकन्हरदेवाचार्य नामसे प्रसिद्ध हुआ।

इस प्रकार आपने अनेक अलौकिक कार्य किये और वैष्णव धर्मकी ध्वजा फहरायी।

श्रीऊदारामजी

श्रीऊदारामजीका जन्म वैश्यकुलमें हुआ था। आप परम भगवद्भक्त और सन्तसेवी थे। आपकी पत्नी भी परम भागवती और पतिपरायणा थीं। एक पुत्रके जन्मके बाद आप दम्पतीने निश्चय किया कि अब पितृ-ऋणसे उऋण होनेके लिये संतान हो गयी है, अतः शेष समय भगवद्भजन और सन्तसेवामें ही बिताना चाहिये। यह निश्चयकर पति-पत्नी भगवद्भजन और साधु-सेवामें रत हो गये। भगवान्‌ने इनकी सन्तसेवाको प्रकाशित करनेके लिये इनकी परीक्षा लेनेका विचार किया। वे एक सन्तका स्वरूप धारणकर आपके पास आये और बोले—'मेरी पत्नी बीमार है, अतः सेवा करनेके लिये कुछ दिनके लिये अपनी पत्नी मुझे दे दो, जैसे ही मेरी पत्नी स्वस्थ हो जायगी, मैं वापस कर दूँगा।' आपने स्वीकार कर लिया। सन्तरूप भगवान्‌ने कहा—

अब आप इन्हें मेरे आश्रमतक छोड़ आयें। इसके लिये भी आप तैयार हो गये और पत्नीको लेकर सन्तके आश्रमपर पहुँच गये। तबतक रातका अँधेरा हो गया था, अतः सन्तके आग्रहपर आप भी वहीं रुक गये। प्रातः आँख खुलनेपर देखा कि दोनों पति-पत्नी आश्रममें नहीं, बल्कि अपने घरमें हैं। तब आपको विश्वास हो गया कि सन्तरूपमें स्वयं श्रीभगवान् ही हमें सन्तसेवाका फल देने आये थे। अब आपकी सन्तसेवामें और निष्ठा बढ़ गयी, परंतु इनके पत्नीको सन्तके यहाँ भेजनेके कार्यके कारण सन्त-महिमा और वास्तविकताको न जाननेवाले परिवारीजन और जाति-बिरादरीके लोग आपसे नाराज हो गये। प्रथम तो उन लोगोंने आपको सन्तसेवा और वैष्णवोंसे नाता तोड़नेके लिये कहा, परंतु जब आप न माने तो राजाके पास झूठी शिकायत कर दी कि ऊदारामके पास बहुत धन है, परंतु यह राज्यकर नहीं देता। अविवेकी राजाने भी बिना कोई विचार किये सिपाहियोंको श्रीऊदारामजीको गिरफ्तारकर लानेके लिये भेज दिया, परंतु सिपाही जब आपके घरके पास पहुँचे तो सबके सब अन्धे हो गये। यह समाचार जब राजाको पता चला तो उसे अपनी भूल ज्ञात हुई। उसने तत्काल आकर आपके चरणोंमें प्रणिपात किया और आपके उपदेशोंसे प्रभावित होकर भगवद्भजन और साधु-सेवाका व्रत ले लिया। इसी प्रकार आपके चरित्रसे प्रेरणा लेकर अनेक भगवद्विमुख जन वैष्णव बन गये।

श्रीडूँगरजी

भक्त श्रीडूँगरजी जातिसे पटेल क्षत्रिय थे। सन्तसेवामें आपकी बड़ी ही निष्ठा थी, परंतु आपके पिताको यह सब व्यर्थ लगता था। अतः आप पितासे छिपाकर सन्तोंको खिलाने-पिलानेमें धन खर्च कर दिया करते थे। इस प्रकार आपने जब बहुत-सा धन व्यय कर दिया तो यह बात आपके पिताजीको भी मालूम हुई और क्रुद्ध होकर उन्होंने आपको घरसे निकाल दिया। यद्यपि अब आपके पास अर्थाभाव हो गया था, फिर भी आपकी सन्तसेवा बदस्तूर जारी रही। यहाँतक कि आपने अपनी पत्नीके आभूषणतक बेंचकर उससे सन्तोंकी सेवा कर दी। इससे आपकी प्रसिद्धि तो चारों ओर फैल गयी, परंतु घरमें अन्नका एक दाना न रहा। एक दिन सन्तोंकी एक बड़ी मण्डली आपके द्वारपर आ गयी, घरमें अन्नका एक भी दाना न होनेसे आपके सामने बड़ा धर्मसंकट आ पड़ा। आर्थिक स्थिति ठीक न होने और आमदनीका कोई स्रोत न होनेसे कोई आपको उधार भी देनेको तैयार नहीं था। घरमें ऐसी कोई कीमती वस्तु भी नहीं थी, जिसे बेंचकर या गिरवी रखकर उधार प्राप्त हो जाता। अन्तमें सब तरफसे निराश होकर आप दोनों भक्तदम्पतीने भगवान्से ही पुकार लगायी।

ऐसे अकिंचन भक्त और सन्तसेवीकी प्रार्थना भला भगवान् कैसे अनसुनी करते, प्रभुकृपासे तुरंत ही अन्नकी वर्षा होने लगी। आपकी पत्नीने तुरंत आटा तैयार किया, रसोई बनी और सन्तोंने प्रसाद पाया। उधर अन्न-वर्षाकी चर्चा क्षणभरमें पूरे गाँवमें व्याप्त हो गयी। जब यह समाचार आपके पिताको ज्ञात हुआ तो उन्हें बड़ी ग्लानि हुई और वे भी धन-सम्पदाका मोह छोड़कर सन्तसेवामें रत हो गये।

भगवत्कृपा और सन्त-निष्ठासे आपके जीवनमें अनेक चमत्कार हुए। एक बार आप श्रीद्वारिकापुरीजीकी यात्रापर जा रहे थे, मार्गमें एक अघोरी मिला, जो आपको मारकर खा जाना चाहता था। ऐसी विषम परिस्थितिमें भगवान्ने प्रकट होकर आपकी प्राण-रक्षा की और अघोरीको उचित दण्ड दिया।

आप वैष्णवधर्मके प्रचार-प्रसारके लिये प्रायः यात्राएँ किया करते थे। एक बार आप कहीं जा रहे थे, मार्गमें देखा कि एक गर्भवती स्त्री अपने मृत पतिके साथ सती होने जा रही है, यह देखकर आपको बड़ी दया आयी और आपने भगवच्चरणामृतकी कुछ बूँदें उस मृत व्यक्तिके मुखमें डाल दीं; फिर क्या था,